Ph.D. Thesis

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में गाँधी चिंतन

SAMAKALEEN HINDI UPANYASOM MEIN GANDHI CHINTAN

Thesis Submitted to

Cochin University of Science and Technology

for the award of the Degree of

Doctor of Philosophy

In

HINDI

Under the Faculty of Humanities

By

सुस्मिता घई

SUSMITHA GHAI

Dr. R. SASIDHARAN
Professor
Head of the Department

Dr. N. MOHANAN
Professor (Retd)
Supervising Teacher

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi - 682 022

July 2019

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled **"SAMAKALEEN HINDI UPANYASOM MEIN GANDHI CHINTAN "** is a bonafide record of research work carried out by **SUSMITHA GHAI** under my supervision for **Ph.D.** (Doctor of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the Doctoral committee of the candidate has been incorporated in the thesis.

Dr. N. MOHANAN
Professor (Retd.)
Supervising Teacher

Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Kochi - 682 022

Place: Cochin
Date : 10.07.2019

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis entitled **"SAMAKALEEN HINDI UPANYASOM MEIN GANDHI CHINTAN ”** based on the original work done by me under the guidance of **Dr. N. MOHANAN**, Professor (Retd.), Dept. of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin - 682022 and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other university.

SUSMITHA GHAI
Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi - 682 022

Place: Cochin

Date : 10.07.2019

मेरी स्वर्गीय नानी

की यादों के सामने

सादर समर्पित......

पुरोवाक्

पुरोवाक्

वर्तमान समय गाँधी विचारधारा का सबसे अधिक प्रासंगिक समय है। तत्कालीन समय कोई मामूली समय नहीं है। ग्लोबल विश्व में गाँधी एवं उनके विचार आज नए सूर्योदय का आभास दे रहे हैं। नई प्रौद्योगिकी एवं तकनीक की इस दुनिया में गाँधी जी की प्रासंगिकता तथा उनकी माँग बहुत ज़्यादा महत्वपूर्ण हो गयी है। यह इसलिए है कि उपभोक्तावादी वैश्वीकृत परिस्थितियों ने आदमी को वैज्ञानिक एवं तकनीकी बना दिया है। सहज नैतिक मूल्यों को नष्ट कर बढ़ती वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी आज एक नए समाज का सृजन कर रही है। हिंसा के तत्कालीन माहौल में मानवीय सरोकार से विश्व को जोड़ने की अनिवार्यता की ओर गाँधी चिंतन हमें ले जा रहा है। अहिंसा, शांति, सर्वधर्म समभाव तथा आपसी समरसता को दर्शाने वाला गाँधी चिन्तन समूचे विश्व के लिए नई ऊर्जा प्रदान कर रहा है।

गाँधी चिन्तन वास्तव में अपने आपसे, अपने वजूद से रुबरू होने के एहसास का अहिंसामयी यथार्थ है। महात्मा गाँधी जैसे गतिमान एवं सचेतन इतिहास पुरुष के जीवन एवं विचारों को शायद हम और हमारी वर्तमान पीढ़ी भूल चुके हैं। आए दिन देश अनेक प्रकार की हिंसात्मक परिस्थितियों से गुज़र रहा है। धीरे धीरे ये सब रोज़मर्रा की आम बात भी हो गई है। पर सचमुच यह भयावह स्थिति है। ऐसे सन्दर्भ में मानव मूल्यों की रक्षा तथा समाज को नए सिरे से पुनःगठित करने की अनिवार्यता है। यह इसलिए अनिवार्य है कि विश्व को वर्तमान तथा आनेवाली पीढ़ियों के लिए बचाए

रखना हमारा धर्म है। यह धर्म संस्थापना गाँधी जी के विचारों से भी संभव है हमने जान लिया। यदि गाँधी जी को समग्रता में देखा और समझा जाए तो यह पता चलेगा कि उनसे ज़्यादा प्रगतिशील व्यक्तित्व आधुनिक संसार में कोई नहीं हुआ है। किन्तु उन पर सतही चर्चाऐं ही होती रहती है। उनके नाम पर कई संस्थाएं बनी हैं, कई सड़कें भी बनाई गयी है पर जिस गाँधी जी ने अपने चिंतन के ज़रिए भारत की अपनी अस्मिता को बनाने का कठिन परिश्रम किया वे आज जन सामान्य से दूर हो गये हैं। इसलिए गाँधी जी एवं उनके विचारों को नये सिरे से परिचित कराये जाने की ज़रूरत है। हमने अपनी विरासत को भुला दिया है। आज वह समय आ गया है कि भुलायी गयी विरासत को वापिस लाएँ। भारत को यदि अपनी सांस्कृतिक मूल्यवत्ता तथा परंपरा के क्रमिक विकास के साथ मनुष्य के जीवन को सुखमय तथा जीने लायक बनाना है तो हम सबको महात्मा की ओर वापिस जाना अनिवार्य है।

मेरा यह शोध प्रबन्ध इस दिशा की ओर संकेत करनेवाला है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय है **"समकालीन हिन्दी उपन्यासों में गाँधी चिन्तन"**। यह इसलिए है कि समकालीन सन्दर्भ के बहुत सारे रचनाकारों ने गाँधी जी के विचारों की प्रासंगिकता का संकेत अपनी रचनाओं में दिया है। वर्तमान समय की बहुत सारी प्रतिकूलताओं के सामने खड़े होकर रचनाकार यह महसूस करते हैं नहीं तो अनुभव करते है कि इन प्रतिकूलताओं का कारण गाँधी और उनके महान चिंतनों से दूर हट जाने का परिणाम है। स्वाधीनता

के बाद हम भयानक ढंग से गाँधी को भूल गए नहीं तो हमने उन्हें हाशिए पर छोड़ दिया। वर्तमान सन्दर्भ के रचनाकार यह अनुभव करता है कि हमने सही रास्ते को हाशिए पर छोड़कर गलत रास्ते को अपनाया। यह सचमुच एक ऐतिहासिक त्रासदी ही है। इसी पहचान का परिणाम है समकालीन सन्दर्भ का 'गाँधी चिंतन'। समकालीन हिन्दी उपन्यासों को केन्द्रित करके गाँधी चिंतन की प्रासंगिकता पर तथा गाँधी जी के चिन्तनों को नई पहचान पर अध्ययन करने का विनम्र प्रयास है यह शोध प्रबन्ध। अध्ययन के सुविधार्थ प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

पहला अध्याय है - **'गाँधी चिन्तन की अवधारणा'**। इस अध्याय में गाँधी चिंतन के स्वरूप, स्रोत एवं मूल तत्वों पर विचार किया गया है। गाँधी चिन्तन की व्यावहारिकता जीवन के सभी क्षेत्रों में संभव है। अतः गाँधी चिंतन को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों के अन्तर्गत पुनःपरिभाषित करने का प्रयास किया गया है। अन्त में साहित्यिक क्षेत्र में गाँधी चिन्तन को व्यक्त करते हुए हिन्दी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में उसके प्रभाव को स्पष्ट करने का कार्य भी इस अध्याय में किया गया है। इस प्रकार इस अध्याय में गाँधी चिन्तन की प्रासंगिकता पर विचार किया गया है।

दूसरा अध्याय है **'हिन्दी उपन्यास में गाँधी।'** उपन्यास विधा काफी सशक्त विधाओं में से एक है। इस अध्याय में उपन्यास की परिभाषा एवं स्वरूप को व्यक्त करते हुए हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा एवं गाँधी जी के आविर्भाव पर प्रकाश डाला गया है। प्रेमचन्द और गाँधी जी का

आविर्भाव लगभग एक ही समय में हुआ। प्रेमचन्द युग हिन्दी उपन्यास साहित्य का अत्यन्त स्वर्णिम युग रहा है। इस अध्याय में पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में गाँधी की तलाश, प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास में गाँधी, प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में तथा स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में गाँधी चिंतन के प्रभावों एवं अभिव्यक्तियों पर विचार किया गया है। अन्त में समकालीन हिन्दी उपन्यासों में गाँधी चिंतन के उसकी मुख्य प्रवृत्ति के रूप में विचार किया गया है। बहुलता को अपनाकर समकालीन हिन्दी उपन्यासों ने प्रतिरोध का रास्ता अपनाया। उसमें गाँधी चिन्तन एक मुख्य प्रवृत्ति बन गया। खोई हुई भारतीय संस्कृति को पुनःप्रतिष्ठित करने की क्षमता को लेकर चलने वाले गाँधी चिन्तन की प्रासंगिकता पर भी इस अध्याय में विचार किया गया है।

तीसरा अध्याय है- **'सामाजिक एवं लोकतंत्रीय व्यवस्था में गाँधी चिन्तन'**। इस अध्याय में सामाजिक व्यवस्था के बदलते स्वरूप तथा वर्तमान भारतीय समाज के गिरते जीवन मूल्यों पर प्रकाश डालते हुए गाँधी जी के विचारों की आवश्यकता पर बल दिया गया है। मानवता का ह्रास, स्त्री, दलित, आदिवासी, किसान एवं मज़दूर समूह की समस्याओं, लोकतंत्रीय व्यवस्था तथा उससे त्रस्त आम जनता आदि द्वारा वर्तमान सामाजिक एवं लोकतंत्रीय व्यवस्था के पतन को दर्शाया गया है। आज लोकतंत्र केवल वोट की राजनीति का खेल मात्र रह गया है। आज यह जनतंत्र से हटकर फासीवादी तंत्र बन चुका है। उपन्यासों का इशारा इस ओर है। साथ ही उपन्यासकारों ने गाँधी की शक्ति को पुनःपहचान लिया है। इस पहचान ने

समकालीन हिन्दी उपन्यास में गाँधी चिंतन को पुनःप्रतिष्ठित करने का कार्य किया। यह पहचान मात्र नहीं सख्त प्रतिरोध भी है। सामाजिक एवं लोकतंत्रीय व्यवस्था के पतन से उद्धार गाँधी दर्शन से ही संभव है। इस बदली हुई मानसिकता को इस अध्याय में रेखांकित किया गया है।

चौथा अध्याय है- **'भूमंडलीकरण के अर्थतंत्र एवं विकासवाद के प्रतिरोध में गाँधी चिन्तन'**। इस अध्याय में भूमंडलीकरण तथा विकास के माध्यम से किस प्रकार भारतीय समाज को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है उस यथार्थ को उपन्यासकारों ने प्रस्तुत किया है। वैश्वीकरण तथा नव साम्राज्यवाद, बाज़ारवाद, उपभोगवादी संस्कृति, मुनाफावाद, मॉल कलचर, ब्रांड संस्कृति, विज्ञापन एवं मीडिया की सच्चाई जैसे भूमंडलीकृत दुनिया के नये नये पैंतरों को भारतीय अर्थतंत्र को भोगना पड़ रहा है। उस का सशक्त चित्रण उपन्यासों में हुआ है। विकास से उत्पन्न भयानक त्रासदी, सरकारी कल्याणकारी योजनाओं की विफलता, प्राकृतिक संसाधनों का अति-दोहन, शहर केन्द्रित विकास जैसे विकास के नए मापदण्डों के कारण पर्यावरणीय असंतुलन एवं प्रदूषण के चक्र में फँसे मानव की सच्चाई का उद्घाटन इस अध्याय में हुआ है। ऐसे सन्दर्भ में गाँधी एवं उनके विचारों की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है। आत्मनिर्भर भारत का उनका सपना आज ढह गया है। विदेशी बाज़ार व्यवस्था ने स्वदेशी की भावना को पूर्ण रूप से दर किनार कर दिया है। सचमुच भारत का समग्र विकास उसकी परंपरा एवं संस्कृति के अनुरूप गाँधी जी के विचारों को अपनाकर ही संभव होगा। इस

दृष्टि से इस अध्याय में उपन्यासों का विश्लेषण एवं अध्ययन किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय है **'धर्मनिरपेक्ष संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में गाँधी चिन्तन'**। इसमें धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या करते हुए भारतीय धर्मनिरपेक्षता पर विचार व्यक्त किया गया है। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में धर्म को मज़हबी सोच के साथ मिलाकर सांप्रदायिक सौहार्द को तोड़ने के भरपूर प्रयासों का चित्रण किया गया है। सांप्रदायिकता, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, धार्मिक कटुता एवं कट्टरता ने वर्तमान समय को पेचीदा कर दिया है। धर्मनिरपेक्षता को धर्म सापेक्ष बनाने की जो नीति चल रही है उसको खण्डित करने के लिए तटस्थ सोच की आवश्यकता है। यह तटस्थता गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित उनके मानवतावादी धर्म में ही मौजूद है। चुने गए समकालीन उपन्यासों में गाँधी जी की इसी विचारधारा की अनिवार्यता की ओर इशारा किया है। इस पर विस्तृत चर्चा इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

अंत में उपसंहार है उसमें प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों को संक्षेप में समाहित किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर डॉ. एन. मोहनन जी के निदेशन में संपन्न हुआ है। उनके बहुमूल्य सलाहों एवं सुझावों से ही मेरा यह शोध कार्य सार्थक हो पाया है। यहाँ तक पहुँचने के लिए वे सदैव मुझे प्रेरणा देते रहे हैं। मुझे उनका मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन हमेशा से ही मिला है। मैं उन्हें तहे दिल से कृतज्ञता

अर्पित करती हूँ। मैं सदैव उनके प्रति आभारी रहूँगी।

कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एवं मेरे डॉक्टरल कमेटी के विषय विशेषज्ञा डॉ. के. वनजा जी के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। उनका इस विषय को लेकर जो गहरा अवबोध है वह मेरे इस शोध का मार्गदर्शन बना। उन्होंने मेरी काफी मदद की है। वे मेरे शोध-कार्य को उचित दिशा प्रदान करने के लिए हमेशा प्रस्तुत रही हैं। मैं उनके प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

विभागाध्यक्ष और विभाग के अन्य आदरणीय गुरुजनों के प्रति भी मैं आभारी हूँ कि वे मुझे निरन्तर प्रोत्साहन देते रहे हैं।

हिन्दी विभाग के पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ।

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, डी.ए.सी एण्ड एफ.डब्ल्यू, कृषि भवन, नई दिल्ली के हिन्दी अनुवाद अनुभाग के मेरे अधिकारी एवं कर्मचारी मित्रों के प्रति भी मैं आभारी हूँ। मेरे अनुभाग ने प्रस्तुत शोध कार्य की संपूर्ति में मेरी काफी मदद की है तथा इस शोध कार्य को संपन्न करने में काफी प्रेरणा दी है।

मैं अपने सभी मित्रों के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने मेरे इस शोधकार्य को सार्थक बनाने हेतु काफी मदद की।

प्रस्तुत शोध कार्य की पूर्ति में मेरे परिवार का योगदान अहम रहा।

मेरे माता-पिता, भाई-बहन और मेरे पति के संपूर्ण सहयोग एवं प्रेरणा के बिना यह शोध कार्य संभव नहीं हो पाता। उनके असीम स्नेह एवं सहयोग के कारण ही मैं अपने शोध कार्य को समाप्ति तक ला पायी हूँ। मैं अपने इस शोध प्रबन्ध को अपने प्रियजनों को सविनय समर्पित करती हूँ।

मैं उस महान ईश्वर के प्रति कृतज्ञ हूँ जिनकी कृपा हमेशा मेरे साथ बनी रही है।

मैं यह शोध प्रबन्ध सविनय विद्वानों के सामने प्रस्तुत कर रही हूँ। इसकी कमियों तथा गलतियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

सविनय

सुस्मिता घई

शोध छात्रा,

हिन्दी विभाग

कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

कोच्चिन - 682 022

तारीख : 10.07.2019

विषयप्रवेश

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय **1-89**

गाँधी चिंतन की अवधारणा

1.1 गाँधी चिंतन का स्वरूप

1.2 गाँधी चिंतन के स्रोत

1.3 गाँधी चिंतन के मूल तत्व

1.4 गाँधी चिंतन का विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग

1.4.1 सामाजिक कार्यक्रम

1.4.1.1 साम्प्रदायिक एकता

1.4.1.2 अस्पृश्यता निवारण तथा हरिजनोद्धार

1.4.1.3 नारी उद्धार

1.4.1.4 किसानों एवं मज़दूरों की उन्नति

1.4.1.5 आदिवासी तथा अल्पसंख्यकों की उन्नति

1.4.1.6 शिक्षा कार्यक्रम

1.4.2 आर्थिक कार्यक्रम

1.4.2.1 अहिंसक अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक समानता

1.4.2.2 संरक्षता का सिद्धान्त अथवा ट्रस्टीशिप

1.4.2.3 आर्थिक विकेन्द्रीकरण

1.4.2.4 ग्रामीण विकास

1.4.2.5 ग्राम स्वराज

1.4.2.6 पंचायती राज

1.4.2.7 ग्रामोद्योग

1.4.2.8 खादी

1.4.2.9 चरखा

1.4.2.10 लघु एवं कुटीर उद्योग

1.4.2.11 स्वदेशी की भावना

1.4.2.12 राष्ट्रीय आय का वितरण

1.4.3 राजनैतिक कार्यक्रम

1.4.3.1 गाँधी एक राजनैतिक चिंतन

1.4.3.2 स्वराज्य की अवधारणा

1.4.3.3 सर्वोदय की परिकल्पना

1.4.3.4 रामराज्य का आदर्श

1.4.3.5 राजनीति का आध्यात्मीकरण

1.4.3.6 राष्ट्रवाद

1.4.3.7 एक राष्ट्र एक भाषा

1.4.3.8 गाँधी के राष्ट्रवाद में सत्याग्रह तथा उसकी विधियाँ

1.4.3.9 लोकतंत्र की परिकल्पना

1.4.4 धार्मिक कार्यक्रम

1.4.4.1 धर्म विषयक अवधारणा

1.4.4.2 हिन्दुत्व की अवधारणा

1.4.5 सांस्कृतिक कार्यक्रम

1.4.5.1 संस्कृति से तात्पर्य

1.4.5.2 भारतीय संस्कृति

1.4.5.3 पश्चिमी सभ्यता

1.4.5.4 भाषा

1.4.5.5 पारिस्थितिकी

1.4.5.6 कला

1.4.5.7 साहित्य

1.5 साहित्यिक क्षेत्र में गाँधी चिन्तन

1.5.1 साहित्य की परिभाषा

1.5.2 हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में गाँधी चिन्तन

1.5.2.1 हिन्दी कविता में गाँधी चिन्तन

1.5.2.2 हिन्दी कहानी में गाँधी चिन्तन

1.5.2.3 हिन्दी नाटक में गाँधी चिन्तन

1.6 निष्कर्ष

दूसरा अध्याय **90-150**

हिन्दी उपन्यास में गाँधी

2.1 उपन्यासः परिभाषा एवं स्वरूप

2.2 हिन्दी उपन्यास का विकास और गाँधी जी का आविर्भाव

2.3 पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में गाँधी की तलाश

2.3.1 सत्य एवं अहिंसा

2.3.2 सामाजिकता और गाँधी

2.3.3 राजनीति एवं धर्म

2.3.4 आर्थिक तत्व

2.3.5 सांस्कृतिक तत्व

2.4 प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में गाँधी चिन्तन

2.4.1 गाँधी चिंतन के मूल तत्व

2.4.1.1 सत्य

2.4.1.2 अहिंसा

2.4.1.3 सत्याग्रह

2.4.2 गाँधी चिंतन संबंधी सामाजिक तत्व

2.4.2.1 हरिजनोद्धार एवं अस्पृश्यता निवारण

2.4.2.2 वर्ण व्यवस्था

2.4.2.3 स्त्रियों की उन्नति

2.4.2.4 किसानों एवं श्रमिकों की उन्नति

2.4.3 गाँधी चिंतन संबंधी राजनैतिक तत्व

2.4.3.1 साम्प्रदायिक एकता

2.4.3.2 असहयोग आन्दोलन

2.4.3.3 स्वदेश प्रेम

2.4.4 गाँधी चिन्तन संबन्धी धार्मिक पक्ष

2.4.5 गाँधी चिन्तन संबन्धी आर्थिक पक्ष

2.4.5.1 आर्थिक समानता

2.4.5.2 स्वदेशी आन्दोलन

2.4.5.3 ग्रामोद्योग

2.4.6 गाँधी चिन्तन संबन्धी सांस्कृतिक तत्व

2.4.6.1 परोपकार

2.4.6.2 सदाचार

2.4.6.3 अतिथि सत्कार

2.4.6.4 सेवा भावना

2.4.6.5 बुनियादी तालीम

2.4.6.6 राष्ट्रभाषा-मातृभाषा प्रेम

2.5 प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में गाँधी चिन्तन

2.6 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में गाँधी चिन्तन

2.7 समकालीन हिन्दी उपन्यासों में गाँधी चिन्तन

2.8 निष्कर्ष

तीसरा अध्याय **151-207**

सामाजिक एवं लोकतंत्रीय व्यवस्था में गाँधी चिन्तन

3.1 सामाजिक व्यवस्था के बदलते स्वरूप

3.2 स्वार्थ केन्द्रित जीवन

3.3 संवेदनहीन समाज तथा जीवन मूल्यों का बिखराव

3.4 मानवता का ह्रास- अमानवीयता का तांडव

3.5 गाँव का टूटना - शहर का बनना

3.6 महानगरीय संस्कृति

3.7 हाशिए का समाजः स्त्री, दलित, आदिवासी, किसान एवं मज़दूर

3.7.1 आधी आबादीः स्त्री

3.7.2 दलित

3.7.3 आदिवासीः भारत के मूल निवासी

3.7.4 किसानः एक मरती हुई प्रजाति

3.7.5 मज़दूर
3.8 लोकतंत्रीय व्यवस्था एवं आम जनता
3.9 मताधिकार में बदलता लोकतंत्र
3.10 भ्रष्टाचार की राजनीति
3.11 शिक्षा क्षेत्र की विसंगतियाँ
3.12 लोकतंत्र से स्वराज्य तक
3.13 निष्कर्ष

चौथा अध्याय **208-265**

भूमंडलीकरण के अर्थतंत्र एवं विकासवाद के प्रतिरोध में गाँधी चिन्तन

4.1 वैश्वीकरण बनाम नव साम्राज्यवाद
4.2 बाज़ारवाद की चुनौती
4.3 उपभोगवादी संस्कृति
4.4 बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व
4.5 मूल्य ह्रास से मुनाफे तक
4.6 मॉल संस्कृति
4.7 ब्रांड संस्कृति का उदय
4.8 विज्ञापन की मायावी दुनिया
4.9 मीडिया का झूठा चेहरा
4.10 पश्चिमी नीति
4.11 विकास की भयानक त्रासदी
4.12 सरकारी कल्याणकारी योजनाओं की विफलता
4.13 प्राकृतिक संसाधनों का दोहन

4.14 शहर केन्द्रित विकास नीति
4.15 निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय **266-315**

धर्मनिरपेक्ष संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में गाँधी चिन्तन

5.1 धर्म रूपी अफीम का फैलाव
5.2 धर्म में राजनीति की मिलावट
5.3 सांप्रदायिक आँधी की भीषण लहर
5.4 राष्ट्रवाद बनाम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद
5.5 भेदभाव का संकट
5.6 अपसंस्कृतिकरण का दौर
5.7 प्रतिरोधी धर्मनिरपेक्ष संस्कृति
5.8 स्थानीयता की ओर उन्मुखता
5.9 बहुलता की संस्कृति
5.10 निष्कर्ष

उपसंहार **316-328**

सन्दर्भ ग्रंथ सूची **329-347**

परिशिष्ट **348**

पहला अध्याय

गाँधी चिंतन की अवधारणा

गाँधी चिंतन की अवधारणा

भारतीय राजनीति के क्षितिज पर गाँधीजी का आविर्भाव एक अविस्मरणीय घटना रही है। उन्होंने राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर भारतीय जन-मानस को नयी ऊर्जा प्रदान की। वर्तमान तकनीकी युग में गाँधी चिन्तन एक अद्यतन भविष्य के लिए दस्तक दे रहा है। आज देश सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संकट से गुज़र रहा है। पूरे विश्व में भी ये संकट कमोबेश दिखाई दे रहे हैं। इन समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास हर स्तर पर किया जा रहा है। आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए विश्व के आर्थिक संगठन जैसे आई एम एफ, विश्व बैंक आदि प्रयत्नशील हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से जितनी सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं उतने ही उसके दुष्परिणाम मानवता को भोगने पड रहे हैं। लेकिन इन समस्याओं का शाश्वत सुलझाव ही नहीं हो रहा है। इन विषम स्थितियों से बचने, उससे छुटकारा पाने की तमाम कोशिशें जारी हैं।

विभिन्न समय में हमारा समाज प्रत्येक विचारधाराओं के प्रभाव में आकर अपनी तत्कालीन स्थिति को सुधारने की कोशिश करता आया है। लेकिन कोई भी विचारधारा समूचे वर्ग विशेष की समस्याओं को सुलझाने में या प्रतिनिधित्व करने में नाकाम रही है । किन्तु महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित उनका चिन्तन इतना व्यावहारिक है जिसके माध्यम से समग्र सुधार लाया जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ दशाब्दियों तक गाँधी-दर्शन और

उनकी पद्धतियाँ हमें नाकामयाब लगी जिसकी वजह से वह जनता से दूर रहा लेकिन अब गाँधी चिंतन इस नई शताब्दी के नए सपनों की दहलीज पर पुनः खडा हो गया है। समूचा विश्व आज इसकी ओर आकांक्षा के साथ देख रहा है। गाँधी चिन्तन इस सदी का सच है, आनेवाली सदी का चेहरा है। यह हमें दिखाता है कि आनेवाला कल उन्हीं के नाम होगा, यदि हमने खुली आँखों से उन्हें आत्मसात कर लिया। गाँधीजी के बारे में ज्यां पॉल सात्र ने कहा था कि विश्व में रक्त की एक बूंद बहाए बिना कुछ होने का एक सपना किसी दर्शन में है तो वह सिर्फ और सिर्फ गाँधी दर्शन में है।

गाँधी चिंतन और हमारा समय इन दिनों विश्व को अहिंसा का एक नया सृजन फलक प्रदान कर रहा है। इस के जरिए हम विश्व को शांति का एक नया चित्र दे सकते हैं तथा गाँधी चिंतन की एक नई व्याख्या प्रस्तुत कर सकते हैं। आज गाँधी चिंतन पूरे विश्व को एक नया दिशा बोध प्रदान कर रहा है। आतंक, बिखराव और दहशत से जूझते विश्व के लिए आज गाँधी चिंतन और उनका अहिंसा सिद्धांत का व्यावहारिक पक्ष ही एक मात्र चिराग है जिससे विश्व में व्याप्त अमानवीयता के अंधेरे को दूर किया जा सकता है।

इसलिए गाँधी जी के चिंतन की नई परिभाषा की ज़रूरत है। प्रश्न यह भी उठाया जा रहा है कि क्या गाँधी जी के चिंतन का इस नई सदी के बदलते हुए परिदृश्य में उतनी ही प्रासंगिकता है, जितनी पहले थी। आज के इस ग्लोबल दुनिया के सामने जो विश्व स्तरीय चुनौतियाँ हैं, उन्हें सुलझाने की क्षमता इस दर्शन में है?

1.1 गाँधी चिन्तन का स्वरूप

गाँधी चिन्तन वस्तुतः एक व्यावहारिक चिन्तन है। उनका व्यक्तित्व एक व्यावहारिक कर्मयोगी का रहा है। इसीलिए उन्होंने न तो अपने किसी सिद्धान्त को दार्शनिक पूर्णता तक पहुँचाने का प्रयास किया और न राजनीतिक विचारकों की भाँति भविष्य में उत्पन्न होनेवाली संभावित समस्याओं पर विचार किया। "वे भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को ही अधिक महत्व दिया करते थे।"[1]

गाँधी जी ने तत्कालीन समय के अनुरूप अपने चिंतन को रूप दिया। फिर भी इसमें इतनी शक्ति निहित है कि जहाँ एक ओर यह वर्तमान समस्याओं के समाधान का साधन प्रस्तुत करता है वही दूसरी ओर भविष्य के लिए भी सफल कार्यक्रमों की रुपरेखा प्रस्तुत करता है। गाँधी जी के जीवन दर्शन के लिए सामान्य रूप से 'गाँधीवाद' नाम प्रचलित है। गाँधी-इर्विन समझौते के बाद एक सार्वजनिक सभा में गाँधी जी ने खुद कहा कि- "गाँधी मर सकता है पर गाँधीवाद सदा जीवित रहेगा।"[2] परन्तु कुछ वर्ष पश्चात् ही गाँधीजी ने सन् 1936 में एक भाषण में कहा कि- "गाँधीवाद नाम की कोई चीज़ नही है और न ही अपने पीछे मैं कोई ऐसा संप्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ। मैं कदापि यह दवा नहीं करता कि मैंने किन्हीं नए सिद्धांतों को जन्म दिया है; मैंने तो अपने निजी तरीके से शाश्वत सत्यों को दैनिक जीवन और उसकी समस्याओं पर लागू करने का प्रयत्न मात्र किया है। मैंने जो सम्मतियाँ बनाई हैं और जिन परिणामों पर मैं पहुँचा हूँ, वे अंतिम नहीं

1. Selections from Gandhi P. 11x26
2. डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमैया - गाँधी और गाँधीवादः प्रथम भाग, पृ. 26

है। मैं उन्हें बदल भी सकता हूँ। मुझे संसार को कुछ नया नहीं सिखाना है। सत्य और अहिंसा उतने ही पुराने हैं जितनी कि ये पहाडियाँ। मैंने तो केवल व्यापक आधार पर सत्य और अहिंसा दोनों क्षेत्रों में अपनी शक्ति भर परीक्षण करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार सत्य और अहिंसा के आचरण में जीवन और उसकी समस्याएँ मेरे लिए अनेक विध परीक्षण बन गये हैं। अपनी सहज जन्मजात प्रकृति से मैं सच्चा तो रहा हूँ, परन्तु अहिंसक नहीं। तथ्य तो यह है कि सत्य मार्ग की खोज में ही मैंने अहिंसा को ढूँढ़ निकाला। मेरा दर्शन जिसे आपने गाँधीवाद का नाम दिया है सत्य और अहिंसा में निहित है। आप इसे गाँधीवाद के नाम से न पुकारे क्योंकि इसमें वाद तो है नहीं।"[1] गाँधी जी द्वारा ही 'वाद' शब्द का विरोध किए जाने पर उनकी जीवन दृष्टि को गाँधी चिन्तन से अभिहित करना उचित रहेगा। वह जीवन का स्वस्थ दृष्टिकोण है जिसमें परिष्करण, समन्वय और साधना विद्यमान है।

1.2 गाँधी चिंतन के स्रोत

गाँधी जी आधुनिक युग के सबसे बडे मनीषी रहे। उनके जीवनादर्श को एक शब्द में 'सर्वोदय' की संज्ञा दे सकते हैं। उनका चिंतन भारतीय ज्ञान-विज्ञान एवं संस्कृति का निचोड़ है। भूतकाल के विशिष्ट अनुभवों, तत्कालीन परिस्थितियों तथा प्रत्येक के व्यक्तिगत अनुभवों से नवीन चिन्तन का उद्‌भव होता है। प्रत्येक चिंतन के विभिन्न स्रोत होते हैं। एक चिंतन तभी उपयोगी सिद्ध होता है जब यह पता चले कि उसने अतीत से कितना ग्रहण किया, वर्तमान को वह क्या दे सकता है और भविष्य पर वह कितनी छाप छोड सकेगा।

---

1. डॉ. बी. पट्‌टाभी सीतारमैया - गाँधी और गाँधीवाद, प्रथम भाग, पृ. 26

इस सन्दर्भ में गाँधी चिंतन का महत्व अद्वितीय निकलता है। गाँधी चिंतन के तीन स्रोत प्रमुख है - 1. व्यक्तिगत अनुभव 2. भारतीय परंपरा 3. विश्व परंपरा।

1.2.1 व्यक्तिगत अनुभव

गाँधी जी के चिंतन के रुपायण में उनके व्यक्तिगत अनुभवों का महत्वपूर्ण स्थान है। बचपन में देखे गये हरिश्चन्द्र नाटक से उनके भीतर 'सत्य' के प्रति निष्ठा जागृत हुई, "विपत्तियों को भोगना और सत्य का पालन करना ही वास्तविक सत्य है।"[1] एक अन्य सन्दर्भ में उन्होंने कहा हैं "मेरा यह विश्वास दिन-प्रतिदिन बढता जाता है कि एक सत्य ही है, उसके अलावा दूसरा कुछ भी जगत में नहीं है।"[2] निर्भयता, सत्यनिष्ठा, न्याय का पक्ष लेकर उसके लिए लडना, स्वामिभक्ति, व्रत, उपवास आदि के बीज गाँधीजी को अपने परिवार से संस्कार के रूप में प्राप्त हुए थे।

1.2.2 भारतीय परंपरा

गाँधी चिंतन में भारतीय संस्कृति तथा परंपराओं का स्पष्ट प्रभाव है। भारत की आध्यात्मिक शक्ति पर उनका पूरा विश्वास है। गाँधी जी का निश्चित मत था कि दुनिया में किसी संस्कृति का भंडार इतना भरा-पूरा नहीं है जितना भारतीय संस्कृति का। वेदों के समय से हमारी सभ्यता चली आ रही है।

वेद भारतीय संस्कृति और चिंतन के आदि स्रोत है। उन्हें अपौरूषेय

1. एम.के गाँधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ. 5
2. वही - पृ. 8

अथवा दिव्य माना जाता है। गाँधी जी ने सत्य की धारणा काफी हद तक वेदों से ली है। उनके अनुसार सृष्टि में एकमात्र सत्य की ही सत्ता है और उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है। पृथ्वी सत्य के बल पर टिकी हुई है। उनका मानना है "कि ज्ञान सनातन है।"[1] और "वेद इसी सनातम ज्ञान के वाहक हैं।"[2]

गाँधीजी पर उपनिषद् का भी प्रभाव रहा। उपनिषद् का अर्थ है अध्यात्म विद्या या ब्रह्मविद्या। इन्हें वेदान्त भी कहा जाता है। इसमें निहित मानव जाति की एकता, हर प्राणी में परमात्मा का अंश जैसी मान्यताओं को गाँधी जी ने आत्मसात् किया। उन्होंने कहा "परमेश्वर का साक्षात्कार करना ही जीवन का एक मात्र उचित ध्येय है। जीवन के दूसरे सब कार्य यह ध्येय सिद्ध करने केलिए होने चाहिए।"[3] उपनिषदों में परमसत्ता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आत्म संयम, विनम्रता, प्रार्थना, ध्यान, भक्ति जैसी वृत्तियों पर जोर दिया गया है। ये वृत्तियाँ बाद में गाँधी जी के आत्म निर्माण की सीढियाँ बनीं।

महात्मा पर जिन ग्रन्थों का सबसे अधिक प्रभाव पडा था उनमें रामायण का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने तुलसीदास कृत रामचरितमानस को विचार रत्नों का भंडार कहा है। गाँधी जी ने अपने रामराज्य की कल्पना सीधे रामायण से ली है। रामराज्य गाँधी जी के आदर्श राज्य की संकल्पना है। "रामराज्य स्वराज्य का आदर्श है। इसका अर्थ है धर्म का राज्य अथवा न्याय और प्रेम का राज्य, अथवा अहिंसक स्वराज्य या जनता का स्वराज्य।"[4]

---

1. कलक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, भारत सरकार, खंड, 87, पृ. 206-207
2. वही, खंड 87, पृ. 206-207, 49/45
3. श्री किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, खंड 1, पृ. 13
4. वही, खंड 5, पृ. 61

गाँधीजी के अनुसार महाभारत एक गहन धार्मिक ग्रन्थ है। उनके अनुसार इतिहास के साथ इसका कोई संबन्ध नहीं। उसमें उस शाश्वत युद्ध का वर्णन है जो हमारे अंदर निरंतर होता रहता है। वे उसे रत्नों की एक खान मानते थे। जिनमें गीता सबसे अधिक देदीप्यमान रत्न है। मनुष्य को अगर एक अमर प्राणी समझा जाए तो महाभारत उसका एक आध्यात्मिक इतिहास है।

भगवद्‌गीता को गाँधीजी 'शाश्वत मार्ग दर्शिका' कहते थे। वे अपने हर कार्य के लिए गीता में से आधार खोजते थे। गीता में प्रतिपादित 'कर्मवाद' से गाँधीजी प्रभावित रहे और उन्होंने अपने चिंतन में कर्मयोग की महत्ता को स्थापित किया। "अनासक्तियोग गीता का ध्रुवपद है - अर्थात् कर्म के फल की अभिलाषा छोडकर कर्तव्य, कर्मों को सतत करते रहने का उपदेश उसकी ऐसी ध्वनि है जो कभी भुलाई न जाय।....... सत्य, अहिंसादि के संपूर्ण पालन के बिना इस योग की सिद्धि होना असंभव है।"[1] अर्थात् उनके अनुसार कर्म ही जीवन का आधार सत्य है जिससे मानव की दिशा तय होती है। कर्म मनुष्य के जीवन चक्र को नियंत्रित तथा निर्देशित करता हैं।

जैन धर्म की भी गाँधीजी के ऊपर गहरी छाप पडी है। वे जैन धर्म के विभिन्न सिद्धान्तों में से स्याद्‌वाद से बहुत प्रभावित रहे। स्याद्‌वाद का अर्थ है "विभिन्न दृष्टिकोणों का पक्षपात रहित होकर तटस्थ बुद्धि और दृष्टि से समन्वय करना।"[2] गाँधी जी ने इस दर्शन को अपने चिंतन में अपनाया।

1. श्री किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, खंड 2, पृ. 22
2. डॉ. धर्मेन्द सिंह - गाँधीय आर्थिक दर्शन, पृ. 5

अहिंसा की परंपरा को बनाए रखने में जैन धर्म का सराहनीय योग रहा है। जैन धर्म के अहिंसक विचार, अपरिग्रह, अनासक्ति आदि से गाँधीजी प्रभावित हुए।

गाँधीजी जैन धर्म के अलावा बौद्ध धर्म से भी अत्यधिक प्रभावित हुए। बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग को गाँधीजी ने अपने जीवन में पूर्णतः ग्रहण कर लिया। "अष्टांगिक मार्ग प्रज्ञाशील तथा समाधि के आधार पर तय किये गये हैं। जब तक मनुष्य में ज्ञानयुक्त आचरण तथा आध्यात्मिक भाव नहीं होते हैं तब तक प्रज्ञाशील तथा समाधि के आदर्श तत्व उत्पन्न नही हो सकते हैं।"[1] गाँधीजी ने इसे अपने जीवन में आत्मसात् किया और मानवता के लिए एक कल्याणकारी आचरण मार्ग प्रशस्त करते हुए समस्त दुःखों पर विजय प्राप्त करने का सन्देश प्रदान किया।

1.2.3 विश्व परंपरा

गाँधी जी उत्कृष्ट श्रेणी के ऐसे चिन्तक थे जिन्होंने अनेक विचारकों तथा विद्वानों के साहित्य का अध्ययन किया था। गाँधी जी की विचारधारा में न केवल भारतीय संस्कृति का पुट है बल्कि समूचे विश्व के विचारकों एवं विद्वानों के चिंतन के सार तत्व निहित है।

पश्चिम में राजनीतिक चिंतन की शुरुआत यूनान से मानी जाती है। यूनान के तीन प्रमुख विचारकों यथा सुकरात, प्लेटो और अरस्तु का प्रभाव

---

1. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शाक्य, बौद्ध दर्शन, पृ. 30-32

गाँधी चिंतन में परिलक्षित होता है। सुकरात का बलिदान सत्य के प्रति इतिहास का पहला बलिदान है। गाँधी जी के जीवन पर सुकरात के सत्यान्वेषण की स्पष्ट छाप है। गाँधी जी सुकरात की भाँति अपने सिद्धान्तों की खातिर ही शहीद हुए थे।

प्लेटो अपने आदर्श राज्य की परिकल्पना के लिए जाने जाते हैं। 'रिपब्लिक' में उन्होंने एक आदर्श राज्य एवं उसकी शासन व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत किया। वस्तुतः गाँधी चिंतन भी समग्र मानव जीवन के पुनर्गठन का प्रयास है। प्लेटो की पद्धति गाँधी जी की पद्धति के समान है क्योंकि इसमें जीवन की सभी समस्याओं पर विचार किय गया है। प्लेटो के समने यदि मुख्य प्रश्न न्याय की खोज है तो गाँधी के सामने वह सत्य की खोज है। न्याय तथा सत्य दोनों भावपरक कल्पनाऐं हैं।

अरस्तु ने एक विधि सम्मत राज्य की कल्पना की। मानव चिंतन को अरस्तु की स्थायी देन मध्यम मार्ग का सिद्धान्त है। अति राज्यों का नाश कर देती है। गाँधी जी अपने आदर्श की व्यावहारिकता पर आश्वस्त थे। उनका कहना था कि हमें आदर्श के बारे में निश्चित होना चाहिए। हम उसकी पूर्ण अनुभूति में असफल रहेंगे। लेकिन हमें उसके लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए।

गाँधी जी पर ईसाई मत का प्रभाव अप्रतिम रहा। बाइबिल की शिक्षाएँ गाँधी जी के सत्याग्रही दर्शन का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। आत्मकथा में

गाँधीजी ने स्वयं कहा है- "ईसा के 'गिरि-प्रवचन' का मुझ पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा। उसे मैंने हृदय में बसा लिया।... 'जो तेरे दाहिने गाल पर तमाचा मारे, बायाँ गाल भी उसके सामने कर दे' - यह पढकर मुझे अपार आनन्द हुआ।"[1]

इस्लाम की शिक्षाओं में ऐसे अनेक तत्व मिलते हैं जो गाँधी जी को मान्य थे। स्त्रियों को अधिक मान्यता देने की सोच इस मत में बहुत पहले से ही विद्यमान है। स्त्रियों को जो विशेष अधिकार इस्लाम धर्म में दिया जाता था वह उस समय की अन्य किसी भी धर्म की स्त्रियों के लिए सुलभ नहीं थे। गाँधी जी ने आजीवन हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्न किया।

पाश्चात्य चिंतकों में थोरो, रस्किन, टॉलस्टॉय का भी प्रभाव गाँधीजी के चिंतन में पाया जाता है। अमरीका के अराजकतावादी विचारक हेनरी डेविड थोरो ने सबसे पहले वर्ष 1849 में 'सिविल डिसओबेडियन्स' शब्द का प्रयोग किया। गाँधी जी ने इसी सिद्धान्त अर्थात् 'सविनय अवज्ञा' को अपनाया।

जॉन रस्किन लेखक, समाज सुधारक थे। गाँधी जी के मनोजगत पर रस्किन द्वारा लिखे गये पुस्तकों का प्रभाव सबसे अधिक दृष्टिगोचर होता है। उनमें रस्किन की 'अन टु दिस लास्ट' प्रमुख है। इसी को गाँधीजी ने 'सर्वोदय' का नाम दिया।

गाँधी जी पर टॉलस्टॉय की पुस्तक 'दि किंग्डम ऑफ गोड इज विद इन यू' का गहरा प्रभाव पडा। टॉलस्टॉय और गाँधीजी के बीच पत्र व्यवहार

1. एम.के गाँधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ.63

भी होते रहे। उन्होंने गाँधी द्वारा चलाये जा रहे सत्याग्रह आन्दोलन को "केवल भारतियों केलिए ही नहीं बल्कि संपूर्ण मानवता केलिए महत्वपूर्ण"[1] बताया।

संक्षेप में गाँधी चिंतन का कल्याणकारी स्वरूप अनेक घटकों का परिणाम है। ये घटक ऐसे हैं जिन्होंने गाँधीजी को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया और उनके विचारों पर अपना अमिट प्रभाव डाला।

1.3 गाँधी चिंतन के मूल तत्व

गाँधी चिंतन का आधार उसके मूल तत्वों में निहित है। उनमें सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा सर्वप्रथम है। क्योंकि वे ही गाँधी जी के चिंतन की नींव हैं। ये ही उनकी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विचारधाराओं को एक गरिमामय स्थान प्रदान करते हैं। इनके अलावा गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत 'सत्याग्रह' को भी मूल तत्वों में रखा जा सकता है।

इन तत्वों पर विचार करते समय यह भी पता चलता है कि ये कोई नवीन तत्व नहीं हैं बल्कि चिरंतन काल से चली आ रही भारतीय संस्कृति एवं परंपरा का ही निचोड है, "नये सिद्धान्तों को जन्म देने का दावा मैं नहीं करता। मैंने तो केवल अपने ढंग पर सनातन सत्यों को दैनिक जीवन समस्याओं पर लागू करने का प्रयास किया है।"[2] गाँधीजी ने उनको आधुनिक जीवन के अनुरूप व्यावहरिक रूप देने की नवीन दृष्टि अपनाई।

---

1. विश्व प्रकाश गुप्त-मोहिनी गुप्त - महात्मा गाँधी व्यक्ति और विचार, पृ. 101
2. हरिजन, 25 मई 1936

1.3.1 सत्य

सत्य जीवन का आधारभूत तत्व है। यही तत्व गाँधी चिंतन का मूल मन्त्र है। गाँधी जी का संपूर्ण जीवन सत्य के प्रयोगों से पूर्ण है। उपनिषदों में कहा गया है कि-"सत्य का मार्ग वह पथ है जिसका अनुगमन देव अथवा विद्वान लोग करते हैं क्योंकि यही मुक्ति का विधायक तत्व है।"[1] हिन्दु धर्म ने सत्य को ब्रह्म के अंश के रूप में प्रतिपादित किया है। 'ब्रह्म सनातन सत्य है, अपरिमेय ज्ञान' के रूप में माना है। कबीर की वाणी इस बात की पुष्टि करती है कि सच्चे ह्रदय में ही ईश्वर का वास होता है- यह

"सांच बराबर तप नहीं, झुठ बराबर पाप।
जाके ह्रदय साँच है ताके ह्रदय आप।।"

स्पष्ट है कि प्रत्येक संप्रदाय एवं महापुरुषों ने सत्य को जीवन की परम आवश्यकता माना है।

गाँधीजी के अनुसार-"सत्य ही उनके जीवन का श्वास है।"[2] वे अपने को सत्य का शोधक मानते थे तथा अटूट विश्वास के साथ कहते थे कि वे सत्य को पाने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं। "मैं केवल सत्य का शोधक हूँ। मेरा दावा है कि मुझे सत्य का रास्ता मिल गया है। मेरा दावा है कि मैं सत्य को पाने का सतत् प्रयत्न कर रहा हूँ, परन्तु, मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे अभी तक वह मिला नहीं हैं। सत्य को पूरी तरह से प्राप्त कर लेना है अर्थात् संपूर्ण हो जाना है। मुझे अपनी अपूर्णताओं का दुःखद भान है और

---

1. मुण्डकोपनिषद्, खण्ड 3, श्लोक 6
2. डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमैया - गाँधी और गाँधीवादः प्रथम भाग, पृ. 13

उसी में मेरा सारा बल समाया हुआ है। क्योंकि अपनी मर्यादाओं को जान लेना मनुष्य केलिए दुर्लभ वस्तु है।"[1] वे सच्चाई के साथ इस सत्य को मानते हैं कि सत्य को पाना आसान कार्य नहीं है। इसके लिए मनुष्य को निरन्तर, प्रयत्नशील रहना पडेगा।

सत्य को गाँधीजी ईश्वर का रूप स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार "परमेश्वर की व्याख्यायें अनगिनत हैं, क्योंकि उसकी विभूतियाँ भी अनगिनत हैं। ये विभूतियाँ मुझे आश्चर्यचकित करती हैं। क्षण भर केलिए ये मुझे मुग्ध भी करती हैं। किन्तु मैं पूजारी तो सत्य रूपी परमेश्वर का ही हूँ। वह एक ही सत्य है, और दूसरा सब मिथ्या है।"[2] उनकी दृष्टि में सत्य के अभाव में परमेश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है। इसी को वे आत्म साक्षात्कार अथवा मोक्ष मानते हैं।

सत्य को अधिक प्रमुखता देते हुए गाँधी जी ने अपनी आत्मकथा का शीर्षक 'सत्य के प्रयोग' रखा। इस सन्दर्भ में वे कहते हैं-"यदि मुझे केवल सिद्धान्तों का अर्थात् तत्वों का ही वर्णन करना हो, तब तो यह आत्मकथा मुझे लिखनी ही नहीं चाहिए। लेकिन मुझे तो उन पर रचे गये कार्यों का इतिहास देना है, और इसलिए मैंने इन प्रयत्नों को 'सत्य के प्रयोग' जैसा पहल नाम दिया है।.... मेरे मन में सत्य ही सर्वोपरि है और उसमें अगणित वस्तुओं का समावेश हो जाता है। यह सत्य स्थूल-वाचिक-सत्य नहीं है। यह तो वाणी की तरह विचार का भी है। यह सत्य केवल हमारा

---

1. यंग इण्डिया - 17/12/1921
2. एम.के गाँधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ. 7

कल्पित सत्य ही नहीं है बल्कि स्वतंत्र चिरस्थायी सत्य है; अर्थात् परमेश्वर ही है।"[1]

सत्य की महिमा की व्याख्या देते हुए भी गाँधीजी की मान्यता है कि इस सर्वव्यापी सत्य के साक्षात्कार के लिए अहिंसा की साधना अनिवार्य है। अहिंसा के बिना सत्य दर्शन असंभव है। निष्कर्ष यह है कि "सत्य के जिज्ञासु का मार्ग आवश्यक रूप से अहिंसा का मार्ग है।"[2] गाँधी जी के अनुसार सर्वव्यापी सत्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा का अवलंब आवश्यक है। "विचार से जो सत्य जान पड़े उसी के सविवेक आचरण का नाम सत्य कर्म है।"[3] अहिंसात्मक सत्य कर्म ही मोक्ष प्राप्ति का मूल मन्त्र है।

1.3.2 अहिंसा

गाँधीजी की अहिंसा एक भावात्मक प्रक्रिया तथा शक्ति है जो हमें प्राणीमात्र से प्रेम करने के लिए प्रेरित करती है जो स्वार्थ से रहित हो। गाँधी चिंतन में अहिंसा और प्रेम वस्तुतः एक ही अर्थ के द्योतक शब्द है। "प्रेम का शुद्ध व्यापक स्वरूप अहिंसा है।"[4] गाँधी के अनुसार जिसने अपने जीवन में प्रेम और सेवा का व्रत धारण कर लिया उनके लिये प्रेम ही सबसे बडा शिक्षण है।

गाँधीजी की अहिंसा की सबसे बडी विशेषता उसकी व्यापकता है।

1. एम.के गाँधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ. 7
2. रामदीन गुप्त - प्रेमचन्द और गाँधीवाद, पृ. 20
3. श्री किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, पृ. 3
4. वही - पृ. 4

उसका दर्शन विराट हैं। उन्होंने सत्य एवं अहिंसा को मिलाकर विभिन्न समस्याओं का समाधान ढूँढने का आह्वान किया। उनके अनुसार "जीवन की जितनी विभूतियाँ हैं सब में अहिंसा का उपयोग है।"[1] गाँधीजी का लक्ष्य भारत को पश्चिमी सभ्यता के पंजे से छुडाकर सत्य एवं अहिंसात्मक मार्ग पर ले जाना था। उनकी कार्य पद्धति में अहिंसा सूर्य की भांति प्रतिष्ठित है। उनके संपूर्ण चिंतन, साधना एवं उनके प्रयोग का आधार अहिंसा ही है।

गाँधी जी की अहिंसा के विरोध में अक्सर यह कहा जाता है कि यह एक व्यक्ति साधना मात्र है। किन्तु गाँधी के शब्दों में "अहिंसा केवल वैयक्तिक गुण नहीं है। वह एक सामाजिक गुण भी है और अन्य गुणों की तरह उसका भी विकास किया जाना चाहिए। यह तो मानना ही होगा कि समाज के पारस्परिक व्यवहरों का नियमन बहुत हद तक अहिंसा के द्वारा होता है। मैं इतना ही चाहता हूँ कि इस सिद्धान्त का बडे पैमाने पर, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर विस्तार किया जाए।"[2] निस्सन्देह अहिंसा का पालन और उसका दैनिक जीवन में व्यवहार अत्यन्त कठिन है पर कठिन होने मात्र से ही तो कोई चीज़ त्याज्य नहीं हो जाती है। उसको जीवन में अपनाकर, व्यक्ति सीमा से समाज की व्यापकता में उसका रस लेना ही सच्चे अर्थों में प्रगति है।

अतः गाँधी जी के ही शब्दों में कहा जाए तो -"अहिंसा एक निर्जीव सिद्धान्त नहीं है, अपितु एक जीवित और प्राणदायिनी शक्ति है, यह शखीरों

1. श्री रामनाथ सुमन - गाँधीवाद की रूपरेखा, प्रस्तावना, पृ. 5
2. एम.के गाँधी, मेरे सपनों का भारत, पृ.73

का एक गुण है, तथ्यतः उनका सर्वस्व है। यह आत्मा का एक विशिष्ट गुण है। इसलिए यह सबसे उच्चतम धर्म है। अहिंसा के सूर्य के उदय होते ही घृणा, क्रोध और ईर्ष्या-द्वेष आदि अन्धकाररूपी शत्रु भाग जाते हैं।"[1]

1.3.3 सत्याग्रह

गाँधी चिंतन के साध्य (सत्य) और साधन (अहिंसा) पर विचार करने के पश्चात् इसके कर्म पक्ष अर्थात् सत्याग्रह पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। गाँधी के अनुसार सत्याग्रह का तात्पर्य है-"सत्य को मान कर किसी वस्तु केलिए आग्रह करना, या सत्य और अहिंसा से उत्पन्न होने वाला बल।"[2] गाँधी ने इस शब्द का प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में अहिंसात्मक प्रतिरोध के अवसर पर किया था। गाँधीजी सत्याग्रह को प्रेम शक्ति अथवा आत्मशक्ति के पर्याय के रूप में स्वीकार करते थे। अतः सच्चे ध्येय की अहिंसात्मक नीति द्वारा किया गया प्रयत्न सत्याग्रह है। गाँधी जी ने "सत्याग्रह को सत्य केलिए तपस्या"[3] स्वीकारा है।

सत्याग्रह शब्द को 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' अर्थात् निष्क्रिय प्रतिरोध के साथ जोडा जाता रहा है। स्वयं गाँधी जी ने अपने 'हिन्द स्वराज' में सत्याग्रह को पैसिव रेजिस्टेन्स कहा है। किन्तु कुछ समय बाद गाँधी जी दोनों में भेद स्वीकार करने लगे। दोनों में मौलिक अन्तर है। निष्क्रिय प्रतिरोध एक राजनीतिक हथियार है जिसका उद्देश्य अपने प्रतिपक्षी को इस सीमा तक

1. डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमैया - गाँधी और गाँधीवाद पृ. 13
2. महात्मा गाँधी, दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह -पूर्वार्द्ध, पृ. 173-174
3. यंग इंडिया - भाग 2, पृ. 838

परेशान करना होता है कि वह अन्ततः हमारी माँगे स्वीकार करने पर विवश हो जाए। "In passive resistance there is always present an idea of harassing the other party and there is a simultaneous readiness to undergo any hardships entailed upon us by such activity, while in satyagraha there is not the remotest idea of injuring the opponent."[1]

सत्याग्रह एक नैतिक अस्त्र है उसकी आधारशिला शरीर न होकर आत्मा है। सत्याग्रही का चरम लक्ष्य प्रेम एवं स्वयं कष्ट सहन करते हुए विरोधी अथव प्रतिपक्षी का हृदय परिवर्तन है। इसमें घृणा अथवा दुर्भावना के लिए कोई स्थान नहीं है। निष्क्रिय प्रतिरोध एवं सत्याग्रह की तुलना करते हुए गाँधी जी ने कहा कि "सत्याग्रह गत्यात्मक है, पैसिव रेजिस्टेन्स स्थित्यात्मक है। पैसिव रेजिस्टेन्स निषेधात्मक रूप का कार्य है और उसका कष्ट सहन अनिच्छापूर्वक और निष्फल होता है, सत्याग्रह विधायक रूप से कार्य करता है, प्रेम के कारण प्रसन्नता से कष्ट सहन करता है और कष्ट सहन को फलप्रद बनाता है।"[2] सत्याग्रह प्रेम की भावना से ओतप्रोत है जिसमें वैर की भावना के लिए कोई अवकाश नहीं। सच्चे मन से किये गये कार्य को सत्याग्रह की संज्ञा दी जा सकती है।

सत्याग्रही अहिंसात्मक प्रतिरोध द्वारा मानवता को अपनाकर, उससे प्रेम करके उसके हृदय परिवर्तन की इच्छा रखता है। सत्याग्रह में हृदय परिवर्तन, सविनय अवज्ञा, उपवास, असहयोग आदि का उपयोग अहिंसात्मक पद्धति द्वारा किया जाता है। यही सत्याग्रह के विभिन्न प्रकार है जिसके माध्यम

1. Selections from Gandhi P. 185x472
2. महादेव देसाई का नोट, हरिजन, 25.6.38, पृ. 164

से कोई भी किसी भी समस्या का समाधान ढूँढ़ सकता है- "अहिंसक पद्धति का सार यही है कि वह विरोध का, विरोधियों का नहीं, अन्त करने का प्रयत्न करती है।"[1] अहिंसात्मक पद्धति द्वारा समझौता उत्पन्न होता है। जो हिंसा रहित समाधान का आदर्श रूप है।

सत्याग्रही के लिए आवश्यक है कि वह कितनी ही उत्तेजक परिस्थितियों में क्यों न हो अपने चित्त को सदैव स्थिर रखना तथा अहिंसा, सत्य और नम्रता के साथ कार्य करना। गाँधी के शब्दों में "सत्याग्रही सदा अशुभ को शुभ से, क्रोध को प्रेम से, असत्य को सत्य से और हिंसा को अहिंसा से जीतने का प्रयत्न करेगा।"[2]

सत्याग्रह करने का प्रथम सोपान यदि असहयोग है तो उसका अन्तिम और सबसे प्रभावशाली मार्ग है उपवास। यह तभी अपनाया जाता है जब और सारी संभावनाएँ बन्द हो, "व्यवस्था के विरुद्ध किये गये सत्याग्रह में उपवास आखिरी कदम है। जब सत्याग्रही पराधीन स्थिति में हो और सत्याग्रह के दूसरे उपायों का रास्ता उसकेलिए बंद हो, तथा व्यवस्था द्वारा होनेवाला अधर्म उसे इतनी पीडा दे कि अधर्म या अन्याय को सहन करके जीना स्वत्वहीन बनकर जीने जैसा हो जाय, तब प्राण छोड़ देने को तैयार होकर ही वह अनशन आरंभ कर सकता है।"[3] अतः उपवास सत्याग्रह का सबसे प्रभावशाली अस्त्र है।

---

1. महात्मा गाँधी - हरिजन, 29.4.39. पृ. 101
2. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 8.8.1929
3. किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, पृ. 45

निष्कर्ष में सत्याग्रह गाँधी चिन्तन का महत्वपूर्ण अंग है। इसी के आश्रय से गाँधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम में भारतवासियों को अपार नैतिक एवं आध्यात्मिक बल प्रदान किया। यह महत्वपूर्ण बात है कि सत्याग्रह एक विकासशील तंत्र है जिसका पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। गाँधी के शब्दों में "सत्याग्रह का तत्व अभी पूर्ण विकसित शास्त्र नहीं बन पाया है। इसका प्रयोग अभी बाल्य अवस्था में है और इसका प्रयोग करने तथा इसकी शक्ति की शोध करने और उसे आज़माने वाले कोई पूर्ण शास्त्री अभी दिखाई नहीं देता।"[1] अर्थात् गाँधी ने इस तंत्र को भविष्य के लिए, नयी पीढ़ी के लिए छोड़ दिया है कि वे समाज की विषम से विषम परिस्थितियों की गुत्थियों को सुलझा सकें।

1.4 गाँधी चिंतन का विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग

गाँधी चिंतन की व्यावहारिकता जीवन के सभी क्षेत्रों में संभव है। यह एक संपूर्ण जीवन दर्शन होने के कारण, इसमें जीवन के सभी पक्षों का समाहार है। गाँधी चिंतन वस्तुतः "जीवन का एक प्रकार है। यह एक नवीन धारणा की ओर संकेत करता है या जीवन के परिणामों के प्रति पुरानी धारणा का पुनःप्रतिपादन करता है और वर्तमान समस्याओं केलिए पुरातन समाधान उपस्थित करता है।"[2] अर्थात् यह सिद्धान्त आज भी उतना ही शक्तिशाली है जितना यह पहले था, या फिर उससे भी ज़्यादा हो गया है। इसमें आज भी वही शक्ति निहित है जो विभिन्न क्षेत्रों में सुधार की अहिंसात्मक क्रान्ति ला सकता है।

1. किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, पृ. 38
2. डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमैया - गाँधी और गाँधीवाद पृ. 24

मानवीयता से ओतप्रोत गाँधी जी की विचारधारा अपने आप में चमत्कारी है। उनके लिए मानवता का अर्थ है मानव को मानव के पास लाना। उनके अनुसार सभी झगडों और संघर्षों, कष्टों और दुखों का बुनियादी कारण है मानवता का अभाव। समाज सुधार का कार्य तब तक अधूरा रहेगा जब तक मानव का पुननिर्माण नहीं होता। गाँधी जी कहते हैं कि "मानव स्वभाव उसी दिन अपने आपको पहचानेगा जिस दिन उसे इस बात की प्रतीति होगी कि मानवता का अर्थ पशुता अथवा क्रूरता का संपूर्ण विनाश है।"[1]

महात्मा गाँधी ने वर्तमान दोषपूर्ण समाज व्यवस्था में सुधार तथा उसका पुनःनिर्माण करने हेतु अट्ठारह सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम की आवश्यकता को समझा। उनका विश्वास था कि व्यक्ति के सुधार और हृदय परिवर्तन से पूरा विश्व लाभान्वित होता है। अतः अट्ठारह सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम को गाँधीजी सत्याग्रह की लडाई का एक आवश्यक अंग मानते है। डॉ. पट्टाभी सितारामैया के अनुसार -"गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को गाँधीवाद की संपूर्ण तकनीकी का प्रकट रूप या क्रियारूप में परिणत अहिंसा कहते हैं।"[2] गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित 18 सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम का विवरण इस प्रकार हैः- "1. सांप्रदायिक एकता 2. अस्पृश्यता निवारण 3. मद्यपान निषेध 4. खादी का उपयोग 5. ग्रामोद्योगों का विकास 6. गावों की सफाई 7. नई या बुनियदी शिक्षा 8. प्रौढ शिक्षा 9. स्त्रियों की उन्नति 10. स्वास्थ्य एवं सफाई की शिक्षा 11.मातृभाषा प्रेम 12. राष्ट्रभाषा प्रेम 13. आर्थिक समानता 14, 15, 16. किसानों, मज़दूरों और विद्यार्थियों का संगठन

---

1. सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल - महात्मा गांधी वीथिका, पृ. 24
2. डॉ. बी. पट्टाभी सीतारामैया - गाँधी और गाँधीवाद पृ. 84-85

17. आदिवासियों की सेवा 18. कोढियों की सेवा।"[1]

गाँधी जी आगे कहते हैं कि "यह सूची केवल उदाहरणात्मक है, अपने में पूर्ण नहीं। अतः इसमें दूसरी महत्वपूर्ण बातें भी जोडी जा सकती है।"[2]

गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त सूत्र वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है। गाँधी जी द्वारा सृजित इन रचनात्मक कार्यक्रमों का महत्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र अर्थात् सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में आंका जा सकता है।

1.4.1 सामाजिक कार्यक्रम

गाँधी जी ने समाज की प्रत्येक गतिविधि का सूक्ष्म अध्ययन किया तथा उसमें सकारात्मक परिवर्तन की दिशाएँ सुझाई। अहिंसा की नींव पर एक आदर्श समाज की स्थापना करना उनका ध्येय था। आदर्श समाज के लिए आवश्यक है विशिष्ट समाज व्यवस्था । वह ऐसी होनी चाहिए जो लक्ष्य, प्राप्ति के मार्ग की बाधाओं का निर्मूलन करे एवं व्यक्ति को अपने पथ पर अग्रसर होने की सुविधाएं प्रदान कर सके। उनके शब्दों में "मेरा समाज सुधार का कार्य मेरे राजनीतिक कार्य से किसी भी प्रकार कम या हीन नहीं था। तथ्य यह है कि जब मैंने देखा कि मेरा समाज सुधार का कार्य राजनीतिक कार्य की सहायता के बिना नहीं चल सकता, मैंने राजनीतिक कार्य को अपने हाथ में लिया और उसी सीमा तक लिया जहां तक उसने समाज सुधार के कार्य में सहायता दी।

1. महात्मा गाँधी - रचनात्मक कार्यक्रम
2. महात्मा गाँधी - रचनात्मक कार्यक्रम पृ. 5

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मुझे समाज या इस प्रकार की अन्तःशुद्धि राजनीतिक कार्य की अपेक्षा सौगुनी अधिक प्रिय है।"[1] गाँधी जी के लिए सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा था समाज सुधार। इसीलिए उन्होंने सर्वोदयी समाज व्यवस्था की नींव डाली। "गाँधी जी के मतानुसार सर्वोदय का अर्थ आदर्श समाज-व्यवस्था है। इसका आधार सर्वव्यापी प्रेम है।"[2] सर्वोदय-समाज व्यवस्था में एक ऐसे समाज का रूप निहित है जिसमें सबका कल्याण हो। उनके अनुसार जितने शीघ्र हम यह समझ पाएँगे कि हमारी बहुत सी सामाजिक कुरीतियां हमारी स्वराज्य यात्रा को रोकती हैं, उतनी ही जल्दी हम स्वराज्य को पा सकेंगे।

सामाजिक कार्यक्रम के अन्तर्गत सांप्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण तथा हरिजनोद्धार, नारी उद्धार, किसानों एवं मज़दूरों की उन्नति, आदिवासी तथा अल्पसंख्यकों की उन्नति जैसे प्रमुख मुद्दों पर विचार किया गया है। अतः समाज की उन्नति इन्हीं से संभव है। निचले तबके के लोगों को आगे ले आना तथा उनको मुख्यधारा में शामिल करना गाँधी जी का स्वप्न रहा है। इसके लिए उन्होंने जीवन भर भरपूर परिश्रम किया।

1.4.1.1 सांप्रदायिक एकता

सामाजिक कार्यक्रमों में गाँधी जी अन्तःसांप्रदायिक एकता की स्थापना को सबसे ज़रूरी मार्ग समझते थे। उन्होंने राष्ट्रीय एकता के लिए सांप्रदायिक सौहार्द को महत्वपूर्ण माना। यही कारण है कि रचनात्मक सूत्र में

1. गाँधीजी - यंग इण्डिया - 6.8.1921
2. गाँधीजी - सर्वोदय, पृ. 3

इसका सर्वप्रथम स्थान। अन्त तक वे इसके लिए लडते रहें। वे भारतवर्ष को एक पक्षी तथा हिन्दु एवं मुसलमान को उसके सुनहरे दो पंख के रूप में बताया करते थे। आपसी फूट ने इन दोनों पंख को अपंग कर दिया और पक्षी याने कि भारत बेहद आहत होकर अशांति का जगह बन गया है।

गाँधी जी इस तथ्य से अच्छी तरह परिचित थे कि भारतवर्ष नाना धर्म एवं जातियों का देश है। जब तक उनमें परस्पर सहानुभूति और सहिष्णुता का भाव नहीं रहेगा, देश उन्नति नहीं कर पाएगा। गाँधी जी ने इसी एकता को बनाये रखने के लिए जीवन का अंतिम उपवास (13 जनवरी 1948 से 18 जनवरी 1948 तक) किया था। यह उनके सार्वभौम व्यक्तित्व का द्रष्टांत है। गाँधी जी ने हिन्दु और मुसलमानों को चेतावनी देते हुए कहा था कि "हिन्दुओं केलिए यह आशा करना कि इस्लाम, इसाई धर्म और पारसी धर्म हिन्दुस्तान से निकाल दिया जा सकेगा एक निरर्थक स्वप्न है। इसी तरह मुसलमानों का भी यह उम्मीद करना कि किसी दिन अकेले उनके कल्याणगत इस्लाम का राज्य सारी दुनिया में हो जायेगा, कोरा खाब है। पर अगर इस्लाम केलिए एक ही खुदा को तथा उसके पैगंबेरों की अनन्त परंपरा को मानना काफी हो तो हम सब मुसलमान हैं इसी तरह हम सब हिन्दू और ईसाई भी हैं।"[1]

सांप्रदायिक एकता की स्थापना के लिए गाँधी जी ने 1929 में लिखे प्रतिज्ञा पत्र में यह घोषणा की कि "जब तक मैं संघ का सदस्य रहूँगा तब तक वचन और कर्म में अहिंसक रहूँगा और..... भारतवर्ष की सब जातियों में चाहे वह हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, इसाई या यहूदी हों, एकता

1. महात्मा गाँधी - हिन्दी नवजीवन, अंक 28.9.1924

स्थापित हो सकती है।"[1] इसी सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि "मुझे ऐसी एकता में विश्वास है और मैं उसकी उन्नति केलिए सदैव प्रयत्न करता रहूँगा।"[2] उनके मनोजगत में यह बिलकुल स्पष्ट था कि देश, समाज और व्यक्ति का कल्याण सांप्रदायिक एकता में ही है।

1.4.1.2 अस्पृश्यता निवारण तथा हरिजनोद्धार

गाँधीजी मानते थे कि "अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं है बल्कि उसमें घुसी हुई सड़न है, वहम है, पाप है और उसको दूर करना हर एक हिन्दू का धर्म है, उसका परम कर्तव्य है।"[3] यदि यह अस्पृश्यता समय के साथ नष्ट न की गई तो हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म का अस्तित्व ही संकट में पड जाएगा। गाँधीजी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का कोढ मानते थे। उन्हें यह कहते हुए संकोच नहीं होता था कि यदि हिन्दू धर्म ने अस्पृश्यता को नहीं त्यागा, तो उसका मर जाना ही श्रेयष्कर है।

गांधी जी मानते थे कि अस्पृश्यता हमारे समाज में परंपरा का हिस्सा कभी नहीं रही। "मैं यह मानने से इंकार करता हूँ कि वह हमारे समाज में स्मरणातीत काल से चली आयी है। मेरा ख्याल है कि अस्पृश्यता की यह घृणित भावना हम लोगों में तब आयी होगी जब हम अपने पतन की चरम सीमा पर रहे होंगे। और तब से यह बुराई हमारे साथ लग गई और आज भी लगी हुई है। मैं मानता हूँ कि यह एक भयंकर अभिशाप है और यह अभिशाप जब तक हमारे साथ रहेगा तब तक मुझे लगता है कि इस पावन भूमि में हमें

1. डॉ. गोपीनाथ धवन - सर्वोदय तत्व दर्शन, पृ. 220
2. वही, पृ 223
3. किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, पृ. 30

जब जो तकलीफ सहनी पड़े वह हमारे अपराध का, जिसे आज हम कर रहे हैं उचित दण्ड होगा।"[1] गाँधी जी ने अस्पृश्यता को अमानवीय माना है तथा यही अस्पृश्यता व्यक्ति के जन्म से संबन्धित हो तो वह पाप है तथा उसमें अहिंसा धर्म और सर्वभूतात्म-भाव का निषेध है।

गाँधी जी के अनुसार छुआछूत की भावना मानव समाज का भयानक शत्रु है। इसने समाज की जड़ों को कमज़ोर बना दिया है। इस बात से गाँधी जी पूरी तरह से अवगत थे। उनके अनुसार "अस्पृश्यता के साथ संग्राम एक धार्मिक संग्राम है। यह संग्राम मानव सम्मान की रक्षा तथा हिन्दू धर्म के बहुत ही बलवान सुधार केलिए है।"[2] उन्होंने अछूतों के लिए 'हरिजन' अर्थात् हरि के जनशब्द गढा था। उनके द्वारा संस्थापित हरिजन सेवक संघ ने अछूत उद्धार की दिशा में भरपूर प्रयास किया।

गाँधीजी का अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन चलाने के पीछे महान उद्देश्य रहा। इस आन्दोलन में वे सभी देशवासियों से सहयोग की भीख माँगते थे। उन्होंने कहा "मैं तब तक संतुष्ट नहीं रहूँगा जब तक कि इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप भारत में बसने वाली भिन्न भिन्न जातियों और संप्रदायों के बीच हम हार्दिक एकता स्थापित नहीं कर देते। यही कारण है कि मैं भारत तथा भारत के प्रत्येक आदिवासी से सहानुभूति और सहयोग की भीख मांग रहा हूँ।"[3] गाँधी जी स्पष्ट रूप से समझते थे कि जब तक देश के भिन्न भिन्न संप्रदाय एकता के पवित्र सूत्र में बँध नहीं जाते तब तक स्वराज्य

1. स्पीचज़ एण्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गाँधी, पृ. 387
2. महात्मा गाँधी - प्रार्थना प्रवचन, भाग - 1
3. महात्मा गाँधी - हरिजन सेवक - 23.2.38, पृ. 2

प्राप्त करना नितांत असंभव है।

गाँधी जी ने प्राचीन काल से चली आ रही अछूत प्रथा को निन्दनीय माना। उन्होंने कहा कि प्राचीनता के नाम पर अछूत प्रथा का समर्थन करना सही नहीं है। बुरी चीज को बुरा कहना चाहे वह कितना ही प्राचीन हो या नवीन-यह गाँधी जी का सिद्धान्त था।

1.4.1.3 नारी उद्धार

ऊँच-नीच की भावना से रहित सत्य एवं अहिंसा पर आधारित गाँधी चिंतन में स्त्रियों को पुरुष समान अधिकारों से युक्त सबल नारी का स्थान प्राप्त हुआ है। उनके शब्दों में "अगर अहिंसा हमारे जीवन का ध्यानमंत्र है, तो कहना होगा कि देश का भविष्य स्त्रियों के हाथ में है।"[1] गाँधी जी ने स्त्री को साक्षात् त्याग की मूर्ति कहा। वे कहतै हैं "स्त्री क्या है? साक्षात् त्यागमूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काम में जी जान से लग जाती है, तो वह पहाड को भी हिला देती है।"[2] गाँधी जी पुरुषों के समकक्ष स्त्रियों के समान अधिकार की वकालत करते रहे। उनका मत था कि स्त्री पुरुष दोनों ही समाज को गति देने वाले आवश्यक यंत्र है। अतः बौद्धिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर उनका सम्मान होना आवश्यक है।

गाँधी जी इस बात पर बेहद दुखी थे कि पुरुष समाज ने नारी को मात्र भोग्या और अपने मनोविनोद की वस्तु माना है। वे कहते हैं - "पुरुष स्त्री जाति को एक ओर से दबाता है, अज्ञात रखता है, उसकी उपेक्षा और

1. फौज़िया परवीन - गाँधी दर्शन में नारी स्वतंत्रता, पृ. 57
2. महात्मा गाँधी - हिन्दी नवजीवन 25.12.29

निन्दा करता है, दूसरी ओर से उसे अपने को तृप्त करने का साधन मात्र मानता है और इसकेलिए वह स्त्री को गुडिया की तरह अपनी इच्छा के अनुसार नचाता है। उसकी... इसप्रकार स्त्री की भोगवृत्ति को भडकाने का प्रयास करता है। इन दोनों प्रकारों से केवल स्त्री जाति का ही नहीं बल्कि स्वयं पुरुष का और समूचे समाज का भारी अद्यपतन हुआ है।"[1]

गाँधी जी स्त्रियों को मानसिक बल धारण करने की हिदायत देते थे। उन्होंने स्त्रियों को अपने आप में सबल बनने के लिए कहा, न कि अबला। तभी स्त्री जाति का उद्धार हो सकता है। "वे तमाम अनचाही और भद्दी पाबन्दियों के खिलाफ सविनय विद्रोह शुरु कर दें।"[2] गाँधी जी स्त्रियों को अपार शक्ति का भण्डार मानते थे। वे स्त्रियों को समझाते हुए कहते हैं कि - "यदि स्त्री जाति अपने बल और अपने कार्यक्षेत्र की दिशा को भलीभाँति समझ लें तो वह कभी अपने आपको पुरुष की दबैल न मानेगी और पुरुष का तथा उसकी प्रवृत्ति का अनुकरण करने का ही आदर्श अपने समने न रखेगी।"[3]

गाँधी जी भारतीय स्त्री को पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध से दूर और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से ओतप्रोत देखना चाहते थे। गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। समाज में स्त्री का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है, "मैं स्त्रियों के अधिकारों के मामले में कोई समझौता स्वीकार नहीं

1. किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, पृ. 29
2. फौज़िया परवीन - गाँधी दर्शन में नारी स्वतंत्रता, पृ. 98
3. किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, पृ. 29

कर सकता। मेरी राय में कानून की तरफ से स्त्री केलिए कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। जो पुरुषों केलिए नहीं हैं।"[1] वे स्त्री के स्वातंत्र्य के पक्षपाती थे। तथा "नारी को भी वोट का अधिकार और बराबरी का कानूनी दर्जा चाहते थे।"[2]

स्त्रियों में कोमलता एवं नम्रता का गुण विद्यमान है। वे लडने की अपेक्षा समझौता करने पर अधिक विश्वास करती हैं। स्त्रियाँ हमेशा अपनी दूरदर्शिता के कारण समस्याओं का समना कर उसका समाधान अहिंसात्मक मार्ग से अपनाती है। वे कभी बुज़दिल या कायर नहीं बनीं। "जिन्होंने स्त्री जाति को देवी शक्ति-स्वरूपिणी और चंडी कहा वे भी तो स्त्री-स्वभाव को पहचानते थे। प्रेम का द्रोह किये बिना कारुण्य को सुखाये बिना और क्रूरता धारण किये बना जो तेजस्विता प्रकट की जाती है उसके पीछे अहिंसक प्रतिकार बलिदान की पराकाष्ठा और आत्मशक्ति का आविष्कार ही होता है।"[3] गाँधी जी के मतानुसार स्त्री शक्ति है इस जगत मात्र की। पुरुष की शक्ति का स्वरूप है। उन्होंने कहाँ "स्त्रियों का श्रृंगार सोने के आभूषणों या हीरों को नहीं समझते थे, वरन् आत्मशुद्धि ही, उनका सबसे बडा श्रृंगार है।"[4] इस प्रकार गाँधी जी स्त्री के नैतिक सद्गुणों का व्याख्यान करके उन्हें पुरुष के समान आसन प्रदान करना चाहते थे तथा शोषित एवं परिष्कृत नारी का उद्धार करना चाहते थे।

गाँधीजी ने स्त्री उद्धार के लिए नारी के शिक्षित होने पर बल दिया।

---

1. महात्मा गाँधी -संपा. ज्ञानचन्द जैन एवं रामनाथ सुमन - स्त्रियों की समस्याएँ -पृ. 5
2. सेलक्शन्स फ्रम गाँधी पृ. 242
3. काका कालेलकर - गाँधी जी का जीवन दर्शन, पृ. 215
4. ईश्वरलाल दूबे - गाँधी दर्शन, पृ. 112

उनके अनुसार स्त्रियों के लिए शिक्षा की प्राप्ति बहुत ज़रूरी है। जिस तरह पुरुष के लिए शिक्षा आवश्यक है, उसी तरह स्त्रियों के लिए भी है। गाँधी जी के अनुसार - "मैं स्त्रियों की समुचित शिक्षा का हिमायती हूँ, लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि स्त्री दुनिया की प्रगति में अपना योग पुरुष की नकल करके या उसकी प्रतिस्पर्धा करके नहीं दे सकती वह चाहे तो प्रतिस्पर्धा कर सकती है। लेकिन पुरुष की नकल करके वह उस ऊँचाई तक नहीं उठ सकती, जिस ऊँचाई तक उठना उसकेलिए संभव है। उसे पुरुष की पूरक बनना चाहिए।"[1]

गाँधीजी ने अपने समय में प्रचलित सती प्रथा, बाल विवाह, परदा प्रथा आदि का घोर विरोध किया । जबकि उसी समय उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह, वेश्या उद्धार, विधवा विवाह आदि को प्रबल समर्थन दिया। वे सती प्रथा को उचित नहीं मानते थे। वे मानते थे कि स्त्री को सती न होकर जीवित रहते हुए समाज की सेवा करनी चाहिए। बाल विवाह के सन्दर्भ में गाँधी जी ने इसको एक अभिशाप के रूप में देखा। उनके अनुसार "यह प्रथा हमारे आचारों की जड़ को काटती है और हमारे बल का नाश करती है। ऐसी प्रथाओं का अनुमोदन करके हम ईश्वर से और साथ ही साथ स्वराज्य से दूर हो जाते हैं।"[2] गाँधी जी परदा प्रथा को स्त्रियों की उन्नति में सबसे बडी बाधा के रूप में मानते थे। इसके विरोध में उन्होंने लिखा - "पवित्रता कुछ परदे की आड़ में रखने से नहीं पनपती। बहर से यह लादी नहीं जा सकती। परदे की दीवार से उसकी रक्षा नहीं की जा सकती। उसे तो भीतर से ही पैदा होना

---

1. एम.के. गाँधी - हिन्दी नवजीवन - 28.5.25, पृ. 338
2. एम.के. गाँधी -यंग इंडिया - 26.8. 1926

होगा।"[1] इस प्रथा का अंत गाँधी जी का उद्देश्य था। उनकी मान्यता थी कि यह हर तरह से अकल्याणकारी है।

गाँधी जी ने जिस तरह तत्कालीन समाज में प्रचलित घोर कर्मकाण्डों का खण्डन किया उसी तरह समाज की सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए वेश्या उद्धार, विधवा विवाह समर्थन एवं अन्तर्जातीय विवाह आदि का समर्थन किया । गाँधी जी कहते हैं "जब तक स्त्रियों में से ही असाधारण बहनें उत्पन्न होकर इन पतित बहिनों के उद्धार का कार्य अपने हाथ में न लेंगी तब तक वेश्यावृत्ति की समस्या हल नहीं हो सकती।... वेश्यावृत्ति उतनी ही पुरानी है जितनी कि यह दुनिया है, पर आज की तरह वह नगर-जीवन का एक नियमित अंग शायद ही रही हो। इस हालत में वह समय आये बिना नहीं रह सकता जबकि मानव जाति इस पाप के खिलाफ आवाज़ उठावेगी और वेश्यावृत्ति को भूतकाल की चीज़ बना देगी।"[2] वेश्यावृत्ति हमारे समाज का एक अभिशाप है। यदि नारी जाति का उद्धार करना है तो यह आवश्यक है कि पहले वेश्याओं का उद्धार किया जाय।

गाँधी जी ने विधवा विवाह क समर्थन भी किया। वास्तव में विधवा के साथ समाज और कुटुंब में होने वाले अत्याचार ही वेश्यावृत्ति को बढाते हैं। हिन्दू विधवा के संबन्ध में गाँधीजी के विचार इस प्रकार हैं, "हिन्दू विधवा त्याग और पवित्रता की मूर्ति है। वह माता की तरह सबके लिए पूज्य है। उसे अशुभ समझनेवाला हिन्दू समाज महान अपराध करता है। शुभ कार्यों में

1. एंम.के. गाँधी - हिन्दी नवजीवन - 3.2.27, पृ. 195
2. एंम.के. गाँधी - हिन्दी नवजीवन - 28.5.25 पृ. 338

उसकी उपस्थिति और आशीर्वाद प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। पवित्र विधवा को समाज का भूषण समझकर उसके सम्मान और प्रतिष्ठा की रक्षा की जानी चाहिए।"[1] गाँधी जी मानते थे कि अगर स्वेच्छापूर्वक विधवा अपने धर्म का पालन करती है तो उचित है किन्तु बलपूर्वक उससे वैधव्य पालन कराया जाना पाप है। गाँधी मानते थे कि जिस प्रकार विधुर पुरुष केलिए पुनर्विवाह का अधिकार है, उसी प्रकार विधवा के लिए भी पुनर्विवाह का अधिकार होना चाहिए।

गाँधीजी ने विवाह के मामले में जाति की दीवार को तोडने की घोषणा की। वर्ण व्यवस्था की ज़जीरें जितनी जल्दी टूटे उतना ही शुभ होगा। इसलिए उन्होंने अंतर्जातीय विवाहों को पूरा पूरा प्रोत्साहन दिया। गाँधीजी यह मानते हैं कि "अपने ही वर्ण में विवाह करने की मर्यादा इष्ट है । किंतु आजकल जब वर्ण व्यवस्था टूट चुकी है तो स्वधर्मियों में गुण कर्म को पहचान कर विवाह संबंध स्थिर करना उचित है।"[2] गाँधीजी युवकों और युवतियों को जाति या उपजाति के बाहर विवाह करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करते रहे। क्योंकि इससे वर्ण व्यवस्था के बंधन टूटने में बडी सहायता मिलती है।

1.4.1.4 किसानों एवं मज़दूरों की उन्नति

किसानों के बारे में गाँधी जी अक्सर एक कविता की बात कहा करते थे। उस कविता में कहा गया है कि किसान संसार का अन्न पिता है।

1. महात्मा गाँधी - किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, पृ. 35
2. महात्मा गाँधी - किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, पृ. 36

ईश्वर सृष्टि का पालनकर्ता है और किसान उसका दाहिना हाथ है। गाँधी जी का विचार था कि किसान का स्थान पहला है चाहे वह भूमिहीन मज़दूर हो चाहे मेहनत मज़दूरी करनेवाला भूस्वामी हो। वे किसानों की बदतर दशा को सुधारने के लिए आजीवन संघर्षरत रहे। उन्होंने कहा-"अगर स्वराज्य सारी जनता की कोशिशों के फलस्वरूप आता है और चूंकि हमारा हथियार अहिंसा है इसलिए ऐसा ही होगा तो किसानों को उनकी योग्य स्थिति मिलनी ही चाहिए और देश में उनकी आवाज़ हो सबसे ऊपर होनी चाहिए। लेकिन यदि ऐसा नहीं होता है और मर्यादित मताधिकार के आधार पर सरकार और प्रजा के बीच कोई व्यावहारिक समझौता हो जाता है, तो किसानों के हितों को ध्यान से देखते रहना होगा। अगर विधान सभायें किसानों के हितों की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध होती हैं तो किसानों के पास सविनय अवज्ञा और असहयोग का अचूक इलाज तो हमेशा होगा ही।"[1] गाँधी जी किसानों के हक के लिए हमेशा कर्मरत रहे।

गाँधी जी ने जनसमूह को हमेशा समझाने की कोशिश की कि "देश की जनसंख्या के अधिकतर लोग किसान हैं। वही धरती को हरी भरी बनाए हुए हैं। ज़मीन के असली मालिक किसान हैं न कि शहर में रहनेवाले जमीन्दार-सारी भूमि गोपाल की है। यदि हम किसान के परिश्रम का फल, उससे छीन लें, तो स्वराज्य का कोई अर्थ ही नहीं होगा। वकील, डॉक्टर या धनी ज़मीन्दार देश को सच्ची आज़ादी नहीं दिला सकते, वह तो किसानों के

---

1. दि बॉम्बे क्रानिकल (The Bombay Chronicle) 12.1.1945

द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।"[1] जब किसानों को दरिद्रता और अज्ञान से मुक्ति मिलेगी, तभी भारत में वास्तविक स्वतंत्रता आएगी।

गाँधीजी ने किसानों को अपने अन्तकरण में बसे डर और सन्देह को दूर करके अपनी माँगों के लिए लडने का सन्देश दिया। किसानों में पैदा हुई सकारात्मक प्रवृत्ति पर गाँधी जी ने कहा कि "इधर किसानों में बडी जागृति आई है। स्वाभाविक है कि अपनी स्थिति से उनका असंतोष अधिकाधिक बढेगा और वे अपने अधिकार माँगेंगे।"[2]

गरीब किसानों की आय को बढाने पर भी गाँधी जी ने ध्यान दिया। किसान अपनी फसल क्षति के कारण ज़्यादातर साल में बहुत दिन बेकार रहते हैं। अभी भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं। इस तरह किसान सिर्फ खेती की आमदनी से अपना खर्च नहीं चला पाते। इससे मुक्ति पाने के लिए गाँधीजी ने किसान परिवार की स्त्रियों से चरखा चलाने और पुरुषों से करघे पर बुनाई करने का आह्वान किया - "जब किसान समझ लेगा कि इस दुर्दशा का कारण भाग्य नहीं है तब वह उचित अनुचित का विचर करेगा।"[3] गाँधी जी ने हमेशा किसानों के मन में अन्याय से लडने की भावना जगाने की कोशिश की। इसके लिए वे अथाह परिश्रम करते रहें। वर्तमान में भी किसानों की हालत में कोई परिवर्तन नहीं आया। साठ साल पहले गाँधीजी ने किसानों के बारे में जो कहा था वह आज भी प्रासंगिक है। किसानों की

---

1. सुरेन्द्र प्रसाद अग्रवाल - महात्मा गांधी विचार वीथिका, पृ. 58
2. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 28.मई.1931
3. सुरेन्द्र प्रसाद अग्रवाल - महात्मा गांधी विचार वीथिका, पृ. 59

दशा में इन साठ सालों के दौरान कोई अधिक सुधार नहीं हुआ है। भारतीय किसान आज भी बदतर एवं बदहाल स्थिति में हैं । प्रति वर्ष हज़ारों किसान कृषि संकट के कारण आत्महत्या करने को मज़बूर हैं।

मज़दूरों की उन्नति के लिए भी गाँधी जी संघर्षरत थे। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् यूरोप औद्योगिक क्रान्ति के चरम पर आ गया। उद्योगपतियों का लक्ष्य अधिक लाभ की था, इस सिलसिले में मज़दूरों का शोषण बडे पैमाने पर हो रहा था, तभी गाँधीजी का आगमन हुआ। गाँधी जी ने शान्तिपूर्ण तरीके से कार्य करने पर बल दिया। उन्होंने खुद मज़दूर एवं मालिकों के बीच संधि करते हुए पंच समझौते का समाधान प्रस्तुत किया। लेकिन मिल मालिकों द्वारा अपनी बात पर अड़े रहने के कारण ही अंतिम रास्ते के रूप में गाँधी जी ने मज़दूरों को हड़ताल करने का सुझाव दिया। गाँधी जी के शब्दों में "अभी तो हड़तालें मज़दूरों की हालात के सीधे सुधार केलिए ही होनी चाहिए और जब उनमें देश भक्ति की भावना पैदा हो जाये तब अपने तैयार किये हुए माल की कीमतों के नियंत्रण केलिए भी हड़ताल की जा सकती है।"[1]

हड़तालों को श्रम जीवियों का जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त है। गाँधी जी ने कहा था कि "मैं श्रमिक संगठन का विरोधी नहीं हूँ किन्तु अन्य समस्त कार्यों के अनुरूप ही मैं इसे भी भारतीय पद्धति के अनुसार या आप कहना चाहें तो अपनी पद्धति के अनुसार करना चाहता हूँ। मैं ऐसा कर रहा हूँ। भारतीय श्रमिक इसे अपने सहज ज्ञान से ही जानते

1. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 41

हैं, मैं पूँजी को श्रम का शत्रु नहीं मानता। मैं उनके समन्वय को पर्णतः संभव मानता हूँ। मैंने दक्षिण अफ्रीका, चम्पारन या अहमदाबाद में जो श्रमिक संगठन किया था मेरी समझ से वह पूँजिपतियों के प्रति शत्रुता की भावना से नहीं किया गया था। प्रत्येक स्थान पर और जिस सीमा तक उसे आवश्यक समझा गया था प्रतिरोध पूर्णतः सफल रहा।"[1] उन्होंने मज़दूरों के लिए, उनकी स्थिति में सुधार लाने हेतु बहुत से प्रयासों को अन्तिम रूप दिया।

गाँधीजी ने शान्तिपूर्ण हड़तालों पर बल दिया। उन्होंने कहा कि हड़ताल "स्वतःस्फूर्त होनी चाहिए, जोड़ तोड करके नहीं। यदि इसका संगठन बिना किसी बाध्यता के किया गया हो तो उसमें गुंडागर्दी और लूटमार की कोई संभावना नहीं होगी। ऐसी हड़ताल की विशेषता होगी हड़तालियों में पूर्ण सहयोग। इसे शान्तिपूर्ण होना चाहिए और इसमें बल प्रदर्शन नहीं होना चाहिए।"[2] वे जीवन पर्यंत हिंसा के विरोधी रहे। हमेशा शान्तिपूर्ण प्रस्तावों पर ही उन्होंने विचार किया। गाँधीजी की राय में श्रमिकों को अपना वेतन इच्छा अनुरूप निर्धारित करने का भी पूरा हक है। गाँधीजी ने यह भी कहा था कि श्रम को उत्पादनों के साधनों का स्वामी होना चाहिए, ना कि दास जैसा कि अभी है। पूँजी को श्रम का सेवक होना चाहिए, स्वामी नहीं।"[3]

1.4.1.5 आदिवासी तथा अल्पसंख्यकों की उन्नति

गाँधी जी ने आदिवासियों और अल्पसंख्यकों के बारे में विचार करते हुए आदिवासियों को इस देश का मूल नागरिक घोषित किया है और

1. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 17.मार्च.1927
2. महात्मा गाँधी - हरिजन, 2 जून, 1946
3. महात्मा गाँधी - हरिजन 11 सितंबर 1938

उन्हें अपने रचनात्मक कार्यक्रम में खास स्थान दिये जाने की वकालत की। वे कहते हैं कि "आदिवासी नाम उन लोगों को दिया गया है, जो कि पहले से ही इस देश में बसे हुए थे। उनकी आर्थिक स्थिति हरिजनों से शायद ही अच्छी होगी। लंबे अरसे से अपने आपको 'ऊंचे वर्गों' के नाम से पुकारनेवाली हमारी जनता ने उनके प्रति जो बेपरवाही बरताई है, उसका परिणाम उन्हें भोगना पड़ा है। आदिवासियों के प्रश्न को रचनात्मक कार्यक्रम में खास स्थान मिलना चाहिए। सुधारकों को उनके बीच सुधार का काम करने का बड़ा क्षेत्र है। परन्तु अभी तक ईसाई धर्म प्रचारकों ने ही यह काम किया है। यद्यपि उन्होंने इस काम में बहुत मेहनत की है, तो भी उनका काम जैसे चाहिये था वैसे फला-फूला नहीं; क्योंकि उनका अंतिम हेतु आदिवासियों को ईसाई बनाना था और उन्हें हिन्दुस्तानी मिटाकर अपने जैसा परदेशी बना लेने का था। जो भी हो, परन्तु अगर हम अहिंसा के आधार पर स्वराज्य चाहते हैं, तो कनिष्ठ से कनिष्ठ वर्ग की तरफ से भी हम बेपरवाह नहीं हो सकते। परंतु आदिवासियों की तो संख्या इतनी बड़ी है कि उनको कनिष्ठ गिना ही नहीं जा सकता।"[1] गाँधी जी ने समाज के निचले तबकों को भी आगे बढाने के लिए रास्ता प्रदान किया। आदिवासियों के लिए समाज के तथाकथित उच्च वर्गों द्वारा दिये गये नफरत को उन्होंने मिटाने की कोशिश की। उनके आदर्श राज्य में, स्वराज्य में सबका स्थान एक जैसा है।

इसके साथ साथ गाँधी जी यह भी समझते थे कि देश में एकता बनाये रखने के लिए यह ज़रूरी है कि हिन्दू अल्पसंख्यक जातियों पर

1. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 320

विश्वास करने की हिम्मत करना। गाँधी जी के सपनों के भारत में सभी विदेशियों का खुला स्वागत है। उनके अनुसार "सब विदेशियों को यहाँ रहने और बसने की पूरी आज़ादी है, बशर्ते कि वे अपने को इस देश की जनता से अभिन्न समझें।"[1]

गाँधी जी का स्वतंत्र भारत सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की प्रथा से सर्वथा मुक्त है। उनके शब्दों में "हिन्दुस्तान उन सब लोगों का है जो यहाँ पैदा हुए हैं और पले हैं और जो दूसरे देश का आसरा नहीं ताक सकते। इसलिए वह जितना हिन्दुओं का है उतना ही पारसियों, बेनी इजराइलों, हिन्दुस्तानी ईसाईयों, मुसलमानों और दीगर गैर हिन्दुओं का भी है। आज़ाद हिन्दुस्तान में राज हिन्दुओं का नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानियों का होगा; और उसका आधार किसी धार्मिक पंथ या संप्रदाय के बहुमत पर नहीं, बल्कि बिना किसी धार्मिक भेदभाव के समूचे राष्ट्र के प्रतिनिधियों पर होगा। मैं एक ऐसे मिश्र बहुमत की कल्पना कर सकता हूँ, जो हिन्दुओं को अल्पमत बना दे। स्वतन्त्र हिन्दुस्तान में लोग अपनी सेवा और योग्यता के आधार पर ही चुने जायेगे। धर्म एक निजी विषय है, जिसका राजनीति में कोई स्थान नहीं होना चाहिये।"[2]

गाँधीजी ने पिछडी हुई जातियों का सुधार शिक्षा के माध्यम से करना चाहा। भारत में एकता बनाये रखने के लिए उन्होंने सभी जातियों के बीच भाईचारे का सन्देश दिया। गाँधीजी ने कहा - "मैं ऐसे भारत केलिए कोशिश करुँगा, जिसमें गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करेंग कि वह

---

1. महात्मा गाँधी - हरिजन - 29.9.46
2. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 293

उनका देश है - जिसके निर्माण में उनकी आवाज़ का महत्व है। मैं ऐसे भारत केलिए कोशिश करूँगा, जिसमें ऊँचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध संप्रदायों में पूरा मेलजोल होगा।"[1]

1.4.2 आर्थिक कार्यक्रम

किसी भी राष्ट्र की तरक्की का मापक उसके नागरिकों की अर्थ शक्ति होती है। गाँधी जी ने व्यक्ति के जीवन में अर्थ का महत्व स्वीकारा है परन्तु वे कहते हैं कि "जो अर्थशास्त्र लक्ष्मी पूजा सिखाता है और निर्बल की कीमत पर शक्तिशाली को धन एकत्रित करने केलिए प्रोत्साहित करता है वह झूठा और उदासीन शास्त्र है। जबकि सच्चा शास्त्र सबके कल्याण केलिए होता है।"[2] महात्मा जी के पास अपने निर्धन देशवासियों की सहायता करने के लिए एक व्यावहारिक आर्थिक कार्यक्रम था। उनका अर्थ संबन्धी विचार जीवन के दूसरे सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक आदि पहलुओं से संयुक्त था।

गाँधीजी के आर्थिक दृष्टिकोण का निर्माण खादी तथा दूसरे ग्रामोद्योगों के विकास एवं आर्थिक समानता के सिद्धान्तों से हुआ है। उनका आर्थिक दृष्टिकोण उनके नैतिक तथा आध्यात्मिक जीवन दर्शन की अनिवार्य परिणति है। गाँधी जी ने कहा "वह अर्थशास्त्र जो नैतिक मूल्य की उपेक्षा और अवहेलना करता है, झूठा है।"[3] उनका विचार था कि वह अर्थशास्त्र जिससे

---

1. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 10.9.31
2. डॉ. धर्मेन्द्र सिंह - गाँधीय आर्थिक दर्शन, पृ. 19
3. विश्व प्रकाश गुप्त -मोहिनी गुप्त - महात्मा गाँधी -व्यक्ति और विचार, पृ. 168

किसी व्यक्ति या राष्ट्र की नैतिकता को धक्का पहुँचता है, सौ बार त्यागने योग्य है।

गाँधी जी के अर्थ संबन्धी विचारों के अन्तर्गत अहिंसक अर्थव्यवस्था, संरक्षता का सिद्धांत, आर्थिक-विकेन्द्रीकरण, ग्रामीण विकास, ग्राम स्वराज्य, पंचायती राज, ग्रामोद्योग, खादी, चरखा, लघु एवं कुटीर उद्योग, स्वदेशी की भावना, राष्ट्रीय आय का वितरण आदि महत्वपूर्ण तत्वों पर विचार किया गया है। जिसके अनुपालन से वर्तमान अर्थ संबन्धी समस्याओं का समाधान संभव है।

1.4.2.1 अहिंसक अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक समानता

गाँधी जी अहिंसा के पूजारी रहे। उन्होंने समाज में एकरूपता लाने के लिए कठिन परिश्रम किया। समाज के प्रत्येक क्षेत्र के लोगों के जीवन के लिए आवश्यक चीज़ें अर्थात् रोटी एवं कपड़ा पर समान अधिकार के पक्षपाती थे। वे कहते हैं - "यह प्रकृति का एक निरपवाद बुनियादी नियम है कि वह रोज़ केवल उतना ही पैदा करती है जितना हमें चाहिये। और यदि हर एक आदमी जितना उसे चाहिये उतना ही ले, ज़्यादा, न ले तो दुनिया में गरीबी न रहे और कोई आदमी भूखा न मरे।"[1]

गाँधी जी के अनुसार संपन्न व्यक्ति को समझदारी से काम लेना चाहिए। उसमें इतनी समझदारी होनी चाहिए कि वह खुद अपनी स्वेच्छा से

---

1. स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्ज़ ऑफ महात्मा गाँधी, पृ. 384

अपनी ज़रूरतों का नियमन करके और अमुक अभाव को सहते हुए उन गरीबों का पालन पोषण करने के पक्षधर थे। गाँधी जी की राय में - "भारत की न सिर्फ भारत की बल्कि सारी दुनिया की अर्थरचना ऐसी होनी चाहिए कि किसी को भी अन्न और वस्त्र के अभाव की तकलीफ न सहनी पड़ें। दूसरे शब्दों में, हर एक को इतना काम अवश्य मिल जाना चाहिये कि वह अपने खाने-पहिनने की ज़रूरतें पूरी कर सके। और यह आदर्श निरपवाद रूप से तभी कार्यान्वित किया जा सकता है जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में रहें। वे हर एक को बिना किसी बाधा के उसी तरह उपलब्ध होने चाहिए जिस तरह की भगवान की दी हुई हवा और पानी हमें उपलब्ध हैं।"[1] गाँधी जी के अनुसार अगर उत्पादों का समान वितरण होगा तभी एक आदर्श अर्थव्यवस्था को कायम रखने में हम सक्षम बनेगें।

गाँधी जी के अनुसार दुनिया में जो गरीबी पनप रही है उसका मुख्य कारण इस सरल सिद्धान्त की उपेक्षा है। उनके लिए अहिंसा पूर्ण स्वराज्य का आधार स्तंभ आर्थिक समानता है। जनसाधारण की गरीबी मिटाना उनका एकमात्र लक्ष्य रहा । उसके लिए वे निरन्तर परिश्रम करते रहें। उन्होंने कहा "किसी स्वस्थ समाज के अंदर चन्द आदमियों में धन का केन्द्रित हो जाना और लाखों का बेकार होना एक महान सामाजिक अपराध या रोग है जिसका इलाज अवश्य होना चाहिए।"[2] आज समाज में धन का जो विषम विभाजन

1. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 76
2. विश्व प्रकाश गुप्त-मोहिनी गुप्त, महात्मा गाँधी व्यक्ति और विचार, पृ. 169

है, गाँधी जी उसे एक गहरी सामाजिक बुराई के रूप में देखते थे। वे आर्थिक समानता को अहिंसक स्वतंत्रता की गुरुकुंजी मानते थे।

गाँधी जी ने एक सच्चे अर्थशास्त्र की व्याख्या करते हुए कहा कि "सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्याय की हिमायत करता है; वह समान भाव से सब की भलाई का-जिनमें कमज़ोर भी शामिल हैं - प्रयत्न करता है और सभ्यजनोचित सुन्दर जीवन के लिए अनिवार्य है।"[1] गाँधी जी का विचार है कि यदि उत्पादन के साधनों और जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं पर जनता का नियंत्रण हो जाये, तो राष्ट्र की उन्नति होगी। उनके अनुसार आवश्यक वस्तुओं पर किसी देश, जाति या जन समूह का एकाधिकार सर्वथा अन्याययुक्त है।

1.4.2.2 संरक्षता का सिद्धान्त अथवा ट्रस्टीशिप

गाँधी जी के संरक्षता अथवा ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की मान्यता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गाँधी जी के अनुसार कोई भी धरोहर प्रत्यर्पण के लिए होता है। केवल सुरक्षा के विचार से ही उस संपत्ति को किन्हीं व्यक्तियों अथवा संस्था के पास धरोहर के रूप में रखा जाता है। गाँधी जी ने बहुत ही सरल एवं स्पष्ट शब्दों में अपने इस सिद्धान्त की व्याख्या की है - "फर्ज कीजिये कि विरासत के या उद्योग-व्यवसाय के द्वारा मुझे प्रचुर संपत्ति मिल गई। तब मुझे यह जानना चाहिए कि वह सब संपत्ति मेरी नहीं है, बल्कि मेरा तो उस पर इतना ही अधिकार है कि जिस तरह दूसरे लाखों आदमी गुज़र

1. महात्मा गाँधी - हरिजन - 9.10.37

करते हैं उसी तरह मैं भी इज्जत के साथ अपना गुज़र भर करुं। मेरी शेष संपत्ति पर राष्ट्र का हक है और उसी के हितार्थ उसका उपयोग होना आवश्यक है।"[1] ट्रस्टीशिप से तात्पर्य है पूँजीपति या ज़मीन्दार को अपने जायदाद का स्वामी नहीं बल्कि उसका संरक्षक समझें।

इतना ही नहीं गांधी जी स्वयं इस सिद्धान्त की सफलता के प्रति आशंकित थे। उन्होंने इसको स्पष्ट करते हुए कहा - "ट्रस्टिशिप तो कानून शास्त्र की एक कल्पना मात्र है; व्यवहार में उसका कहीं कोई अस्तित्व दिखाई नहीं पडता।"[2] इस सिद्धान्त की व्यवहार्यता को लेकर यदि गाँधी जी सन्देहास्पद थे उसी समय उन्होंने इसकी महत्ता को भी सिद्ध किया। यदि समाज के लोग नीति सम्मत है, समाज हित ही उनका ध्येय है, सर्वथा अहिंसा उनका परम गुण है। तो यह सिद्धान्त कार्यरूप ले सकता है। वे कहते हैं - "लोग यदि स्वेच्छा से ट्रस्टियों की तरह व्यवहार करने लगे तो मुझे सचमुच बडी खुशी होगी। लेकिन यदि वे ऐसा नहीं तो मेरा ख्याल है कि हमें राज्य द्वारा भरसक कम हिंसा का आश्रय लेकर उनसे उनकी संपत्ति ले लेनी पडेगी।"[3] यहां गाँधी जी एक प्रकार से समाजवादी राह पर चलते हुए प्रतीत होते हैं क्योंकि वे व्यक्ति की संपत्ति राज्य द्वारा हिंसात्मक तरीके से लेने की वकालत करते दीख पडते हैं। यह एक तरह से कम हिंसा वाली बात को दूसरी ओर खींचना होगा। फिर भी यह स्पष्ट है कि गाँधीजी अहिंसा के पूजारी रहे आजीवन।

---

1. महात्मा गाँधी - हरिजन सेवक - 3.6.39
2. दि मॉडर्न रिव्यू - 1935 पृ. 412
3. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 72

गाँधी जी ने धनवान लोगों को अपने धन का उपयोग समाज कल्याण के लिए करने का सन्देश दिया। वे कहते हैं - "मेरी यह सलाह बिलकुल ठीक है कि धनवान लोग चाहे करोडों रुपये कमाये (बेशक ईमानदारी से) लेकिन उनका उद्देश्य वह सारा पैसा सबके कल्याण में समर्पित कर देने का होना चाहिए।"[1] गाँधीजी की दृष्टि में सर्वकल्याणकारी नव जीवन पद्धति के विकास का सबसे निश्चित मार्ग यही है।

1.4.2.3 आर्थिक विकेन्द्रीकरण

गाँधीजी धन और सत्ता के केन्द्रीकरण को समस्त बुराईयों की जड़ मानते थे क्योंकि धन का केन्द्रीकरण अमीर और गरीब की खाई को चौडा करके शोषण को बढावा देता है जब कि सत्ता का केन्द्रीकरण हिंसा और शोषण पर आधारित राजनीति का जनक है। इस प्रकार गाँधीजी केन्द्रीकरण के घोर विरोधी थे उन्होंने आर्थिक विकेन्द्रीकरण को महत्व देते हुए कहा था "तनाव, हिंसा और अशांति को यदि रोकना है तो आर्थिक क्षेत्र का भी विकेन्द्रीकरण होना चाहिए इस हेतु बडी बडी मशीनों के स्थान पर लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करना चाहिए।"[2]

गाँधीजी विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था को लोकतंत्र का वरदान मानते थे जिससे उत्पन्न व्यवस्था आर्थिक समस्याओं का उन्मूलन कर सकती है। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के अनेक लाभ भी हैं। इससे रोज़गार में वृद्धि होती है। आर्थिक विकेन्द्रीकरण के प्रबल समर्थक गाँधी जी की मान्यता थी कि

---

1. महात्मा गाँधी - हरिजन - 1 फरवरी 1942
2. रेइनोल्ड नेइबुर - मोरल मान एण्ड इम्मोरल सोसाइटी (1937), पृ. 221-223

"आर्थिक शक्तियों का केन्द्रीकरण आर्थिक विकास में बहुत बडी बाधा है क्योंकि कुछ हाथों में सीमित होनेवाले धन एवं सत्ता समाज को विभाजित कर देते हैं और अमीर तथा गरीब को एक दूसरे का विरोधी बना कर समाज की शांति नष्ट कर देते हैं।"[1]

गाँधी जी ने कहा कि -"यदि भारत को अपना विकास अहिंसा की दिशा में करना है, तो उसे बहुत सी चीज़ों का विकेन्द्रीकरण करना पडेगा।"[2] वे एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें बड़े बड़े उद्योगों के स्थान पर छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों का जाल बिछा हो। वे हर घर में एक उद्यम का स्वप्न देखते थे जिससे कि प्रत्येक परिवार को काम मिले और वह आर्थिक रूप से भी शक्तिशाली हो सके। उन्होंने न सिर्फ आर्थिक विकेन्द्रीकरण बल्कि राजनीतिक विकेन्द्रीकरण को भी महत्व दिया। इस पर विशेष बल देने से तात्पर्य है सत्ता के विकेन्द्रीकरण के बिना समाज में धन एवं संपत्ति का विकेन्द्रीकरण संभव नहीं है और धन के विकेन्द्रीकरण के बिना सत्ता को ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार गाँधी जी ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिए वैदिक काल से ही भारत में प्रचलित ग्राम पंचायत राज व्यवस्था को आधार बनाया और पंचायत व्यवस्था को केन्द्र में रखकर ग्राम स्वराज्य स्थापित करने का भी प्रयास किया।

1.4.2.4 ग्रामीण विकास

गाँधी जी ने ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में आदर्श ग्राम की परिकल्पना की थी, एक ऐसा आदर्श ग्राम जो सभी तरह से विकसित होने के साथ ही

1. डॉ. सी. पंत - भारत में ग्रामीण विकास (2002), पृ. 21
2. महात्मा गाँधी - हरिजन - 31.12.31

आत्मनिर्भर भी हो। "गाँधी जी चाहते थे कि ग्रामीण जनता न सिर्फ आर्थिक रुप से संपन्न हो बल्कि सामाजिक रूप से भी सम्मान हो और प्रत्येक ग्राम अपने आप में आर्थिक रूप से निर्भर राज्य के रूप में सक्षम हो जहाँ हर ग्राम वासी की सभी आवश्यकताएँ पूरी की जा रही हो साथ ही उन्हें हर प्रकार की सुविधा भी उपलब्ध हो।"[1] जीवन के भौतिक पक्ष से संबन्धित संपूर्ण सत्ता गाँवों में होनी चाहिए। तभी गाँव में अपने जीवन की व्यवस्था खुद करने की शक्ति प्रदत्त होगी, जिससे परिवर्तन की लहर गूंज उठेगी।

1.4.2.5 ग्राम स्वराज्य

ग्राम स्वराज्य के सन्दर्भ में गाँधी जी के विचार अत्यन्त व्यापक दृष्टिकोण युक्त बहुआयामी रहा। उनकी राय में "ग्राम स्वराज्य ऐसी सरल और सादी ग्राम अर्थव्यवस्था है, जिसका केन्द्र मनुष्य है, जो शोषण रहित है और विकेन्द्रित है। वह स्वेच्छापूर्ण सहयोग के आधार पर अपने हर नागरिक को पूरा काम देने का प्रबन्ध करती है और जीवन के अन्न-वस्त्र की प्राथमिक आवश्यकताओं तथा अन्य आवश्यकताओं के विषय में स्वावलंबन सिद्ध करने का प्रयत्न करती है।"[2] उन्होंने ग्राम स्वराज्य को किसी एक ही नज़रिए से नहीं देखा बल्कि ग्राम के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विकास को समग्र रूप से ग्रामीण विकास का नाम दिया। ग्रामीण विकास से तात्पर्य है एक आदर्श ग्राम स्वराज्य का होना। जिसमें ग्राम स्वावलंबन, ग्राम पंचायत, ग्रामीण उद्यम, सहकारिता आदि विभिन्न पहलू शामिल हैं।

---

1. एस. सी. गंगल, भारत में ग्राम उत्थान (1993) पृ. 12-14
2. महात्मा गाँधी - ग्राम स्वराज्य, भूमिका, पृ. 17

भारत एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है। यहाँ $^{2}/_{3}$ आबादी गाँवों में बसती है। गाँवों में ही असली भारत है। "लेकिन हम शहरवासियों का ख्याल है कि भारत शहरों में ही है और गाँव का निर्माण शहरों की ज़रूरतें पूरी करने केलिए ही हुआ है।"[1] जबकि यह हकीकत नहीं है। हमारा देश तब तक विकसित नही हो सकता जब तक अपने गाँवों को आत्मनिर्भर नहीं कर देते। "ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यही है कि वह एक पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम ज़रूरतों केलिए अपने पडोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा; और फिर भी बहुतेरी दूसरी ज़रूरतों केलिए जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा-वह परस्पर सहयोग से काम लेगा।"[2] इसकी प्राप्ति के लिए एक भीषण समस्या है ग्रामीण जनता का अपनी उन्नति की ओर उदासीन होना। पहले उनको इस आन्दोलन के लिए पात्र बनाना होगा तभी यह संभव हो पाएगा। अतः उन्होंने कहा कि "गाँवों को अगर स्वावलंबन के आधार पर अच्छी तरह संगठित किया जाए तो वह बहुत कुछ कर सकता है।"[3]

1.4.2.6 पंचायती राज

ग्राम स्वराज्य के सपने को पूरा करने के लिए प्रत्येक गाँव में पंचायतों की स्थापना करना अनिवार्य है। गाँधी जी चाहते थे प्रत्येक गांव की पंचायत सर्वसत्ता संपन्न हो। इस प्रकार की पंचायत अथवा समाज सत्य एवं अहिंसा पर ही खडा हो सकता है। पंचायती राज में सभी बराबर होगें। "सबसे बाहर का

---

1. महात्मा गाँधी - हरिजन - 4 अप्रैल 1936
2. महात्मा गाँधी - हरिजन सेवक - 2.8.42
3. महात्मा गाँधी - हरिजन 4-8-1946

घेरा या दायरा अपनी ताकत का उपयोग भीतर वालों को कुचलने में नहीं करेगा बल्कि उन सब को ताकत देगा और उनसे ताकत पाएगा।"[1]

गाँधीजी ने कहा कि "जब पंचायती राज स्थापित हो जाएगा तब लोकमत ऐसे भी अनेक काम कर दिखायेगा जो हिंसा कभी नहीं कर सकती। ज़मींदारों, पूंजीपतियों और राजाओं की मौजूदा सत्ता तभी तक चल सकती है जब तक की सामान्य जनता को अपनी शक्ति का भान नहीं होता। अगर लोग जमींदारी और पूंजीवाद की बुराई से सहयोग करना बन्द कर दे तो वह पोषण के अभाव में खुद ही मर जाएगी। पंचायत राज में केवल पंचायत की आज्ञा मानी जाएगी और पंचायत अपने बनाए हुए कानून के द्वारा ही अपना कार्य करेगी।"[2] सत्ता पूरी तरह से पंचायतों के ऊपर आयेगी। जिससे प्रत्येक गाँव में परिवर्तन संभव हो पाएगा।

1.4.2.7 ग्रामोद्योग

ग्राम स्वराज्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है ग्रामोद्योग। इस विषय पर गाँधी जी और नेहरू में मौलिक भेद यह है कि जहाँ नेहरू बडी मशीनों को लगाने के पक्षधर थे वहीं गाँधी जी परंपरागत ग्रामीण घरेलू उद्यमों एवं छोटी मशीनों के माध्यम से ग्राम एवं ग्रामवासियों के उद्धार के पक्षधर थे। "मशीनों का अपना स्थान है; उन्होंने अपनी जड़ें जमा ली हैं। परन्तु उन्हें ज़रूरी मानव श्रम का स्थान नहीं लेने देना चाहिए।"[3] "यंत्रों का वही उपयोग

1. महात्मा गाँधी - हरिजन सेवक - 28.07.1946
2. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 107
3. महात्मा गाँधी - ग्राम स्वराज, पृ. 18

उचित है, जिससे सबका भला हो।"[1] अतः गाँधी जी यंत्रों के खिलाफ नहीं थे। उससे उत्पन्न बेरोज़गारी के खिलाफ थे जो गरीबी को पनपने दे रही थी।

गाँधी जी का मत भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल है। यहाँ की अधिकांश आबादी निरक्षर एवं अकुशल थी। वे केवल परंपरागत कारीगरी से ही परिचित थे। अतः उनकी बेरोज़गारी को दूर करने का कार्य ग्रामोद्योग से ही संभव हो जाएगा । गाँधी जी के शब्दों में "ग्रामोद्योगों की योजना के पीछे मेरी कल्पना तो यह है कि हमें अपनी रोज़मरा की आवश्यकताऐं गाँव की बनी चीज़ों से ही पूरी करनी चाहिए।"[2]

1.4.2.8 खादी

गाँधी जी चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति अपने उपयोग में लाने योग्य कपडा स्वयं बुने। इसके साथ जिन जिन चीज़ों को वह बना सकता है बनाए अथवा न बना सकनेवाली वस्तुओं को देशी बाज़ार से खरीद ले। गाँधी जी के "खादी उत्पादन में यह काम शामिल है - कपास बोना, कपास चुनना, उसे झाड झटककर साफ करना और ओटना, रुई पींजना, पूनी बनाना, सूत कातना, सूत को माँड लगाना, सूत रेगना, उसका ताना भरना और बाना तैयार करना सूत बुनना और कपडा धोना। इनमें से रंग साझी को छोडकर बाकी के सारे काम खादी के सिलसिले में ज़रूरी और महत्व के है और उन्हें किये बिना काम नहीं चल सकता।"[3] खादी भारत की समस्त जनता की

1. महात्मा गाँधी - ग्राम स्वराज, पृ. 18
2. महात्मा गाँधी - हरिजन सेवक, 30.11.1934
3. महात्मा गाँधी - रचनात्मक कार्यक्रम, पृ. 21-22

एकता, आर्थिक स्वतंत्रता और समानता की प्रतीक है। नेहरू जी के शब्दों में खादी हिन्दुस्तान की आज़ादी की पोशाक है। गाँधी जी ने इसकी महत्ता को सिद्ध करते हुए कहा कि "स्वराज्य के समान ही खादी भी राष्ट्रीय जीवन केलिए श्वास के जितनी ही आवश्यक है।"[1]

खादी स्वदेशी का विशुद्ध रूप है। खादी तैयार करने केलिए सूत की ज़रूरत होती है और सूत कताई का परंपरागत साधन है चरखा - "मेरा पक्का विश्वास है कि हाथ कताई और हाथ बुनाई के पुनर्जीवन से भारत के आर्थिक और नैतिक पुनरुद्धार में सबसे बडी मदद मिलेगी।"[2]

1.4.2.9 चरखाः-

गाँधी जी ने स्वावलंबन में चरखे का अत्यधिक योगदान स्वीकारा है। हाथकरघे की सफलता का सूत्र वे चरखे की सफलता में देखते हैं। "पुनरुद्धार तब तक नहीं हो सकता जब तक बुद्धि और देश भक्तिवाले निस्वार्थ भारतीयों की एक सेना न हो और वह चरखे का सन्देश देहातियों में फैलाने और उनकी निस्तेज आँखों में आशा और प्रकाश की किरण जगाने केलिए दत्तचित्त होकर काम न करने लगें। यह सही ढंग के सहयोग और प्रौढ शिक्षा का जबरदस्त प्रयत्न है।"[3]

चरखा शरीरिक श्रम और रोज़गार एवं आत्मनिर्भरता का साधन है। चरखा जनसाधारण की आशाओं का प्रतीक है। उनके लिए चरखा करोडों

1. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 19.1.1928
2. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 21.7.1920
3. महात्मा गाँधी - हरिजन - 13.4.1940

मूक लोगों के साथ एकता स्थापित करने का एक साधन था। उन्होंने कहा कि "मैं जितनी बार चरखे पर सूत निकालता हूँ उतनी ही बार भारत के गरीबों का विचार करता हूँ। भूख की पीडा से व्यथित ही ईश्वर है। उसे जो रोटी देता है वही उसका मालिक है। जिनके हाथ-पैर सही सलामत हैं। दान देना अपना और उनका दोनों का पतन करना है। उन्हें तो किसी न किसी तरह के धंधे की ज़रूरत है और वह धंधा जो करोडों को काम देगा, केवल हाथ-कतई का ही हो सकता है।"[1]

1.4.2.10 लघु एवं कुटीर उद्योग

गाँधी जी ने हमेशा ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना पर विशेष बल दिया है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में किसान कृषि कार्य से इतर समय में कृषि जन्य कच्चे माल का उपयोग करके विभिन्न उत्पाद बना सकते हैं। जिससे कृषि परिवारों में बेरोज़गारी उन्मूलन के साथ साथ किसानों की आर्थिक स्थिति में भी सुधार किया जा सकता है। गाँधी जी के अनुसार "ग्रामीण क्षेत्रों में कच्चे माल की कमी नहीं हैं अतः सूत कातना, गुड बनाना, धान से चावल तैयार करना, नीम का तेल निकालना, हाथ से कागज़ बनाना जैसे कार्यों के माध्यम से बेरोज़गारी, प्रदूषण, शोषण जैसी समस्याओं से लाखों किसानों को बचाया जा सकता है।"[2]

गाँधी जी विभिन्न आर्थिक बुराईयों की जड़ विशाल उद्योगों को मानते थे और इन बुराईयों अथवा समस्याओं के उन्मूलन के लिए कुटीर

1. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 20.5.1926
2. मोहनचन्द्र पाण्डेय- गाँधीवादी चिंतन और औद्योगिक विकास, पृ. 40

उद्योग को महत्वपूर्ण मानते थे। इसीलिए उन्होंने चटाई, झाडू, मिट्टी के बर्तन, चमडे का सामान, हस्तशिल्प आदि को बढावा दिया तथा किसानों को पशुपालन के लिए प्रोत्साहित किया। गाँधी जी का कुटिर एवं लघु उद्योंगों को महत्व दिये जाने का कारण यह था कि ये किसानों से सीधे जुड़े होते हैं और इससे ग्रामीणों का शहरों की ओर पलायन पर रोक लगाई जा सकती है - "लघु उद्योग के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों का उचित दोहन तथा श्रम प्रधान तकनीक से लाखों हाथों को काम उपलब्ध करवाया जा सकता है।"[1]

1.4.2.10 स्वदेशी भावना

स्वदेशी भावना को गाँधीजी ने विश्वव्यापी दृष्टिकोण से परिकल्पित किया है। सच्चे स्वदेशी की व्याख्या करते हुए गाँधीजी ने कहा था कि "यदि कोई वस्तु करोडों लोगों के हित को बचाता है, तो उसे स्वदेशी वस्तु कहा जाएगा। यद्यपि उसमें विदेशी पूंजी और ज्ञान का उपयोग किया गया है, किन्तु उस पर भारतीयों का प्रभावसाली नियंत्रण हो।"[2] आर्थिक दृष्टि से स्वदेशी का समर्थन करते हुए गाँधीजी ने किसानों द्वारा समृद्धिपूरक धंधों को अपनाने का आह्वान किया।

स्वदेशी न केवल राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में व्यक्ति का उत्थान करता है बल्कि वह स्वभाषा को भी आदर प्रदान करता है तथा उसे अपनाने के लिए आग्रह करता है। गाँधी जी के अनुसार भारत

---

1. रुद्र दल एवं सुन्दरम - भारतीय अर्थव्यवस्था, 1999 पृ. 105
2. महात्मा गाँधी - हरिजन - 28.9.1939, पृ. 25

का पुनरुद्धार तभी संभव है जबकि सच्चे अर्थों में स्वदेशी को अपनाया जाएगा। यह धन के समान वितरण का एक साधन है। यह कृषि का पूरक है और इसलिए हमारी गरीबी की समस्या का समाधान करने में सहायक है। इसलिए गाँधीजी ने "स्वदेशी को भारत का कामधेनु कहा है, जो हमारी सारी आवश्यकताओं और सारी समस्याओं का समाधान करने में समर्थ है।"[1]

1.4.2.11 राष्ट्रीय आय का वितरण

गाँधी जी के अनुसार राष्ट्रीय आय का वितरण समाज के सभी वर्गों की आवश्यकताओं को अवश्य पूरा करने के सक्षम होना चाहिए। "समान वितरण का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी प्राकृतिक आवश्यकताओं के बराबर प्राप्त हो इससे अधिक नहीं। उदाहरण केलिए एक व्यक्ति को रोटी केलिए एक चौथाई पौंड आटा चाहिए क्योंकि उसका हाजमा ठीक नहीं है जबकि दूसरा व्यक्ति स्वस्थ है और उसे रोटी केलिए एक पौंड आटा चाहिए तो इन दोनों को इतना मौद्रिक पुरस्कार राष्ट्रीय आय में से अवश्य मिलना चाहिए कि वे अपनी आवश्यकताओं को संतुष्ट कर सकें।"[2] अतः कहा जाए तो गाँधीजी राष्ट्रीय आय के समान वितरण पर इसलिए बहुत बल देते थे क्योंकि आय की समानता ही सभी समानताओं का आधार होती है। आर्थिक समानता से ही सामाजिक और राजनैतिक समानता विकसित होती है।

---

1. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 21 अप्रैल 1920
2. महात्मा गाँधी - हरिजन - 25.8.1940, पृ. 31-32

1.4.3 राजनीतिक कार्यक्रम

1.4.3.1 गाँधीः एक राजनैतिक चिन्तक

गाँधी जी उच्च कोटि के राजनीतिक चिंतक थे। परन्तु उनका चिंतन पारंपरिक चिन्तन से भिन्न था। वे न तो अकादमिक शोधकर्ता थे और न ही पुस्तकालय अध्ययनकर्ता। गाँधी जी मूल रूप से एक आन्दोलनकर्ता एवं समाज सुधारक थे। उनका राजनीतिक चिंतन पुस्तकबद्ध नहीं अपने बहुत से विचारों के माध्यम से उन्होंने अपना राजनैतिक विचार प्रस्तुत किया। अतः उनके राजनीतिक चिंतन को अलिखित चिंतन कहा जा सकता है। भारतीय राजनीति में प्रवेश करने के उपरान्त गाँधी जी ने यह अनुभव किया कि "राजनीति को समाज के एक समूह ने स्वार्थ-सिद्धि केलिए अपने हाथ में शक्तिशाली अस्त्र बना रखा है और वर्तमान शासन तंत्र को जटिल बना दिया है।"[1]

गाँधी जी की दृष्टि में राजनीतिक चेतना धार्मिक चेतना है। इस सन्दर्भ में गाँधी जी ने स्वीकारा है कि "जब से मैंने यह जाना है कि सार्वजनिक जीवन क्या है, तब से मेरे प्रत्येक शब्द और कार्य के मूल में धार्मिक चेतना और नितांत धार्मिक हेतु रहे हैं।"[2] वे ही पहले महात्मा हैं जिन्होंने धर्ममय राजनीति की नींव डाली। उनका "राजनीतिक दर्शन उनके धार्मिक तथा नैतिक सिद्धान्तों का सार है।"[3]

---

1. महात्मा गाँधी - स्पीचेज़ - यंग इण्डिया, पृ. 40
2. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - भाग - 3, पृ. 350
3. महात्मा गाँधी - स्पीचेज़, पृ. 80

1.4.3.2 स्वराज्य की अवधारणा

गाँधी जी की स्वराज्य अवधारणा का विकास उनके द्वारा भारत की आज़ादी के लिए किये गये सत्याग्रहों के साथ साथ हुआ है। उनके अनुसार "स्वराज्य से मेरा अभिप्राय है लोक सम्मति के अनुसार होनेवाला भारतवर्ष का शासन।"[1] उनका स्वराज्य वास्तव में एक आदर्श राज्य की प्रकृति और उसके स्वरूप की अवधारणा है।

गाँधी जी का स्वराज्य सभी के लिए होगा। "वह जितना किसी राजा केलिए होगा, उतना ही किसान केलिए, जितना किसी धनवान ज़मीन्दार केलिए होगा उतना ही भूमिहीन खेती हर केलिए, जितना हिन्दुओं केलिए होगा उतना ही मुसलमानों केलिए.... उसमें जांति पांति, धर्म अथवा दरजे के भेदभाव केलिए कोई स्थान नहीं होगा।"[2] गाँधी जी ने स्पष्ट कहा है कि उनका स्वराज धर्मनिरपेक्ष एवं भेदभाव रहित होगा। इसमें राज्य का स्वरूप सर्व प्रभुता संपन्न होगा।

1.4.3.3 सर्वोदय की परिकल्पना

गाँधी जी के मन मस्तिष्क को प्रभावित करने वाली पुस्तक थी रस्किन की 'अन टू दिस लास्ट'। इसी पुस्तक से गाँधी जी ने सर्वोदय की अवधारणा को आत्मसात किया। सर्वोदय के सिद्धान्त से गाँधी जी समझते हैं "सबके भले में अपना भला है।"[3]

---

1. महात्मा गाँधी - हिन्दी नवजीवन, 29.1.25
2. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया, 5.03.1931
3. महात्मा गाँधी - आत्मकथा, भाग -4, अध्याय 18

गाँधी जी के अनुसार सर्वोदय का अर्थ आदर्श समाज व्यवस्था है। इसका आधार सर्वव्यापी प्रेम है। इसलिए सर्वोदयी व्यवस्था में सब बराबर के सदस्य होंगे तथा सबको उनकी मेहनत के पैदावार में हिस्सा मिलेगा। गाँधी जी के सर्वोदय का आधार आध्यात्मिक एवं नैतिक है। गाँधी जी इस बात पर विश्वास रखते थे कि अगर हम अपने तात्कालिक वर्तमान काल को दृष्टि में रखकर अपने आदर्शों पर अमल कर सकें, तो सर्वोदय का उद्देश्य अवश्य सिद्ध होगा। "यदि हम चाहते हैं कि हमारा सर्वोदय अर्थात् सच्चे लोकतंत्र का सपना सच्चा साबित हो तो हम छोटे से छोटे भारतवासी को भारत का उतना ही शासक समझेगें जितना देश के बडे से बडे आदमी को। इसके लिए शर्त यह है कि सब शुद्ध हो, या न हुए हो तो शुद्ध हो जाए। और शुद्धता के साथ साथ बुद्धिमानी भी होनी चाहिए।"[1]

गाँधी जी ने अपने सर्वोदयी तत्व दर्शन में जैरेमी बैनथम तथा रस्किन के बहुमतवादी और अल्पमतवादी सिद्धान्तों को समन्वित करके सर्वोदय का राजनैतिक दर्शन प्रस्तुत किया। गाँधी के सर्वोदय में राज्य बहुमत और अल्पमत के बीच भेद न करके सभी के कल्याण के लिए समान रूप से कार्य करेगा। "हम मेहनत करनेवाले मज़दूर और धनी पूँजीपति को समान समझेंगे। सबको अपने पसीने की कमाई से ईमानदारी की रोज़ी कमाना आता होगा और वे मानसिक और शारीरिक श्रम में कोई फर्क नहीं करेंगे।"[2] गाँधी जी के सर्वोदय में नैतिक रूप से सबल व्यक्ति की परिकल्पना है।

1. महात्मा गाँधी - हरिजन, 18.1.48
2. वही

1.4.3.4 रामराज्य का आदर्श

गाँधी जी का सर्वोदय वस्तुतः उनके द्वारा परिकल्पित राम राज्य ही है। उनके अनुसार "रामराज्य का अर्थ है कम से कम राज्य। उसमें लोग अपना कुछ व्यवहार परस्पर मिलकर अपने आप चलायेंगे। कानून गढ़-गढ़कर अधिकारियों के द्वारा दंड के भय से उनका पालन करना उसमें लगभग नहीं होगा। उसमें सुधार करने केलिए जनता धारा सभा या अधिकारियों की राह देखती बैठी न रहेगी।"[1] आगे गाँधी जी कहते हैं "रामराज्य स्वरज्य का आदर्श है। इसका अर्थ है धर्म का राज्य अथवा न्याय और प्रेम का राज्य अथवा अहिंसक स्वराज्य या जनता का स्वराज्य।"[2] गाँधी के इस रामराज्य का अर्थ है पृथ्वी पर ईश्वर का रज्य। 'राम' को ईश्वर का रूप दिया है जिस पर सभी धर्म के माननेवालों का भी आस्था है। राम का मतलब है ईश्वर। इश्वर सबके लिए समान है।

1.4.3.5 राजनीति का आध्यात्मीकरण

महात्मा गाँधी एक राजनीतिज्ञ थे। उनके लिए यह स्थिति बड़ी कष्टकर थी कि राजनीति में धर्म रहित राज सत्ता का साम्राज्य हो तथा छल-छद्मयुक्त राजनीति की प्रमुखता है। उनके अनुसार राजनीति को नैतिकता और मानव-कल्याण का साधन बनना चाहिये। अतः उन्होंने सत्य, अहिंसा और धर्म पर आधारित अपने राजनीतिक दर्शन खडा किया।

---

1. किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, पृ. 77
2. किशोरलाल घ. मशरुवाला, गाँधी विचार दोहन, पृ. 76

गाँधी जी ने राजनीति और धर्म के बीच अटूट संबन्ध स्थापित किया। गाँधी जी चाहते थे कि राजनीति का आधार धर्म होना चाहिए। वे इस तथ्य को अपनाने के लिए तैयार नहीं थे कि "धर्म व्यक्ति का निजी मामला है और इसलिए उसका रजनीति से कोई संबन्ध नहीं होना चाहिये।"[1] उन्होंने राजनीति में निस्वार्थ लोक सेवा तथा नैतिकता के व्यावहारिक पक्ष का समावेश किया। उनके अनुसार राजनीति और अध्यात्म के विचार घूलमिल गये, क्योंकि उनके सभी तत्वों का स्रोत ईश्वर अर्थात्, सत्य की खोज है। इसलिए उन्होंने उसी राजनीतिक प्रक्रिया को उचित बताया है जो सत्य के अनुरूप है। उनके शब्दों में "मैं राजनीति और धर्म को एक दूसरे से अलग नहीं समझता।"[2]

गाँधी जी ने अपने धार्मिक कर्तव्यों के एक अंग के रूप में ही राजनीति में भाग लिया। उनके अपने शब्दों में, "मैंने राजनीति में प्रवेश इसलिये किया क्योंकि आज राजनीति हमसे एक सर्पिणी की भाँति लिपटी हुई है जिससे हम अलग नहीं हो सकते, चाहे हम कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, मैं उस सर्पिणी से लडता हूँ। मैं राजनीति में धर्म को प्रविष्ट करने की चेष्टा कर रहा हूँ।"[3] गाँधी जी ने घोषणा की कि धर्म विहीन राजनीति एक मौत का फन्दा है। गाँधी चिंतन का यह तत्व अभिन्न अंग है कि कोई भी लौकिक सभ्यता अधिक दिन तक

---

1. रोमॉ रोलॉ - महात्मा गाँधी, पृ. 98
2. वही
3. जे.पी. सूद - आधुनिक भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक विचार की प्रमुख धारायें भाग - 4, पृ. 175

जीवित नहीं रह सकती, यदि वह जीवन के उच्च मूल्यों को जो कि मूलतः आध्यात्मिक है, अपने में आत्मसात् नहीं कर लेती।

1.4.3.6 राष्ट्रवाद

गाँधी जी के रूप में भारतीय राजनीति में एक नये युग का सूत्रपात हुआ था। उन्होंने देश के तत्कालीन राष्ट्रवादियों को एक मंच पर लाने के साथ साथ राष्ट्रवाद की एक विस्तृत परिभाषा भी दी। "राष्ट्रवाद की मेरी कल्पना यह है कि मेरा देश इसलिए स्वाधीन हो कि प्रयोजन उपस्थित होने पर सारा ही देश मानव जाति की प्राण-रक्षा केलिए स्वेच्छा पूर्वक मृत्यु का आलिंगन करें।"[1]

गाँधी जी का यह राष्ट्रवाद व्यक्ति प्रेम पर आधारित है। "मेरे लिए देश प्रेम और मानव प्रेम में कोई भेद नहीं है; दोनों एक ही है।"[2] उनका यह देश प्रेम अन्तर्राष्ट्रीयवाद तक जाता है। "राष्ट्रवादी हुए बिना कोई अन्तर्राष्ट्रीयतावादी नहीं हो सकता।"[3] गाँधी जी ने भारतीय राष्ट्र की स्वतंत्रता केलिए अपने विशिष्ट राष्ट्रवादी तर्क प्रस्तुत किये। "मैं अपने देश की स्वतंत्रता इस कारण चाहता हूँ कि अन्य राष्ट्र मेरे राष्ट्र से कुछ सीख सकें, मेरा राष्ट्रवाद उप अन्तर्राष्ट्रवाद है।"[4]

गाँधी जी का राष्ट्रवाद मानवतावादी है। उनका दृष्टिकोण 'वसुधैव

---

1. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत , पृ 14
2. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 16.3.21
3. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 18.6.25
4. एडवर्ड थॉम्सन एण्ड गैरेट -राइस एण्ड फुलफिल्मेन्ट ऑफ ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, पृ. 50

कुटुंबकम्' की भावना पर आधारित है। वे कट्टर राष्ट्रवाद को बुरा मानते थे - "राष्ट्रवाद में कोई बुराई नहीं है; बुराई तो उस संकुचितता, स्वार्थवृत्ति और बहिष्कार वृत्ति में है, जो मौजूदा राष्ट्रों के मानस में ज़हर की तरह मिली हुई है। हर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की हानि करके अपना लाभ करना चहता है और उसके नाश पर अपना निर्माण करना चाहता है।"[1] गाँधी जी अहिंसक थे और इसी कारण वे अहिंसक राष्ट्रवाद के पक्षधर थे। गाँधी जी ने अपने आन्दोलन में भारतीय राजनीति से उग्र राष्ट्रवाद के तत्व निकाल फेंके। इसके मूल में उनके द्वारा चलाया गया स्वदेशी आन्दोलन था। जिस प्रकार स्वतंत्रता उनके लिए राजनीतिक राष्ट्रवाद का प्रतीक था उसी प्रकार स्वदेशी आर्थिक राष्ट्रवाद का। उनके शब्दों में "स्वदेशी में स्वार्थ केलिए कोई स्थान नही है..... अपने विशुद्ध रूप में स्वदेशी सबकी सेवा का सर्वोत्तम रूप है। स्वदेशी का समर्थक कभी भी... किसी के साथ भी प्रतिरोधी भावनाओं से प्रेरित नहीं होगा। पर घृणा का सिद्धान्त नहीं है। यह निस्वार्थ सेवा का सिद्धान्त है, जिसकी जडें विशुद्ध अहिंसा या प्रेम है।"[2] गाँधी जी ने स्वदेशी से उग्र राष्ट्रवादी तत्वों को बाहर कर दिया।

1.4.3.7 एक राष्ट्र एक भाषा

सच्चे राष्ट्रवाद के लिए आवश्यक है एक राष्ट्रभाषा। गाँधी जी राष्ट्रीय जीवन में एक भाषा और एक लिपि के महत्व को समझते थे। उनका मत था "कुछ अन्तर छोडकर देश के बाईस करोड लोग जिनमें हिन्दू और

1. महात्मा गाँधी - यंग इंडिया - 18.6.25
2. महात्मा गाँधी, हिन्द स्वराज - सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. 35

मुसलमान दोनों ही सम्मिलित है, हिन्दुस्तानी बोलते हैं।"[1] राष्ट्र की एकता बनाये रखने के लिए एक राष्ट्र भाषा का होना ज़रूरी है।

गाँधी के अनुसार राष्ट्रभाषा के पाँच लक्षण होने चाहिए। "(क) वह भाषा सरकारी नौकरों केलिए आसान होनी चाहिए (ख) उस भाषा के द्वारा भारत का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक कमकाज हो सकना चाहिए (ग) उस भाषा को भारत के ज़्यादातर लोग बोलते हैं (घ) वह भाषा राष्ट्र केलिए आसान हो (ङ) उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक या कुछ समय तक रहनेवाली स्थिति पर ज़ोर न दिया जाए।"[2] इसलिए गाँधी जी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया तथा अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का पूर्ण प्रचार-प्रसार किया।

1.4.3.8 गाँधी के राष्ट्रवाद में सत्याग्रह तथा उसकी विधियाँ

अहिंसात्मक तरीकों के द्वारा सत्य का आग्रह करना ही सत्याग्रह है, जिसका उल्लेख पहले दिया हुआ है। गाँधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सत्याग्रह का प्रयोग करके भारतीय राष्ट्रवाद को नैतिक दिशा प्रदान की। गाँधी जी द्वारा सत्याग्रह की विधियाँ भी परिकल्पित हैं। जिसमें असहयोग, सविनय अवज्ञा, उपवास आदि प्रमुख है।

गाँधी जी का सत्याग्रह राजनीतिक क्षेत्र में असहयोग के नाम से प्रचलित था। असहयोग का विश्लेषण उन्होंने असहयोग कमेटी में प्रस्तुत

---

1. इन्दौर में सन् 1935 में हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 24 वें अधिवेशन में अध्यक्ष पद से दिये गये गाँधीजी के मूल हिन्दी भाषण से।
2. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत पृ. 216

किया था। उन्होंने स्पष्ट किया कि "हमारे सामने एक रास्ता है असहयोग। वह सीधा, साफ मार्ग है। हिंसात्मक न होने से यह कारगर भी उतना ही होगा।"[1] उनके अनुसार यदि सरकार जनता की भावनाओं के प्रतिकूल चलती है, यदि उसका शासन अनैतिक और अन्यायपूर्ण है तो सरकार के साथ असहयोग करना जनता का अधिकार है। यही असहयोग है।

सविनय अवज्ञा से तात्पर्य है अनैतिक कानूनों का अहिंसक तरीके अपनाते हुए भंग करना। यह एक अहिंसक विद्रोह है। गाँधी जी के शब्दों में "सविनय अवज्ञा नागरिक का जन्मसिद्ध अधिकार है। सविनय अवज्ञा का परिणाम कभी भी अराजकता में नहीं आ सकता। दुष्ट हेतु से की गयी अवज्ञा से ही अराजकता पैदा हो सकती है। दुष्ट हेतु से की जानेवाली अवज्ञा को हर एक राज्य बलपूर्वक अवश्य दबायेगा। यदि वह उसे नहीं दबायेगा तो वह खुद ही नष्ट हो जाएगा। किन्तु सविनय अवज्ञा दबाने का अर्थ तो अन्तरात्मा की आवाज़ को दबाने की कोशिश करना है।"[2] अतः दूसरे शब्दों में सविनय अवज्ञा नैतिक दृष्टि से शून्य संवैधानिक कानूनों को तोडने का शिष्ट प्रयोग है।

उपवास सत्याग्रह का वह अंग है जिसे सत्याग्रही स्वयं अपने ऊपर लागू करता है। यह सत्याग्रह का सबसे बडा हथियार है। गाँधी जी के शब्दों में "अहिंसा के पूजारी के शस्त्रागार में उपवास आखिरी हत्यार है। जब मानव बुद्धि काम नहीं देती तब वह उपवास करता है।"[3]

1. आ. जावडेकर- आधुनिक भारत, पृ. 118-119
2. जैनेन्द्र कुमार - अकाल पुरुष गाँधी, उत्तरप्रदेश शताब्दी समिति
3. महात्मा गाँधी - सर्वोदय, पृ. 98

1.4.3.9 लोकतंत्र की परिकल्पना

लोकतंत्र से तात्पर्य है जनता द्वारा जनता के लिए जनता पर शासन। गाँधी जी के अनुसार "प्रजातंत्र का अर्थ मैं यह समझा हूँ कि इस तंत्र में नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए।"[1] असल में लोकतंत्र का स्वाभाविक अर्थ है आत्मानुशासन। लोकतंत्रवादी पूर्ण रूप से अनुशासन का पालन करनेवाला होता है। जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों का उचित तरीके से पालन करता है उसे अधिकार स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। "लोकशाही में हर आदमी को समाज की इच्छा यानि राज्य की इच्छा के मुताबिक चलना होता है और उसी के मुताबिक अपनी इच्छाओं की हद बाँधनी होती है।"[2]

गाँधी जी का लोकतंत्र अहिंसात्मक एवं सत्यनिष्ठ है। इसमें राष्ट्र अपना काम राज्य के हस्ताक्षेप के बिना ही शान्तिपूर्वक और प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकता है, सच्चे अर्थों में यही लोकतंत्र है। "अनुशासन और विवेक युक्त जनतंत्र दुनिया की सबसे सुन्दर वस्तु है। लेकिन राग-द्वेष, ज्ञान और अन्धविश्वास आदि दुर्गुणों से ग्रस्त जनतंत्र अराजकता के गड्ढे में गिरता है और अपना नाश खुद कर डालता है।"[3]

संक्षेप में यह सिद्ध होता है कि गाँधी जी ने राजनैतिक व्यवस्था में धर्म एवं आध्यात्म का समावेश करके एक नयी व्यवस्था प्रदान की जिसमें

1. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 20
2. महात्मा गाँधी - दिल्ली डायरी, पृ 19
3. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 30.7.31

व्यक्ति के सद्‌गुणी होने की परिकल्पना की है। गाँधी जी की यह परम राजनैतिक सत्ता सत्य एवं अहिंसा पर आधारित होगी, सभी समान होंगे, किसी भी प्रकार का कोई विभेद नहीं होगा और इसका अन्तिम देय उस चरम अवस्था को प्राप्त करना है जहाँ सभी प्रकार के बाहरी बंधन समाप्त हो जाते हैं।

1.4.4 धार्मिक कार्यक्रम

गाँधी जी केवल एक राजनीतिक नेता ही नहीं थे बल्कि एक सच्चे धार्मिक व्यक्ति भी थे। यंग इण्डिया में उन्होंने लिखा - "अपने सार्वजनिक जीवन के आरंभ से ही मैंने अब तक जो भी कहा है और किया है, उसके पीछे एक धार्मिक चेतना और एक धार्मिक उद्देश्य रहा है।"[1] आगे वे कहते हैं "जिन धार्मिक व्यक्तियों के मैं संपर्क में आया हूँ उनमें से अधिकतर छिपे हुए वेष में राजनीतिज्ञ हैं; परन्तु मैं जो कि एक राजनीतिज्ञ के वेष में रहता हूँ, हृदय से एक धार्मिक व्यक्ति हूँ।"[2]

गाँधी जी संभवतः विश्व के प्रथम और एकमात्र सामाजिक, राजनीतिक नेता थे जिन्होंने जीवन के इन दोनों क्षेत्रों की सफलता का स्वप्न आध्यात्मिक रूप से उन्नत व्यक्ति के विकास में देखा। गाँधी जी का धर्म कोई औपचारिक अथवा परंपरागत धर्म नहीं था। गाँधी जी ने स्वयं कहा था "धर्म से मेरा आशय क्या है? मैं इसकी व्याख्या करना चाहता हूँ। यह हिन्दू धर्म नहीं है

1. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया, 76
2. जे.पी. सूद. आधुनिक भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक विचार की प्रमुख धारायें, भाग - 1, पृ. 105

जिसको मैं निश्चित रूप से ही अन्य समस्त धर्मों की अपेक्षा अधिक महत्व देता हूँ, बल्कि वह धर्म है जो कि हिन्दू धर्म का अतिक्रमण करता है, जो कि मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन कर देता है, जो कि उसको उसके अन्तरस्थ सत्य के साथ अभेद्य रूप से आबद्ध कर देता है और जो सदैव शुद्ध करता है।"[1]

1.4.4.1 धर्म विषयक अवधारणा

गाँधी जी ने धर्म की व्याख्या देते हुए कहां कि धर्म एक ही है। उन्होंने कहा - "जैसे हर वृक्ष का एक ही तना होते हुए भी बहुत सी डालियां और पत्तियां होती हैं, उसी प्रकार सच्चा और संपूर्ण धर्म एक ही है। परन्तु जब वह मानवीय माध्यम से होकर गुज़रता है, तब उसके अनेक रूप बन जाते हैं। वह संपूर्ण धर्म वाणी से परे हैं।"[2] गाँधी जी ने धर्म को व्यावहारिक बना दिया। वे धर्म का प्रयोग एक बहुत ही विस्तृत एवं व्यापक अर्थ में करते हैं। "दुनिया के विभिन्न धर्म एक ही स्थान पर पहुँचने के अलग रास्ते हैं।"[3] गाँधी जी एक धार्मिक व्यक्ति थे और उनका उद्देश्य आध्यात्मिक मोक्ष प्राप्त करना था। उनके अनुसार मानव जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य आत्मज्ञान प्राप्त करना है अर्थात् सत्यरूपी परमात्मा की खोज करना।

गाँधी जी ने अनेक संप्रदाय तथा धर्मों का समान रूप से आदर करने हेतु सर्वधर्म समभाव को अनिवार्य नैतिक व्रत के रूप में स्वीकार

1. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 12 मई 1920
2. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 29
3. महात्मा गाँधी - हिन्द स्वराज, 1946, पृ. 35-36

किया। सर्वधर्म का अर्थ है सभी धर्मों को समान समझना और किसी विशेष धर्म को उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट नहीं मानना। "मेरा अपना विचार, यह सभी महान् धर्म मूलतः समान हैं, हमें दूसरे धर्मों का उसी प्रकार आदर करना चाहिये जिस प्रकार हम अपने धर्म का सम्मान करते हैं।"[1]

गाँधी जी ने अपने आपको विभिन्न धर्मों का अनुयायी समझा। उन्होंने कहा कि वे सच्चे हिन्दू है, सच्चा ईसाई, सच्चा मुस्लिम, सच्चा फारसी एवं सच्चा यहूदी भी है। उनके अनुसार सभी धर्मों के नियम समान है। उनका मत है कि विश्व में एक ही धर्म है और वह मानवता का धर्म है।

1.4.4.2 हिन्दुत्व की अवधारणा

गाँधी जी अपने आपको सनातनी हिन्दू मानते थे। गाँधी जी कहते हैं "अगर मुझसे पूछा जाय कि हिन्दू धर्म की परिभाषा क्या है, तो मैं केवल इतना ही कहूँगा, अहिंसक साधनों द्वारा सत्य की खोज।"[2] वे हिन्दू धर्म में अटूट विश्वास रखते थे। उन्होंने हिन्दू धर्म के प्राचीन मूल तत्व सत्य को ही ईश्वर मानते थे। जिसकी प्राप्ति अहिंसा अथवा प्रेम, अभय, अस्तेय, अपरिग्रह, आत्मत्याग तथा ब्रह्मचर्य आदि सद्गुणों के बिना नहीं हो सकती।

सार रूप में गाँधी जी के धार्मिक चिन्तन का ध्येय है मानव मात्र की सेवा द्वारा नैतिक सद्गुणों का विकास करते हुए सत्य की प्राप्ति से मोक्ष तक जाना है। उनके जीवन का अन्तिम लक्ष्य ईश्वरीय सत्य का अंगीकार करना

1. महात्मा गाँधी - हरिजन, 11 फरवरी 1940
2. डॉ. बी. पट्टाभी-सीतारमैया - गाँधी और गाँधीवाद पृ. 13

था। दृढ रूप से सत्य मार्ग में चलनेवाला साधक कभी भी पथ भ्रष्ट नहीं हो सकता। "सत्य ईश्वर का सही नाम है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य अपने ज्ञान के अनुसार सत्य का पालन करें, तो उसमें कुछ भी बेजा नहीं है।.... सत्य की खोज में तप स्वयं कष्ट सहने की ज़रूरत होती है, कभी कभी उसके पीछे मर मिटना होता है।"[1] गाँधी जी के लिए ईश्वर 'सत्य' है। सार्वभौमिक धर्म के पक्षधर गाँधी जी के लिए धर्म वह है जो मनुष्य की प्रकृति को बदल दे। अन्तकरण को सत्य रूपी ईश्वर का परिचय देकर उसका शुद्धिकरण करें। संक्षेप में, "धर्म का अर्थ है, सृष्टि के नैतिक शासन के नियमन में विश्वास।"[2]

1.4.5 शिक्षा कार्यक्रम

गाँधी जी ने शिक्षा के संबन्ध में कहा कि "सा विद्या या विमुक्तये। जो मुक्ति के योग्य बनाये वह विद्या है बाकि सब अविद्या है।"[3] उन्होंने एक आदर्श समाज की स्थापना हेतु बुनियादी शिक्षा पर विशेष बल दिया। गाँधी जी ने शिक्षा के विषय में गहन चिंतन मनन किया। गाँधी जी के अनुसार "वास्तविक शिक्षा वह है जो बच्चे को सीखने की कला सिखाए। दूसरे शब्दों में, ज्ञान की पिपासा उसमें जाग्रत होनी चाहिए।"[4]

गाँधी जी की बुनियादी शिक्षा में 'लर्निंग बाई डूइंग' के सिद्धान्त का समावेश है। वे मानते थे कि बुनियादी शिक्षा गाँवों की किसी बुनियादी दस्तकारी के माध्यम से दी जानी चाहिए। उनके बुनियादी शिक्षा दर्शन का

1. महात्मा गाँधी - सर्वोदय - पृ. 9
2. महात्मा गाँधी - हरिजन 10 दिसंबर 1940, पृ. 445
3. किशोरलाल घ. मशरुवाला - गाँधी विचार दोहन, पृ. 133
4. द क्लेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, वालूयम-1, पृ. 138

प्रमुख सिद्धान्त है कि हर काम का समाज में समान महत्व है। यह शिक्षा गाँव के लिए थी। "इस तालीम (बुनियादी शिक्षा) की मंशा यह है कि गाँव के बच्चों को सुधार सवाँरकर उन्हें गाँव का आदर्श बाशिन्दा बनाया जाए। इसकी योजना खासकर उन्हीं को ध्यान में रखकर तैयार की गई है। इस योजना की असली प्रेरणा भी गाँव से ही मिली है।"[1] उनके अनुसार "बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य दस्तकारी के माध्यम से बालकों का शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास करना है।"[2]

गाँधी जी ने नई तालीम नामक एक नई विधि का समावेश शिक्षा कार्यक्रम में किया। उनके लिए शिक्षा मात्र अक्षर ज्ञान ही नहीं है बल्कि हाथ की शिक्षा है। अतः कहा जाए तो "अक्षर ज्ञान हाथ की शिक्षा के बाद आना चाहिए। हाथ से काम करने की क्षमता-हस्त कौशल ही तो वह चीज़ है, जो मनुष्य को पशु से अलग करती है।"[3]

हमारे ग्राम प्रधान समाज के अधिक्तर वासियों के लिए उनका गाँव ही उनकी देश दुनिया है। हिन्दुस्तान को राजनीतिक रूप से जागृत करने के लिए गाँधी जी ने इस ग्राम जनसंख्या को प्राथमिक तौर पर राजनीतिक रूप से शिक्षित करने पर बल दिया। वे कहते हैं- "बडी उम्र के अपने देशवासियों की शिक्षा का सबसे पहला अर्थ मैं यह करता हूँ कि उन्हें जबानी तौर पर यानि सीधी बातचीत के ज़रिए सच्ची राजनैतिक तालीम दी जाए।"[4] गाँधी जी

---

1. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, 199
2. महात्मा गाँधी - हरिजन 6.4.40
3. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 196
4. महात्मा गाँधी - रचनात्मक कार्यक्रम, पृ. 30-31

ने प्रौढ शिक्षा पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा - "जो अधेड उम्र के हो गये हैं और कोई धन्धा करते हैं। उन्हें पढना लिखना सीखने की खास ज़रूरत है।"[1] गाँधी जी देश में फौली निरक्षरता को भारत का कलंक मानते थे और उसे जड़ से उखाडना चाहते थे।

गाँधी जी के विचार से किसी भी शिक्षा का कोई मायना नहीं है जो धार्मिक शिक्षण से रहित हो। धार्मिक शिक्षा से मतलब धर्म पुस्तकों के ज्ञान से नहीं है अपितु व्यक्ति के चारित्रिक और नैतिक रूप से सबल बनाने से है। धार्मिक शिक्षा में सभी धर्मों के सिद्धान्तों का समावेश होना चाहिए। गाँधी जी के शब्दों में "धार्मिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में अपने सिवा दूसरे धर्मों के सिद्धान्तों का अध्ययन भी शामिल होना चाहिये। इसके लिए विद्यार्थियों को ऐसी तालीम दी जानी चाहिये, जिससे वे संसार के विभिन्न महान धर्मों के सिद्धान्तों को आदर और उदारतापूर्ण सहनशीलता की भावना रखकर समझने और उनकी कदर करने की आदत डालें। यह काम ठीक ढंग से किया जाय तो इससे उनकी आध्यात्मिक निष्ठा दृढ होगी और स्वयं अपने धर्म की अधिक समझ प्राप्त करने में मदद मिलेगी।"[2]

अध्यापन कला के क्षेत्र में गाँधी जी ने इसके विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार प्रस्तुत किये। अध्यापक कैसे हो पर वे कहते हैं कि "इस संबन्ध में मैं इस पुराने विचार का माननेवाला हूँ कि उन्हें अध्यापन, अध्यापन कार्य केलिए अपने अनिवार्य प्रेम के कारण ही करना चाहिए और इस कार्य

1. महात्मा गाँधी - बुनियादी शिक्षा, पृ. 138
2. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, 206

से अपने जीवन निर्वाह केलिए जितना आवश्यक हो उतना ही लेकर संतुष्ट रहना चाहिए।"[1] इसके साथ ही उन्हें "सफलता तक पहुँचने केलिए मार्ग की कठिनाईयों से वीरतापूर्वक जूझना चाहिए और आगे बढते जाना चाहिए।"[2]

गाँधी जी पाठ्यक्रम के विषय में भी व्यावहारिक दृष्टिकोण रखते हैं। वे उन्हीं पुस्तकों को पाठ्यक्रम में शामिल करने का बल देते हैं जो मौलिकता और मानवीयता से ओतप्रोत हो। गाँधी जी ने शिक्षा को जीवन में सर्वोच्च स्थान दिया है। उसके बिना कोई भी विकास अपने आपमें परिपूर्ण सिद्ध नहीं होगा। शिक्षा से उनका तात्पर्य है "मनुष्य में निहित शक्तियों की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है - शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक।"[3]

गाँधी जी ने आध्यात्मवादी होने के कारण बार बार शिक्षा का उद्देश्य चरित्र विकास बताया है। इसका अर्थ यह है कि उन्होंने बहुत प्रबल रूप से शिक्षा द्वारा जीवन के आर्थिक पक्ष एवं सर्वांगीण विकास की वकालत की है। वे उद्योग को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे क्योंकि इससे न केवल आर्थिक उत्पादन होगा बल्कि बालक के चरित्र का विकास भी होगा। उन्होंने बार बार दोहराया कि किसी उद्योग से शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति नहीं होती तो वे उसे बिलकुल पसन्द नहीं करेंगे। उन्होंने शिक्षा के केन्द्र में आर्थिक स्वावलंबन को रखा - "हाथ का काम इस सारी योजना का केन्द्र बिन्दु होगा।... हाथ की तालीम का मतलब यह नहीं होगा कि विद्यार्थी पाठशाला

1. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 207
2. वही - पृ. 209
3. संपूर्ण गाँधी वाङ्मय, खण्ड - 65, पृ. 487

के संग्रहालय में रखने लायक वस्तुयें बनायें या ऐसे खिलौने बनायें जिनका कोई मूल्य नहीं। उन्हें ऐसी वस्तुए बनाना चाहिए जो बाज़ार में बेची जा सकें।"[1] गाँधी जी सबको आर्थिक स्वावलंबन की शिक्षा देने के पक्षधर थे। जिससे व्यक्ति का विकास संभव है। उसकी शिक्षा बाल्यकाल से ही विद्यार्थियों को देने की ज़रूरत पर गाँधी जी विचार करते हैं।

गाँधी जी ने आर्थिक गतिविधियों द्वारा प्राथमिक शिक्षण के माध्यम से सामाजिक क्रान्ति की कल्पना की थी। इस सन्दर्भ में वे लिखते हैं "ओटाई और कताई आदि गाँवों में चलने योग्य हाथ उद्योगों के द्वारा प्राथमिक शिक्षण की मेरी योजना की कल्पना चुपचाप चलनेवाली ऐसी सामाजिक क्रान्ति के रूप में की गयी है, जिसके अत्यन्त दुरगामी परिणाम होंगे। वह शहरों और गाँवों में स्वस्थ और नैतिक संबन्धों की स्थापना के लिए सुदृढ़ आधार पेश करेगी और इस तरह मौजूदा सामाजिक अरक्षितता और वर्गों के पारस्परिक संबन्धों की मौजूदा कटुता की बुराईयाँ बडी हद तक दूर होंगी।"[2]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गाँधी जी की शिक्षा की संकल्पना आज की शिक्षा की तरह एक 'सफेद हाथी' नहीं थी। आज की शिक्षा प्रणाली व्यावहारिकता से दूर सिद्धान्तपरक है, जिससे बच्चों में रटने की कला के अलावा और कोई ज्ञानपरक उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। गाँधी जी की शिक्षा संबन्धी संकल्पना नये समाज की नयी सामाजिक क्रांति की संकल्पना थी। जो शिक्षा मनुष्य को सच्चे सुख एवं आनन्द की ओर ले जाती है, वही

1. महात्मा गाँधी - हरिजन - 11.9.1937
2. महात्मा गाँधी - हरिजन - 9.10.37

दरअसल सही शिक्षा है। अतः इस बात पर बल देना आवश्यक है कि जब तक विश्वविद्यालय स्वावलंबी नहीं बनते तब तक शिक्षा की दशा में सुधार संभव नहीं। महात्मा गाँधी की आधारभूत शिक्षा वास्तव में भारत की परिस्थितियों के अनुकूल तथा सच्ची शिक्षा की ज्योति का प्रकाश फैलाने वाला है।

1.4.6 सांस्कृतिक कार्यक्रम

1.4.6.1 संस्कृति की अवधारणा

संस्कृति शब्द का मूल अर्थ है स्वच्छ या परिष्कार करना। इसमें "उन्नयन मूलक परिष्कार प्रक्रिया का मूल भाव निहित है।"[1] राष्ट्र कवि दिनकर ने लिखा कि "संस्कृति ज़िन्दगी का एक तरीका है।"[2] डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने माना कि "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की परिणति है।"[3] भारतीय संस्कृति को एक परिभाषा देना है तो कहा जा सकता है विविधता में एकता। यही संस्कृति है। इसमें प्राचीन काल से चली आ रही रीति रिवाज़, परंपराओं और विचारों का समावेश है।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार "संस्कृति का अर्थ चिंतन तथा कलात्मक सृजन की वे क्रियाएँ समझनी चाहिए जो मानव जीवन और व्यक्तित्व केलिए साक्षात उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध बनाने वाली है। इस

---

1. सत्यकेतु विद्यालंकार - भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ. 19
2. रामधारी सिंह दिनकर- भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 653
3. डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - अशोक के फूल, पृ. 64

दृष्टि से हम विभिन्न शास्त्रों दर्शन आदि में होनेवाले चिंतन, साहित्य, चित्रांकन आदि कलाओं एवं परहित साधना आदि नैतिक आदर्शों तथा व्यापारों को संस्कृति की संज्ञा दे सकते हैं।"[1]

1.4.6.2 भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक विभिन्नता पूर्ण संस्कृति है। जैसे पहले कहा गया है विविधता में एकता इसके मूल में है। नेहरू जी के अनुसार भारतीय संस्कृति आर्यों, द्रविड और अन्य संस्कृतियों के मेल से बना सुन्दर रूप है।

गाँधी जी ने भारतीय संस्कृति को विश्व की अन्य संस्कृतियों में से सर्वोच्य माना। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति में वे सारे तत्व निहित हैं जिससे समूचे विश्व को लाभ प्राप्त होगा। वे कहते हैं - "मेरी यह दृढ मान्यता है कि हमारी संस्कृति में जैसी मूल्यवान निधियाँ हैं, वैसी किसी दूसरी संस्कृति में नहीं हैं। हमने उसे पहचाना नहीं है, हमें उसके अध्ययन का तिरस्कार करना, उसके गुणों की कीमत कम करना सिखाया गया है।... मेरा धर्म मुझे आदेश देता है कि मैं अपनी संस्कृति को सीखूँ, ग्रहण करूँ और उसके अनुसार चलूँ, अन्यथा अपनी संस्कृति से विच्छिन्न होकर हम एक समाज के रूप में मानो आत्महत्या कर लेंगे।"[2]

भक्ति आन्दोलन से उपजे धार्मिक एवं सांस्कृतिक जागरण की गति 18 वीं शती तक आते आते मन्द पड गयी थी। समाज में अनेक कुरीतियाँ

1. सं. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम अध्याय, पृ. 701-702
2. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया - 2.9.1921

पनपने लगी थीं। भारत में इस्लाम, बौद्ध के साथ साथ ईसाई धर्म भी अपने पाँव जमा रहे थे। इन्हीं परिस्थितियों के मद्देनज़र रखते हुए यह कहा जा सकता है कि 19 वीं शती में भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण की शुरुआत हुई। 20 वीं शताब्दी तक आते आते इस पुनर्जागरण पर पश्चिमी संस्कृति एवं सभ्यता का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होने लगा था। गाँधी जी का आगमन भारतीय जनमानस में नयी घटना थी। उन्होंने जनता को भारतीय संस्कृति के प्राचीन धरोहर सत्य एवं अहिंसा का पाठ सिखाया। गाँधी जी ने एक बात सबको खुलकर बताया कि वे पश्चिमीकरण के विरोधी हैं। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के पश्चिमीकरण का विरोध करते हुए उन्होंने कहा "यह सभ्यता दूसरों का नाश करनेवाली और खुद नाशवान् है। इससे दूर रहना चाहिए।"[1] गाँधी जी मानते थे कि भारतीय संस्कृति अभी पुनर्निर्माण के दौर से गुज़र रही है और हम इसमें सबसे बेहतर गुण सम्मिलित करके इसे सर्वोत्तम बना सकते हैं । "हमारे समय की भारतीय संस्कृति अभी निर्माण की अवस्था में है। हम लोगों में से कई उन सारी संस्कृतियों का एक सुन्दर सम्मिश्रण रचने का प्रयत्न कर रहे हैं।"[2]

गाँधी जी मूलतः धार्मिक थे। सर्वधर्म समभाव एवं वसुधैव कुटुंबकम उनके जीवन दर्शन थे। गाँधीजी ने ताउम्र विश्व बन्धुत्व एवं मानवता के विकास के लिए कार्य किया। भारतीय संस्कृति के संबन्ध में उनका दृढ मत था कि "कोई संस्कृति इतने रत्नभण्डार से भरी हुई नहीं है जितनी हमारी

1. महात्मा गाँधी - हिन्द स्वराज - पृ. 20
2. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 195

अपनी संस्कृति है।"[1] उनके अनुसार अपनी संस्कृति की पूरी समझ और कद्र के पश्चात् ही दूसरी संस्कृतियों की समझ और कद्र करनी चाहिए। "कोई संस्कृति ज़िन्दा नहीं रह सकती अगर वह दूसरों का बहिष्कार करने की कोशिश करती है। इस समय भारत में शुद्ध आर्य संस्कृति जैसी कोई चीज़ मौजूद नहीं है।"[2]

1.4.6.3 पश्चिमी सभ्यता

गाँधी जी ने पश्चिमी सभ्यता को बिगाड करनेवाली कहा है। यह सभ्यता एक प्रकार का रोग है जो धीरे धीरे सबको उसके चपेट में ले लेता है। भारत के लिए अत्यधिक चिंतित गाँधीजी ने अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि "भारत का भविष्य पश्चिम के उस रक्त-रंजित मार्ग पर नहीं है, जिस पर चलते-चलते पश्चिम अब खुद थक गया है; उसका भविष्य तो सरल धार्मिक जीवन द्वारा प्राप्त शांति के अहिंसक रास्ते पर चलने में ही है।"[3] गाँधी जी को यह पता था कि भारत का भविष्य अंधकार की ओर बढ रहा है। इसलिए उन्होंने आगे कहा "भारत के सामने इस समय अपनी आत्मा को खोने का खतरा उपस्थित है। और यह संभव नहीं है कि अपनी आत्मा को खोकर भी वह जीवित रह सके। इसलिए आलसी की तरह उसे लाचारी प्रकट करते हुए ऐसा नहीं कहना चाहिए कि पश्चिम की इस बाढ़ से मैं बच नहीं सकता। अपनी और दुनिया की भलाई केलिए उस बाढ़ को रोकने योग्य शक्तिशाली तो उसे बनना हो होगा।"[4]

---

1. महात्मा गाँधी - सर्वोदय - पृ. 159
2. महात्मा गाँधी - हरिजन, 9.5.36
3. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 5
4. महात्मा गाँधी - हिन्दी नवजीवन - 7-10-26

गाँधी जी ने आज कल की सभ्यता को नुक्सान देह कहा है। इसकी असली पहचान के बारे में गाँधी जी ने यह कहा है कि "लोग बाहरी (दुनिया) की खोजों में और शरीर के सुख में धन्यता-सार्थकता और पुरुषार्थ मानते हैं।"[1] गाँधी जी ने सभ्यता का विश्लेषण करते हुए कहा कि "शरीर का सुख कैसे मिले, यही आज की सभ्यता ढूँढती है।"[2]

1.4.6.4 भाषा

देश विदेश में पैले ज्ञान भण्डार गाँधी जी देशी भाषाओं के माध्यम से प्राप्त करने पर बल देते हैं। वे कहते हैं - "मैं चाहता हूँ कि उस भाषा (अंग्रेज़ी) में और इसी तरह संसार की अन्य भाषाओं में जो ज्ञान भंडार भरा पडा है, उसे राष्ट्र अपनी ही देशी भाषाओं के द्वारा प्राप्त करें।"[3] गाँधी जी ने देशी भाषाओं को आगे बढाने का सन्देश दिया। जिसके माध्यम से भारतीय संस्कृति का फलक चमक उठें।

मातृभाषा के महत्व और विभिन्न देशों की संस्कृतियों के बारे में गाँधी जी स्पष्ट करते हैं कि "मैं चाहता हूँ कि सब देशों की संस्कृतियों की हवा मेरे घर के चारों ओर अधिक से अधिक स्वतंत्रता के साथ बहती रहे। मगर मैं उनमें से किसी के झोंके में उड़ नही जाऊँगा। मैं चाहूँगा कि साहित्य में रुचि रखनेवाले हमारे युवा स्त्री-पुरुष जितना चाहें अंग्रेज़ी और संसार की दूसरी भाषाएं सीखें और फिर उनसे यह आशा रखूँगा कि वे अपनी

---

1. महात्मा गाँधी - हिन्द स्वराज, पृ. 17-18
2. वही - पृ. 19-20
3. महात्मा गाँधी - सर्वोदय, पृ. 158

विद्वत्ता का लाभ भारत और संसार को उसी तरह दें जैसे बोस, राय या स्वयं कविवर दे रहे हैं। लेकिन मैं यह नहीं चाहूँगा कि एक भी भारतवासी अपनी मातृभाषा को भूल जाय, उसकी उपेक्षा करे, उस पर शर्मिन्दा हो या यह अनुभव करे कि वह अपनी खुद की देशी भाषा में विचार नहीं कर सकता या अपने उत्तम विचार प्रकट नहीं कर सकता।"[1] गाँधी खुले विचार के चिन्तक थे। जिन्होंने हमेशा सब चीज़ों का स्वागत किया किन्तु केवल उस हद तक जिस हद तक वह समाज, राष्ट्र के लिए उपयोगी हो। विदेशी भाषा का ज्ञान ज़रूरी है लेकिन अपनी मातृभाषा को भूलकर किसी दूसरी को अत्यधिक महत्व देने के पक्षधर नहीं थे।

भारत में अंग्रेज़ी को दिये जानेवाले महत्व को गाँधी जी ने सांस्कृतिक गुलामी कहा था। उनके शब्दों में "जिस तरह हमारी आज़ादी को ज़बरदस्ती छीननेवाले अंग्रेज़ों की सियासी हुकूमत को हमने सफलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया उसी तरह हमारी संस्कृति को दबानेवाली अंग्रेज़ी भाषा को भी हमें यहाँ से निकाल बाहर करना चाहिए। हाँ व्यापार और राजनीति की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के नाते समृद्ध अंग्रेज़ी का अपना स्वाभाविक स्थान हमेशा रहेगा।"[2]

1.4.6.5 पारिस्थितिकी

वर्तमान मशीनी युग एवं उपभोग वादी संस्कृति के दुष्परिणामों के

---

1. महात्मा गाँधी - सर्वोदय, पृ. 160
2. महात्मा गाँधी - मेर सपनों का भारत, पृ. 222-223

बारे में गाँधी जी शुरु से अवगत थे। उन्होंने लगातार एवं पुरजोर तरीके से देश में बढ रही मशीनों एवं उपभोग संस्कृति का विरोध किया था। क्योंकि इसका अन्तिम परिणाम समाज का सांस्कृतिक पतन एवं पर्यावरण का विनाश है। उन्होंने कहाँ कि "यंत्र आज की सभ्यता की मुख्य निशानी है और वह महा पाप है।"[1]

गाँधी जी मानवता के लिए ही नहीं बल्कि प्रकृति के लिए भी अत्यधिक चिंतित थे। उनके अनुसार प्रगति और स्वास्थ्य का विपरीत संबन्ध है। प्रकृति का स्वच्छ रहना मानव को बनाये रखने में आवश्यक है। प्रकृति में प्रदूषण, हवा में अन्य विषैली चीज़ों का मिलावट आदि से पूरा संसार नाशवान् हो जाएगा। वर्तमान स्थिति इससे कुछ भिन्न नहीं। "प्रामाणिक वैद्य और डॉक्टर आपको बतायेंगे कि जहाँ रेलगाडी, ट्रामगाडी वगैरा साधन बढ़े हैं, वहाँ लोगों की तन्दुरुस्ती गिरी हुई होती है।"[2]

गाँधी जी प्रकृति के साथ जीवन को जोडने पर महत्व देते थे। जिसमें भोग विलास के लिए कोई स्थान नहीं है। उनके शब्दों में "ऐसा कोई सरल रास्ता कुदरत ने नहीं बनाया है कि जिस चीज़ की हमें इच्छा हो वह तुरन्त मिल जाए।"[3] जितना हमें ज़रूरत है संसाधनों का उतना ही दोहन करना होता है नहीं तो प्रकृति का विनाश ज़्यादा दूरी पर नहीं।

आज दुनिया की सबसे बडी चिंता है प्रदूषण और इसकी वजह से बढता हुआ पृथ्वी का तापमान जिसके कारण ग्लेज़र पिघल रहे हैं। फलस्वरूप

1. महात्मा गाँधी -हिन्द स्वराज - पृ. 76
2. महात्मा गाँधी -हिन्द स्वरज - पृ. 79
3. वही

प्रकृति का सन्तुलन ही खतरे में पड गयी है। भारत की प्राचीन नदियों का अस्तित्व ही खतरे में है। इसके अतिरिक्त इन सदानीरा नदियों में हमने शहरों के प्रदूषित जल का निस्तारण करके इन्हें मलिन कर दिया है। आज से सौ साल पहले गाँधी जी ने हमारी इन नदियों के प्रदूषण की समस्या पर विचार किया था और कहा कि "आज के ज़माने में तो इन नदियों से हम केवल यही कम लेना जानते हैं कि उनमें अपनी गन्दी मोरियां बहावें और उनकी छाती पर अपनी नावें चलावें और इस प्रकार उन्हें और भी गन्दा करें।"[1] गाँधी जी ने प्रकृति को हमेशा अपने नज़दीक से देखा। वे प्रकृति के अधिक दोहन करने के पक्षधर नहीं थे।

1.4.6.6 कला

गाँधी जी के अनुसार कला आत्म मंथन का फल है और उसमें अनन्त सौन्दर्य और जीवन कल्याण की भावना समाई है। गाँधी जी के अनुसार "मैं कला के दो भेद करता हूँ अन्तर और बाह्य। और इनमें से किस पर तुम अधिक ज़ोर देते हो यही सवाल है। मेरे नज़दीक तो बाह्य की कीमत तब तक कुछ नहीं है जब तक अन्तर का विकास नहीं हो। समस्त कला अन्तर के आविर्भाव का विकास ही है। मनुष्य की आत्मा का जितना आविर्भाव बाह्य रूप में होता है उतना उसका मूल्य है।"[2]

गाँधी जी ने प्रकृति के सौन्दर्य के समने मानव निर्मित सभी कलाओं

---

1. महात्मा गाँधी -यंग इंडिया - 23.12.26
2. महात्मा गाँधी - हिन्दी नवजीनव, वर्ष 4, अंक 12, पृ. 89

को तुच्छ माना है। गाँधी जी ने प्रकृति के लिए ही नहीं बल्कि जीवन जन्तुओं के प्रति भी अपना विचार प्रकट किया। वे कहते हैं "जिस कला के पीछे प्राणियों पर जुल्म, उनकी हिंसा, उत्पीड़न आदि हों उसमें बाह्य सौन्दर्य कितना ही हो तो भी वह कला कलि अथवा शैतान का दूसरा नाम है।"[1]

गाँधी जी इस बात को मानते हैं कि जनता को मनोरंजन एवं ज्ञान प्राप्ति के लिए संगीत, कहानी, चित्रकला, नृत्य, नाटक, सिनेमा वगैरह आवश्यक है किन्तु इन कलाओं के ऊपर उन्होंने नीति का नियंत्रण आवश्यक माना है। सर्वोत्कृष्ट कला की कसौटी के बारे में वे कहते हैं "सर्वोत्कृष्ट कला व्यक्ति भोग्य न होगी, सर्वभोग्य होगी और कला जब बाह्य आलंबनों से अधिक से अधिक मुक्त होगी तभी सर्वभोग्य बन सकेगी।"[2] गाँधी जी ने प्रत्येक कला में कल्याणकारी तत्व को अनिवार्य माना है। वे कला को वैभव की सीमा से निकालकर जन साधारण को सुलभ बनाने के कार्य पर बल देते हैं।

1.5 साहित्यिक क्षेत्र में गाँधी चिंतन

1.5.1 साहित्य की परिभाषा

गाँधी जी उत्तम दर्जे के साहित्यकार थे। उन्होंने साहित्य को कथनी से नहीं करनी से स्पष्ट किया अर्थात् उन्होंने अपनी लेखनी से यह बताया कि साहित्य किस प्रकार हो। उन्होंने गुजराती भाषा को सरल बनाकर जन

---

1. किशोरलाल घ. मशरुवाला - गाँधी विचार दोहन, पृ.158-159
2. महात्मा गाँधी - हिन्दी नवजीनव, वर्ष 5, अंक 29, पृ. 229

साधारण की समझ के अनुकूल रूप प्रदान किया। उनकी दृष्टि में सच्चे साहित्य का लक्ष्य समाज को आगे बढाना होता है। साहित्य की शाश्वतता के संबन्ध में वे कहते हैं कि "वही काव्य और वही साहित्य चिरंजीवि होगा जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे और पचा सकेंगे।"[1] वे साहित्य में नवीन प्रयोगों को पक्षपाती थे शर्त इतनी ही थी कि यह साहित्य मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने में सफल होना चाहिए। उनके विचारानुसर साहित्य सुरुचिपूर्ण एवं सुन्दर होना चाहिए। उसकी भाषा सरल और शैली स्पष्ट होनी चाहिए। वे चाहते थे कि भारत के प्रत्येक प्रान्त में अपनी मातृभाषा में संस्कार तथा पूर्ण उत्तम साहित्य का सर्जन हो।

1.5.2 हिन्दी साहित्य में गाँधी चिंतन

प्रत्येक युग के साहित्य का अध्ययन उस युग की विशिष्ट परिस्थितियों के परिपार्श्व में सफल होता है । युग में घटित परिस्थितियाँ और वातावरण ही उस समय के साहित्य का कलेवर निर्धारित करता है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में एक सुनिश्चित जीवन दर्शन और आन्दोलन के रूप में गाँधी चिंतन का आविर्भाव हुआ। यद्यपि पहले के दशक में गाँधी चिंतन राजनीति के क्षेत्र तक ही सीमित रहा किन्तु बाद में इसका प्रसार अन्य क्षेत्रों में भी होने लगा। हिन्दी साहित्य में इस चिंतन का समावेश सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन के विभिन्न सन्दर्भों में किया गया।

गाँधी जी के राजनीति में प्रवेश एक ऐतिहासिक घटना रही जिसके

1. महात्मा गाँधी - हिन्दी नवजीनव, 23-12-24, पृ. 120

फलस्वरूप आधुनिक भारतीय साहित्य में परिवर्तन की लहर उमड पडी। हिन्दी साहित्य में भी इसका प्रभाव पडा। अनेक लेखकों ने कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि क्षेत्रों में गाँधी चिंतन का समावेश किया।

1.5.2.1 हिन्दी कविता में गाँधी चिंतन

भारतीय काव्य में राष्ट्रीय जागृति का जन्म भारतेन्दु युग से ही शुरू हो गया था और कवियों में देश भक्ति की भावना प्रबल वेग से बहने लगी थी। इस प्रबल वेग के केन्द्र में गाँधी और गाँधी विचारधारा थी। प्रेमघन कहते हैं-

"चल चल चरखा तू दिन रात
तेरे चलने की चर्चा सुनि युरप जो अकुलात
ज्यों-ज्यों तू चलता त्यों-त्यों आता स्वराज्य दिन रात।"[1]

गाँधी जी ने अपने विचारों में सत्य और अहिंसा पर विशेष बल दिया। हिन्दी के कवियों ने भी उनके सिद्धान्तों को अपने काव्य में निरूपित किया। गयाप्रसाद शुक्ल सनेही ने सत्य की महत्ता इस प्रकार सिद्ध की है-

"सत्य सृष्टि का सार, सत्य निर्बल का बल है।
सत्य सत्य है, सत्य नित्य है, अचल है अटल है।"[2]

गाँधी जी के लिए अहिंसा सबसे बडा तप था। उनके अनुसार हिंसा किसी भी समस्या का समाधान नहीं है। मानव जाति के कल्याण और प्रगति

---

1. बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन -प्रेमघन सर्वस्व, पृ. 632
2. गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' - राष्ट्रीय झण्डा - 'सत्याग्रह' शीर्षक कविता, पृ. 4

का एकमात्र उपाय अहिंसा है। सियारामशरण गुप्त ने 'उन्मुक्त' में इसी गाँधीवादी विचारधारा के तात्विक दर्शन की अभिव्यक्ति की है-

"हिंसा नल से शान्त नहीं होता हिंसानल
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।"[1]

आत्म बलिदान की प्रेरणा से युक्त भावना का उत्कर्ष माखनलाल चतुर्वेदी की 'एक भारतीय आत्मा' में दिखाई देता है। इन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्र की अन्तरात्मा में प्राण फूँकने का सफल प्रयास किया और प्रसाद के आनन्दवादी प्रतीकों के विपरीत बलि और आत्मार्पण वादी प्रतीक प्रदान किये। इसी प्रकार सुभद्राकुमारी चौहान ने नारीवादी सामाजिक राष्ट्रीयता युक्त काव्य उपलब्ध करवाया। उनकी कविता में असहयोग एवं बलिदान की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है -

"विजयिनी माँ के वीर सुपुत्र पाप से असहयोग ले ठान,
गूँजा डाले स्वराज्य की तान और सब हो जावें बलिदान।"[2]

इसके अतिरिक्त सोहनलाल द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, पंत, निराला, बच्चन, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, शिवमंगल सिंह सुमन, रामनरेश त्रिपाठी, मिलिन्द, नागार्जुन, विनयमोहन शर्मा, हरिऔध, बालमुकुन्द गुप्त, लोचन प्रसाद पाण्डेय, धूमिल आदि कवियों ने भी गाँधी एवं उनकी विचारधाराओं को केन्द्र में रखकर काव्य रचनाऐं कीं।

1. सियारामशरण गुप्त - उन्मुक्त, पृ. 91
2. सुभद्राकुमारी चौहान - मुकुल, पृ. 106

पंत जी ने सत्याग्रह की शक्ति के महत्व के बारे में यों कहे-

"राष्ट्र संगठन का अनुशासन,
प्राण, कार्य क्षमता का दर्पण,
सत्याग्रह का भाव पक्ष ध्रुव
कर्मशक्ति का सात्विक सर्जन।"[1]

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "गाँधी दर्शन हमारा युग दर्शन है और इसके सर्वव्यापी प्रभाव से आधुनिक कवि अछूते नहीं रह सकते हैं।"[2] कविता के क्षेत्र में गाँधी चिंतन का व्यापक रूप से प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। गाँधी विचारधारा के मूल तत्वों, सिद्धान्तों और उपकरणों का स्वरूप निर्दशित करते हुए कवियों ने अपने काव्य को उनसे अनुप्राणित किया है।

1.5.2.2 हिन्दी कहानी में गाँधी चिंतन

हिन्दी कहानी में गाँधी चिंतन प्रेमचन्द युगीन कहानियों में पाया जाता है। इस युग की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक कहानियों में गाँधी विचारधारा के तत्वों-सत्य, अहिंसा, विकेन्द्रीकरण, ट्रस्टिशिप, मद्यपान एवं धूम्रपान का निषेध, सत्याग्रह, हृदय परिवर्तन, राष्ट्रभाषा प्रेम, स्वदेश प्रेम, हरिजनोद्धार, स्त्रियों की उन्नति, खादी प्रचार आदि तत्वों की कुशल अभिव्यक्ति मिलती है।

प्रेमचन्द युगीन कहानियों में सत्य एवं अहिंसा का सटीक निरूपण मिलता है। गाँधी जी ने स्पष्ट कहा था कि विदेशी साम्राज्य के विरुद्ध

1. पंत- मुक्तियज्ञ, पृ. 36
2. डॉ. नगेन्द्र - आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ. 39

होनेवाली लडाई सत्य एवं न्याय की लडाई है। प्रेमचन्द की कहानी 'समरयात्रा' का नायक कहता है -"हम न्याय और सत्य केलिए लड़ रहे हैं। इसलिए न्याय और सत्य के हथियारों से हमें लडना है। हमें ऐसे वीरों की ज़रूरत है जो हिंसा और क्रोध को दिल से निकाल डालें और ईश्वर पर अटल विश्वास रखकर धर्म केलिए सब कुछ झेल सकें।"[1]

इसी प्रकार चतुरसेन शास्त्री की 'प्रंबुद्ध', विश्वभरनाथ कौशिक की 'सत्यबल', जैनेन्द्र कुमार की 'वे तीन', विष्णु प्रभाकर की 'मेरी प्रिय कहानियाँ', उपेन्द्रनाथ अश्क की 'टेबल बैन्ड', वासुदेव आठले की 'मानवता की भेंट', स्वरूप कुमारी बक्षी की 'कोडियों का नाच', अमृत राय की प्राकृत आदि कहानियों में सत्य दर्शन का ही निरूपण किया गया है।

प्रेमचन्द की कहानियों में अनेक ऐसे पात्र हैं जो अहिंसा के उपासक हैं। 'विश्वास' कहानी में आप्टे और 'डामुल का कैदी' में गोपीनाथ अहिंसा के पूजारी हैं। इसी प्रकार 'क्षमा' कहानी में उन्होंने अहिंसा के महत्व को प्रस्तुत किया है। इस कहानी में शेख हसन अपने बेटे के घातक ईसाई दाऊद से कहता है "दाऊद मैंने तुम्हें माफ किया। मैं जानता हूँ; मुसलमानों ने उन पर बडे-बडे अत्याचार किये हैं; उनकी स्वाधीनता हर ली है। लेकिन यह इस्लाम का नहीं मुसलमानों का कुसूर है। विजय-गर्व ने मुसलमानों की मति हर ली है। हमारे पाक नबी ने यह शिक्षा नहीं दी थी, जिस पर आज हम चल रहे हैं। वह स्वयं क्षमा और दया का सर्वोच्च आदर्श है। मैं 'इस्लाम' के नाम को बट्टान लगाऊँगा।"[2]

---

1. प्रेमचन्द - समर यात्रा, पृ. 134
2. प्रेमचन्द - मानसरोवर, भाग -3, पृ. 208

'पंच परमेश्वर' कहानी में प्रेमचन्द ने भारतीय गाँवों को प्रस्तुत किया है। जहाँ अभी आधुनिक सभ्यता का प्रवेश नहीं हुआ है। गाँधी जी की भाँति प्रेमचन्द भी आधुनिक नागरिक जीवन की अपेक्षा प्राचीन भारतीय ग्रामीण जीवन के प्रशंसक एवं समर्थक थे। प्रेमचन्द के अतिरिक्त आचार्य चतुरसेन शास्त्री की 'खूनी', राजा राधिका रमण सिंह की 'गाँधी टोपी', शिवरानी देवी की 'नारी का हृदय' और सियाराम शरण गुप्त की 'मानुषी' आदि कहानियों में अहिंसा तत्व प्राप्त होता है।

सामाजिक सुधार भारतीय कहानियों का मूल स्वर रहा है। प्रेमचन्द ने सुभागी, उन्माद, नैराश्य, लीला आदि में बाल विवाह, गिला, कुसुम, विद्रोही, उद्धार, एक आँच की कसर और दो भाई में दहेज की समस्या को प्रस्तुत किया है। बाल विवाह, विधवा समस्या, दहेज-प्रथा जैसी समस्याओं पर उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'वह मेरी मंगेतर थी', 'एम्बेसेडर', 'उबाल' आदि, विनोद शंकर व्यास ने 'पूर्णिमा', 'मान का प्रश्न'; विष्णु प्रभाकर की 'युगांतर', अमृतलाल नागर की 'हाजी कुल्फी वाला', कमलेश्वर की 'माँस का दरिया', अमृतराय 'भोर से पहले', 'एक सांवली लडकी, 'सती का शाप', रेणु की 'जलवा', 'नित्य लील' आदि उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। जिनमें नारी जीवन से जुडी अनेक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है।

कमलेश्वर की 'दिल्ली में एक मौत', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', महीप सिंह 'पानी और पुल' कहानियाँ राजनैतिक दृष्टि से उल्लेखनीय

हैं। जबकि प्रेमचन्द की 'पूस की रात', 'सवा सेर गेहूँ', 'कफन'; पाण्डेय बेचेन शर्मा 'उग्र' की 'अरुच तथा बदमाश'; भगवतीचरण वर्मा की 'बेकारी का अभिशाप', रंगेय राघव की 'ज्ञान के आखर', जैनेन्द्र की 'एक रात', अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', हदयेश की 'दूकान्दार बच्चे', रामदरश मिश्र की 'सडक' आदि कहानियों में आर्थिक विषमता, शोषण, वर्ग सहयोग, ज़मींदारी प्रथा, निधर्नता आदि समस्याओं का समाधान गांधीवादी तत्वों के माध्यम से सुलझाया गया है।

निष्कर्षतः हम हिन्दी कहानी में गाँधी चिंतन के संपूर्ण तत्वों का निरूपण पाते हैं जिनके माध्यम से कहानी के विभिन्न युगों में गाँधी चिंतन को एक नया स्वर प्राप्त हुआ है।

1.5.2.3 हिन्दी नाटक में गाँधी चिंतन

नाटक साहित्य में गाँधी चिंतन के प्रमुख दो तत्व सत्य एवं अहिंसा का सम्यक निरूपण मिलता है। रघुवीर शरण मित्र ने 'राष्ट्रध्वज', डॉ वृन्दावनलाल वर्मा ने 'नीलकण्ठ', डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने 'सुन्दररस' तथा हरिकृष्ण प्रेमी ने 'शपथ' आदि नाटकों में 'सत्य' तत्व का निरूपण किया है। गाँधी जी एकमात्र सत्य मार्ग को ही मानव जीवन के लिए कल्याणकारी समझते थे। श्री लक्ष्मी नारायण लाल लिखित 'सुन्दर रस' शीर्षक नाटक में सत्य को मुक्ति का एकमात्र साधन बताया है। इसमें भट्टाचार्य नामक पात्र सत्य की अमोध शक्ति का वर्णन करते हुए कहता है - "तुम मुक्त हो अब। जिसमें सत्य कहने का साहस है और

कर्म करने की हिम्मत है, वही तो मुक्त है।"[1]

इसी प्रकार से शंभूदयाल सक्सेना लिखित 'बापू ने कहा था', रघुवीर शरण मित्र लिखित 'राष्ट्रध्वज', हरिकृष्ण प्रेमी लिखित 'शपथ' तथा उदयशंकर भट्ट लिखित 'मुक्तिदूत' आदि नाटकों में अहिंसा तत्व का निरूपण है। शंभूदयाल सक्सेना ने अपनी नाट्य रचना 'बापू ने कहा था' में अहिंसा के महत्व को दर्शाया है। "मुझे पक्का विश्वास है कि बुराई का बदला बुराई से चुकाने से कोई फायदा नहीं होता । भलाई के बदले भलाई से चुकाना ही सच्चा रास्ता है।"[2] गाँधी के विचार में अहिंसात्मक प्रतिरोध ही श्रेयस्कर है। उनका मत था "अहिंसात्मक प्रतिरोध प्रत्येक स्थिति में प्रतिकार का सर्वोत्तम उपाय है।"[3]

जयशंकर प्रसाद युगीन नाटकों में भी गाँधी चिंतन का स्वरूप प्राप्त होता है। प्रसाद के स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि में गाँधी चिंतन के तत्व विद्यमान हैं। प्रसाद जी के साथ साथ चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि प्रभूत नाटककारों का योगदान प्रशंसनीय है। देश भक्ति, अछूतोद्धार, हिन्दू मुस्लिम एकता, नारी स्वातन्त्र्य, सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि प्रवृत्तियाँ इनकी कृतियों में अभिव्यक्त हुई हैं। सेठ गोविन्ददास ने 'राम से गाँधी' नाटक में राम, कृष्ण, सिद्धार्थ, अशोक, ईसा और गाँधी को एक ही परंपरा में उपस्थित कर यह प्रमाणित

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - सुन्दरस, पृ. 90
2. शंभूदयाल सक्सेना - बापू ने कहा था, पृ. 16
3. महात्मा गाँधी - हरिजन सेवक, 14.10.39

किया है कि पौराणिक पात्र अनैतिहासिक नहीं है।

इसी प्रकार उदयशंकर भट्ट कृत 'अंबा', सेठ गोविन्ददास कृत 'कर्ण', 'कर्तव्य', 'दलित कुसुम', 'पाकिस्तान'; गोविन्द बल्लभ पंत कृत 'अगूंर की बेटी' आदि में गाँधी चिंतन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। नाटककारों में मिश्र जी के नाटक 'सन्यासी' में प्रेम की वास्तविकता पर विचार किया गया है, 'राक्षस का मन्दिर' में वेश्या समस्या का समाधान ढूँढा गया है, 'सिन्दूर की होली' में विधवा समस्या को उठाया गया है। 'स्वर्ग की झलक' में अश्क ने नारी समस्या पर ज़ोर दिया है। 'सेवापथ' में सेठ गोविन्ददास ने गाँधी सिद्धान्तों के अनुयायी पात्र दीनानाथ के माध्यम से सेवा के महत्व पर प्रकाश डाला है। नाटककार ने देश की सभी समस्याओं का समाधान एकमात्र गाँधी विचारधारा में ही उपलब्ध किया है।

गाँधी चिंतन की व्यापकता इतना अधिक है कि हिन्दी साहित्य की कोई भी विधा इसके प्रभाव से अछूती नहीं रह सकी। प्रत्येक विधा में गाँधी चिंतन के तत्वों में से किसी न किसी का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। यह अलग बात है कि कुछ रचनाएँ गाँधीजी को और उनके चिंतन को केन्द्र में रखकर लिखी गयी हैं और कुछ उस चिंतन से प्रभावित हैं।

1.6 निष्कर्ष

संक्षेप में कहा जाए तो गाँधी चिंतन वह चिन्तन है जो श्रेष्ठ मानव के निर्माण में सहायक कुंजी बन सकता है, यदि इसको उसके पूर्ण रूप से

जीवन में समाविष्ट किया जाए तो। इसके माध्यम से एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था की स्थापना होगी। गाँधी जी का चिंतन व्यावहारिक धरातल का है क्योंकि उन्होंने व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विभिन्न पहलुओं का गंभीर अध्ययन-चिन्तन-मनन करके इन्हें एक आदर्श रूप देने हेतु अपना चिन्तन जनसाधारण को प्रस्तुत किया। इन्हीं तत्वों से प्रेरणा लेकर आदर्श जीवन व्यतीत करते हुए आदर्श समाज की स्थापना गाँधी चिंतन का परम उद्देश्य है। इसकी महत्ता को स्वीकार कर यदि हर व्यक्ति समष्टि की ओर इन तत्वों को प्रतिपादित करेगा तो जनमानस का उद्धार संभव है।

❖ ❖ ❖

दूसरा अध्याय

हिन्दी उपन्यास में गाँधी

हिन्दी उपन्यास में गाँधी

2.1 उपन्यासः परिभाषा एवं स्वरूप

विश्व के साहित्य में सर्वाधिक लोकप्रचलित, लोकप्रिय एवं बहुचर्चित विधा के नाम से ख्याति प्राप्त उपन्यास में मानव जीवन का सटीक चित्रण एवं मानव संवेदना का समाहार पाया जाता है। अंग्रेज़ी आलोचक राल्फ पाक्स के अनुसार "उपन्यास मानव जीवन का गद्य है और उसमें मानव जीवन को समग्रता से समझने और समझाने का प्रयास किया गया है।"[1] उपन्यास में जीवन की उपासना समायी हुई है। इसके माध्यम से हम जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं।

उपन्यास अपने मूल में यथार्थवादी है। वर्तमान जीवन की समस्त जटिलता, यथार्थ के विविध सूक्ष्म आयाम, रोज़मरी के सामान्य से सामान्य दिखनेवाली महत्वपूर्ण घटनाएँ आदि का जीवंत चित्रण उपन्यास में है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के शब्दों में "उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[2] उनके द्वारा प्रतिपादित इस व्याख्या में 'चित्र' शब्द ध्यान देने योग्य है। उनके अनुसार उपन्यास चित्र है, प्रतिबिंब नहीं। वास्तव में मनुष्य का पूरा प्रतिबिंब उपन्यास के छोटे से फलक में उतारा नहीं जा सकता। उसके लिए जीवन रूपी विस्तृत फलक की आवश्यकता है।

---

1. राल्फ फाक्स - दी नॉवल एण्ड दी पीपिल, पृ. 20
2. प्रेमचन्द - कुछ विचार, पृ. 46

2.2 हिन्दी उपन्यास का विकास और गाँधी जी का आविर्भाव

उपन्यास भारत में ही नहीं वरन् उसके मूल जन्मस्थान यूरोप में भी पुनर्जागरण युग की उपज है। भारत में उपन्यास विधा का चलन उन्नीसवीं शताब्दी से हुआ। बंगला साहित्य से होते हुए उपन्यास ने हिन्दी साहित्य में भी अपना गहरा छाप छोडा। गुलाब राय के शब्दों में "हिन्दी उपन्यास का भारतीय नवजागरण से गहरा संबन्ध है। बंगाल और महाराष्ट्र की तुलना में हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण की प्रक्रिया कुछ बाद में आरंभ हुई, इसलिए हिन्दी में उपन्यास का आरंभ भी, बंगला और मराठी की अपेक्षा, तनिक बाद में हुआ।"[1]

हिन्दी उपन्यास के आरंभिक युग में कुलीन-समृद्ध परिवारों का ही चित्रण हुआ है। मध्यम एवं निम्न वर्गों को इनमें कोई स्थान नहीं मिला। क्योंकि ये उपन्यास कुलीन वर्ग की अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर ही लिखे जाते थे। गोपाल राय लिखते हैं "इस काल के उपन्यासों में जिस समाज का अंकन हुआ है, वह उच्च मध्यवर्गीय समाज है। समाज का निचला वर्ग, यहाँ तक कि निम्न और सामान्य मध्यवर्ग भी, इनमें अनुपस्थित है।"[2] नव जागरण के उन्मेष से इस काल के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का समावेश हुआ। इसी समय अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्तित्व भारतेन्दु का उदय हुआ जिनसे हिन्दी साहित्य में एक नवीन धारा का प्रवाह शुरु हुआ। उन्होंने साहित्य को नये विषय से ओतप्रोत किया और भटकते हुए साहित्यकार को

1. गोपाल राय - हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ. 23
2. वही- पृ. 64

एक नई दिशा की ओर उन्मुख किया। भारतेन्दु द्वारा पथ प्रदर्शित उनके मंडल के अनेक साहित्यकार उपन्यास रचना में प्रवृत्त हुए। जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी उपन्यास का सूत्रपात हुआ और उसकी अनेक धाराएँ प्रवाहित हो उठीं।

हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास को प्रेमचन्द जी के नाम से अभिहित किया गया। उनकी चमत्कारिक लेखनी ने मनोरंजन प्रधान घटनात्मक उपन्यास को सोद्देश्य सामाजिक राष्ट्रीय उपन्यास की ओर मोड दिया। हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास को प्रेमचन्द के आधार पर पूर्व प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्द युग एवं प्रेमचन्दोत्तर युग के नाम से बांटा गया था। आगे चलकर उपन्यास की यात्रा स्वातंत्र्योत्तर से होते हुए समकालीन तक चली जाती है। इन विकास कालों में जैसे जैसे औपन्यासिक प्रवृत्तियों में विकास हुआ यथा ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक तथा आँचलिक प्रवृत्तियों का विकास हुआ, वैसे ही इन प्रवृत्तियों के माध्यम से युग जीवन का समग्र स्वरूप प्रतिछवित हुआ है। इन्हीं प्रवृत्तियों ने तत्कालीन देश में गतिशील सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों का भी समावेश अपने में करके आगे बढ़ा।

बीसवीं शताब्दी तक आते आते भारत में अनेक राजनैतिक विचारधाराओं का उद्‌भव और विकास हुआ है। देश में एक नयी क्रान्ति प्रस्फुटित हुई। प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किए गए आन्दोलनों से जन सामान्य के मन में एक अभूतपूर्व चेतना का जागरण पैदा हुआ। ऐसी विचारधाराओं ने जन साधारण को पूरी तरह से

प्रभावित किया परन्तु जिस विचारधारा ने उनकी अन्तरात्मा को परिपूर्ण रूप से प्रभावित किया, वह था गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित उनके चिंतन। सत्य एवं अहिंसा के मूल तत्वों पर आधारित यह चिंतन एक शाश्वत भावना का प्रसारक है। सत्य, अहिंसा, त्याग, सेवा, मानवता जैसे व्यापक मानवीय मूल्यों ने भारतीयों को एक साथ जोडने का कार्य किया।

गाँधी चिंतन ने न केवल मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया बल्कि उन्हें उनसे संबन्धित नवीन दृष्टि भी प्रदान की है। आगे चलकर इसी चिंतन का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। गाँधी जी ने स्वयं कहा कि "मैंने कोई नया सिद्धान्त नहीं दिया है बल्कि पुराने सिद्धान्तों को पुनः व्याख्यायित करने का प्रयास किया है।"[1]

इसी प्रकार गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित चिंतन ने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में भी अपना प्रभाव दर्शाया। हिन्दी उपन्यास के प्रारंभिक युग में यद्यपि गाँधी जी का आविर्भाव नहीं हुआ था तथापि उनके विचारों, तत्वों का समावेश देखा जा सकता है। इसका मुख्य कारण है गाँधी चिंतन में भारतीय संस्कृति के तत्वों का समावेश। गाँधी जी ने जिन तत्वों को अपनाया था वह भारत की प्राचीन संस्कृति में निहित है।

2.3 पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में गाँधी की तलाश

1875 से लेकर 1910 तक के बीच प्रकाशित कृतियों को पूर्व-

---

1. Nirmal Kumar Bose -"I have presented no new principles, but have tried to re-state old principles"- Selections from Gandhi, p. IX [First Edition, 1948]

प्रेमचन्द युग में सम्मिलित किया जाता है। भारतेन्दु युग की संज्ञा से अभिहित काल में हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव एवं आरंभिक विकास हुआ। तत्कालीन युग के साहित्य में गाँधी चिंतन जैसी कोई विचारधारा नहीं थी किन्तु इसमें निहित शाश्वत भावनाओं से ओतप्रोत सत्य एवं अहिंसा जैसे मूल तत्वों की झलक प्राप्त होती है। यह काल क्रान्तिकारी परिवर्तन का काल रहा। देश में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों ने संपूर्ण देश को प्रभावित किया। इस समय संपूर्ण भारत पर एक छत्र रूप से अंग्रेज़ी सत्ता काबिज़ हो चुकी थी। अंगेज़ों का उद्देश्य समाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सुधार न होकर विशुद्ध रूप से मुनाफाखोरी था। उनकी इसी नीति के कारण देश में सामाजिक-आर्थिक शोषण, धार्मिक अंधविश्वास एवं पाखण्ड का चहूँ ओर बोलबाला था। शिक्षा के प्रचार का एक सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि समाज में अनेक सुधारवादी संस्थाओं का जन्म हुआ एवं इन्होंने समाज सुधार विशेषकर बाल विवाह, अनमेल विवाह के विरुद्ध संघर्ष किया। सती प्रथा का अन्त हुआ एवं विधवा विवाह शुरू हुआ। विभिन्न समाज सुधार-संस्थाओं के संघर्षों एवं प्रयासों ने सामाजिक परिस्थितियों को बेहद प्रभावित किया। ठीक इसी प्रकार इस अवधि का साहित्य भी इन सबसे प्रभावित हुए बिना न रह सका।

2.3.1 सत्य एवं अहिंसा

गाँधी जी ने भारतीय संस्कृति में विद्यमान सत्य एवं अहिंसा को अपनी संपूर्ण चिंतन प्रक्रिया में मूल तत्व के रूप में स्वीकार किया है। महात्मा इन

मौलिक तत्वों को अपने जीवन में लगातार हर विषम परिस्थितियों में भी आत्मसात करते रहें। प्राचीनतम काल से ही उपलब्ध इन तत्वों का साहित्य में प्रवेश निर्विवाद रूप से स्वीकार्य है। यद्यपि इन दोनों तत्वों की संपूर्ण प्रतिष्ठा प्रेमचन्द युगीन उपन्यास सहित्य में हुई तथापि पूर्व प्रेमचन्द युग में भी इन तत्वों का निराकार नहीं किया जा सकता।

पूर्व प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में सत्य की जो अवधारणा हुई है, वह गाँधी चिंतन के एक आधारभूत तत्व में न होकर एक सद्‌गुण के रूप में हुई है। सत्य की प्रतिष्ठा एक धार्मिक एवं नैतिक मूल्य के रूप में हमारे देश में सनातन काल से रही है। गाँधी जी ने भी सत्य के पालन को मानव जीवन का प्राथमिक कर्तव्य निर्दिष्ट किया है -"सत्य की प्रतीति सरल नहीं है। सत्य प्राप्ति का मार्ग खाँडे की धार के समान नुकीला और सकड़ा है, जिस पर चलने वाला सत्य-शोधार्थी जरा-सा चूकते ही प्राणों से हाथ धो सकता है।"[1] गाँधी चिंतन में सत्य का अत्यन्त गरिमामय रूप निर्दिष्ट है। वे सत्य को ईश्वर मानते थे। आलोच्य युग के अनेक उपन्यासकारों ने असत्य पर सत्य की विजय दर्शाकर गाँधी चिंतन के मूल तत्व की पुष्टि की है। गोपाल राम गहमरी लिखित 'मेम की लाश' उपन्यास में गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित इसी सत्य की अभिव्यक्ति दी है - "दुनिया में सत्य के आगे झूठ बहुत दिन तक नहीं चलता। .... जो लोग अपनी चालाकी के आगे ईश्वर को कुछ नहीं समझते, वे लोग जाकर खन्दक में गिरते हैं।"[2]

---

1. रामदीन गुप्त-प्रेमचन्द और गाँधीवाद, पृ. 83
2. डॉ. अरुणा चतुर्वेदी - गाँधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, पृ. 39

गाँधी जी के अनुसार "इतना तो सबको समझ लेना चाहिए कि अहिंसा के बिना सत्य की खोज असंभव है। अहिंसा और सत्य ऐसे घुले मिले हैं, जैसे किसी सिक्के के दोनों पहलू। उसमें किसे उलटा कहें, किसे सीधा? फिर भी अहिंसा को साधन और सत्य को साध्य मानना चाहिए।"[1] इस प्रकार गाँधी चिंतन के अन्तर्गत सत्य एवं अहिंसा के व्यापक अर्थ को मान्यता दी गई है। किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'माधवी-माधव व मदन मोहिनी' में लिखा है- "पाप कभी भी छिपाये से नहीं छिपता। वह कभी न कभी संसार में प्रगट हो ही जाता है - पाप का प्रकट कर देना भी पाप से मुक्त होने का एक प्रायश्चित है।"[2] अतः सत्य गाँधी चिंतन का आधारभूत तत्व है; जो अहिंसा से समन्वित है। इसलिए गाँधी जी इन दोनों को अन्योन्याश्रित मानते थे।

2.3.2 सामाजिकता और गाँधी

तत्कालीन युग को युगान्तकारी काल से अभिहित किया जा सकता है। भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम विफल होने के पश्चात् एक बार पुनः अंग्रेज़ी साम्राज्य का दृढ रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। पूरे देश में परिवर्तन की लहर उमड रही थी। स्त्री के प्रति अवहेलना, दलित उत्पीडन, छुआछूत आदि से ग्रस्त समाज का उद्धार आवश्यक हो गया था। समकालीन उपन्यास में भी उपर्युक्त परिस्थितियों का प्रभाव देखा गया है।

गाँधी जी वर्णाश्रम धर्म के समर्थक थे और अस्पृश्यता निवारण को एक व्रत मानते थे। वे वर्णाश्रम व्यवस्था को रुढ नहीं मानते थे और एक

1. गाँधीजी - गाँधी शिक्षा, भाग - 3, पृ. 24
2. किशोरीलाल गोस्वामी - माधवी-माधव, पृ. 144

वर्गहीन समाज की कल्पना करते थे। इस युग के उपन्यासकारों ने छुआछूत, अस्पृश्यता और ऊँच-नीच की भावना का निर्मूलन करना चाहा। जिसकी स्पष्ट झलक 'अयोध्या सिंह उपध्याय' लिखित 'ठेठ हिन्दी का ठाट' में मिलता है। इस उपन्यास में हेय के माध्यम से लेखक ने कहलाया है कि 'नहीं-नहीं, मान जाओ, हठ न करो, होड़ लेकर क्या करना होगा। अच्छा घर-वर मिलता, तो आप हाड़ ही वाले के यहाँ ब्याह करते। मैं न रोकती पर जब अच्छा घर-वर मिलना पैसा हाथ में न होने से कठिन है, तो मिले हुए जोग घर-वर मिलता, तो आप हाड ही वाले के यहाँ ब्याह करते। मैं न रोकती पर जब अच्छा घर-वर मिलना पैसा हाथ में न होने से कठिन है, तो मिले हुए जोग घर-वर को न छोड़िये। सदशिव मिसिर भी ब्राह्मण ही हैं, सब बातों में हमारे जैसे हैं। हम ऊँचे हैं, वह उतर के हैं, यह सब घमंड की बातें हैं, पढ़े-लिखे और समझ-बूझ वालों को ऐसी बातें नहीं सोहती।"[1] इसी सन्दर्भ में यह कहना उचित होगा कि गाँधी जी के अनुसार अस्पृश्यता की भावना एक रोगावस्था है। जात-पाँत के मामले में झगड़ना, दंभ, गलत होड मानवीय दुर्दशा है। इस युग में अछूतोद्धार के लिए प्रयास किए गए। 'मन्नन द्विवेदी' रचित 'कल्याणी' उपन्यास में "आत्माराम नामक पात्र अछूतों और पिछडे वर्गों की दशा सुधारने के लिए और उन्हें स्वावलंबी बनाने हेतु जहाँ एक ओर भारतीय पतितोद्धारक समिति की स्थापना करता है, वहाँ दूसरी ओर चमारों के लिए एक स्कूल खोलकर उन्हें सिखाना-पढाना भी चाहता है।"[2] इस संबन्ध में गाँधी जी के विचारों को उद्धृत करना असंगत न होगा।

1. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध - ठेठ हिन्दी का ठाट, पृ. 11
2. डॉ. अरुणा चतुर्वेदी - गाँधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, पृ. 45

उनके अनुसार अस्पृश्यता यानी छुआछूत जहाँ-तहाँ धर्म में है धर्म के नाम या बहाने से विघ्न डालती है और धर्म को कलुषित करती रहती है। यदि आत्मा एक ही है, ईश्वर एक ही है, तो अछूत कोई नहीं।

तत्कालीन समाज में अस्पृश्यता का जितना बोलबाला था उतना ही स्त्रियों के प्रति हीन भावना भी थी। गाँधी जी के आविर्भाव से बहुत पहले ही स्त्री उन्नति एवं स्त्री शिक्षा को समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान देने का कार्यक्रम तो चल रहा था परन्तु इस युग में वह उतना कारगार सिद्ध नहीं हो पाया। बेमेल विवाह, बाल विवाह, सती प्रथा, परदा प्रथा जैसे अनेकों कर्मकाण्ड से तत्कालीन समाज गिरा हुआ था। दिन प्रतिदिन उनके ऊपर अत्याचारों का सिलसिला बढ रहा था। पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों में श्रद्धाराम फिल्लोरी ने अपने उपन्यास 'भाग्यवती' में स्त्री उन्नति पर विशेष बल दिया। इसी क्रम में श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरु', टीकाराम तिवारी का 'पुष्पकुमारी', किशोरीलाल गोस्वामी का 'माधवी-माधव', इश्वरीप्रसाद और कल्याण राय की 'वामा शिक्षक' आदि उपन्यास उल्लेखनीय है।

'भाग्यवती' उपन्यास की भूमिका में स्त्री की अवनति का मूल कारण अशिक्षा कहा है। श्रद्धाराम फिल्लोरी ने लिखा है कि "कई स्त्रियाँ विपत-काल में उदास होके अपनी लाज को बिगाड़ लेती, अयोग्य और अनुचित कामों से अपना पेट पालने लग जाती हैं और कई विद्या से हीन होने के कारण सारी आयु चक्की और चरखा घुमाने में समाप्त कर लेती हैं। इस कारण मैंने यह ग्रन्थ सुगम हिन्दी भाषा में लिख के इसका नाम भाग्यवती

रखा।"[1] उपर्युक्त गद्यांश से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अशिक्षित स्त्री न केवल अपने जीवन का उन्नयन नहीं कर पाती बल्कि जीवन भर कोई भी उपलब्धि प्राप्त नहीं कर पाती। इसी प्रकार तत्कालीन युग के उपन्यासकर किशोरीलाल गोस्वामी ने भी 'माधवी माधव' उपन्यास में नारी कल्याण के लिए समाज सुधारकों को ध्यान देने हेतु संकेत दिया है। स्त्रियों का उद्धार ही समाज का उद्धार है। जब तक यह नहीं होगा तब तक समाज सुधार की सारी योजनाएँ निष्फल होंगी। वे लिखते हैं "अपने देश के भाइयों से इस बात केलिए सविनय अनुरोध करता हूँ कि वे सबसे पहले कन्याओं के सुधार का प्रयत्न करें क्योंकि यदि सुकन्या समय पाकर सुगृहिणी होगी तो वहीं एक दिन सुमाता भी होगी और उसका पुत्र सुपुत्र अवश्य ही होगा।"[2] तत्कालीन युग में स्त्री के प्रति इस प्रकार की भावना बहुत कम दिखाई देता है।

इस युग के उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से यह तर्क प्रस्तुत किया कि स्त्री का उद्धार शिक्षा के बिना अधूरा है। गाँधी जी ने भी अपने युग में इसी का समर्थन किया। उनकी मान्यता थी कि स्त्रियों को पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में पुरुष के बराबर का दर्जा मिलना चाहिए। स्त्री-उन्नति के विषय में गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित विचारों का बहुत पहले से ही तत्कालीन उपन्यासकार मेहता लज्जाराम शर्मा ने 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी', श्री मन्नन द्विवेदी ने 'कल्याणी', किशोरीलाल गोस्वामी ने 'माधवी-माधव', कृष्णलाल वर्मा ने 'चंपा' आदि उपन्यासों के माध्यम से स्पष्टीकरण दिया है।

---

1. श्रद्धाराम फिल्लौरी - भाग्यवती, भूमिका, पृ. 5
2. किशोरीलाल गोस्वामी - माधवी-माधव, पृ. 220

भारतीय समाज में किसानों की भागीदारी को अनदेखा नहीं किया जा सकता। किसानों की उन्नति, समाज में उनको प्रथम दर्जा दिलवाना आदि को हमेशा से ही साहित्यकारों ने अपना दायित्व समझा है। गाँधी जी ने भी अपने रचनात्मक सूत्र में किसानों की महत्ता को एक अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया। उनसे पूर्व ही किसानों की उन्नति से संबन्धित बहुत से संकेत प्राप्त होते हैं। जिसमें ब्रजनन्दन सहाय का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने 'अरण्यबाला' उपन्यास में व्यक्त किया है कि- "दूसरी बात यह है कि तुम्हारा देश कृषि प्रधान है, अतएव यथेष्ट धन व्यय कर यहाँ के खेतों को उपजाऊ बनाने का यत्न करो। कृषकों को खेती की सामग्री आधुनिक रीति से तैयार कर दो। जो कृषक तुमसे खेती-बारी केलिए ऋण माँगे, उसे बिना सूद का दे दो।"[1] इस प्रकार इस युग में भी उपन्यासकारों ने किसानों की दुर्दशा, उनकी हीन स्थिति को देखते हुए उनकी उन्नति की ओर अपना समर्थन व्यक्त किया है। जो कि आगे चलकर गाँधी के चिंतन में भी दृष्टिगत हुआ। गाँधी जी ने भारत को एक कृषि प्रधान देश माना है। यहाँ की अस्सी प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और कृषि पर निर्भर रहती है। उन्होंने किसानों को संगठित, जागरूक, चेतना संपन्न बनाने का सन्देश दिया ताकि वे ज़मीन्दारों या पूँजीपतियों के शोषण का शिकार होने से बच सकें।

इतना ही नहीं तत्कालीन युग में हृदय परिवर्तन जो कि गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित रचनात्मक सूत्र में एक महत्वपूर्ण कडी माना जाता है, का भी समावेश पूर्व प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में पाया जाता है। गाँधी जी का यह

1. डॉ. अरुणा चतुर्वेदी - गाँधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, पृ. 66

निश्चित मत था कि -"किसी भी उचित माँग को स्वीकृत करने केलिए किसी भी रूप में हिंसा का मार्ग का अवलंबन नहीं करना चाहिए, क्योंकि हिंसा से प्रतिहिंसा बढती है। इसके विपरीत अहिंसा हृदय परिवर्तन की सर्वोत्तम विधि है।"[1] पंडित बालकृष्ण भट्ट लिखित 'नूतन ब्रह्मचारी' उपन्यास में कहा है कि- "यदि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को क्षमा कर सकता है तो मैं तुम्हें दिल से क्षमा करता हूँ और ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि वह भी तुम्हारे अपराधों को क्षमा करे।"[2] इसी प्रकार लाला श्रीनिवास दास लिखित 'परीक्षा गुरु' में भी हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त का व्यावहारिक निरूपण हुआ है। इस उपन्यास में एक पात्र ब्रजकिशोर के माध्यम से लेखक ने यह कहलाया है कि - "बदला लेने का इससे अच्छा दूसरा रास्ता नहीं है कि वह अपकार करे और उसके बदले आप उपकार करो।"[3] इस सन्दर्भ में गाँधी जी के चिंतन को सापेक्ष में लाना संगत होगा कि बुरे आदमी से प्रेम और उसकी बुराई से घृणा करने का सन्देश सौ प्रतिशत स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार के व्यवहार से अपने विरोधी का भी हृदय परिवर्तन किया जा सकता है।

2.3.3 राजीनीति एवं धर्म

तत्कालीन युग अंग्रेज़ी शासन एवं उनके द्वारा किये गये दुष्कर्मों से पीडित जनता में जागरण का युग था। ब्रिटिशों द्वारा अपनायी गयी विभाजन की राजनीति से त्रस्त जन समूह में जागरण की शीत लहर लाने का प्रयास साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किया। इनके उपन्यासों में

1. गाँधी जी - हरिजन, अंक 25 मार्च, पृ. 64
2. पंडित बालकृष्ण भट्ट - नूतन ब्रह्मचारी, पृ. 66
3. डॉ. अरुणा चतुर्वेदी - गाँधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, पृ. 42

गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित रचनात्मक सूत्र के विभिन्न धार्मिक एवं राजनीतिक तत्वों का व्यवहारिक निरूपण देखा जा सकता है। यद्यपि विभाजन जैसी समस्याएँ बहुत बाद में आयीं फिर भी तत्कालीन युग में भी सांप्रदायिक वैमनस्य का विष फैल रहा था। इस युग के उपन्यासों में राधाकृष्ण दास लिखित 'निस्सहाय हिन्दु' शीर्षक कृति में गोवध की समस्या को चित्रित किया गया है। इस सन्दर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि- "कथ्य की दृष्टि से निस्सहाय हिन्दु में अद्भुत नवीनता है। इसका केन्द्रीय विषय गोवध-निवारण है, पर इसके ब्याज से कथाकार ने सांप्रदायिक सद्भाव का ऐसा मार्मिक चित्रण किया है, जो इस काल केलिए एक दुर्लभ बात थी।"[1] गाँधी जी ने भी सांप्रदायिक एकता को राष्ट्रीय अखंडता का आधारभूत तत्व माना। उन्होंने भारत की कल्पना एक ऐसे पक्षी के रूप में की थी जिसका एक पंख हिन्दू और दूसरा पंख मुसलमान है। पारस्परिक सद्भावना को मान्यता देते हुए गाँधी जी ने एक दूसरे के प्रति नम्र और उदार दृष्टिकोण अपनाने के लिए कहा।

तत्कालीन राजनीति के क्षेत्र में पहले पहल स्वदेशी आन्दोलन की भागीदारी देखी जा सकती है। गाँधी जी के बहुत पहले ही विदेशी कपडों का तथा अन्य विदेशी पदार्थों का बहिष्कार करके स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करना प्रारंभ हो गया था। इसी का वृहत स्तर पर प्रचार परवर्ती युगों में गाँधी जी के योगदान के साथ अत्यधिक प्रभावी ढंग से सामने आया। अंग्रेज़ी सरकार के आर्थिक शोषण की नीति से बचने हेतु गाँधी जी की यह धारणा थी कि-"खादी और चरखे के प्रचार से ही देश की आर्थिक व्यवस्था में

---

1. गोपाल राय - हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ. 44

संतुलन आ सकता है।"[1] पूर्व प्रेमचन्दयुगीन कतिपय उपन्यासकारों ने उस स्वदेशी आन्दोलन की आवश्यकता को समझा जो कि आगे चलकर 20 वीं शताब्दी में गाँधी जी के विचारों के अन्तर्गत स्वदेशी आन्दोलन की संज्ञा से जन समूह के बीच में लाया गया। इस सन्दर्भ में 'परीक्षा गुरु' उपन्यास में लाला श्रीनिवासदास ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि- "जब तक हिन्दुस्तान में और देशों से बढ़कर मनुष्य के लिए वस्त्र और सब तरह की सुख-सामग्री तैयार होती थी, रक्षा के उपाय ठीक-ठीक बन रहे थे, हिन्दुस्तान का वैभव प्रतिदिन बढता जा रहा था परन्तु जब से हिन्दुस्तान का एका टूटा, और देशों में उन्नति हुई। भाप और बिजली आदि कलों द्वारा हिन्दुस्तान की अपेक्षा थोडे खर्च, थोडी मेहनत, थोडे समय में सब काम होने लगा, हिन्दुस्तान की घटती के दिन आ गए। जब तक हिन्दुस्तान इन बातों में और देशों के बराबर उन्नति न करेगा, यह घाटा कभी पूरा न होगा।"[2]

पूर्व प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में परिलक्षित राजनीति ही नहीं बल्कि इसमें प्रतिपादित धार्मिक दृष्टिकोण भी गाँधी चिंतन के आधारभूत धार्मिक दृष्टिकोण से समानता रखता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक आते आते अनेकों सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात हो चुका था। ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि द्वारा एक ओर वैदिक विचारधारा में अटूट विश्वास पैदा किया जा रहा था वहीं दूसरी ओर समाज की कुरीतियों का भी विरोध हो रहा था। इस युग के अधिकांश उपन्यासकारों का दृष्टिकोण धर्म के क्षेत्र में रूढीवादी था। बालकृष्ण भट्ट कृत 'सौ अजान एक सुजान'

1. गाँधी जी - यंग इंडिया, भाग -2, पृ. 979
2. सं. डॉ. श्रीकृष्ण लाल - श्रीनिवास ग्रन्थावली, पृ. 19

शीर्षक उपन्यास में वे लिखते हैं कि- "अधर्म करने का फल अधर्मकारी को वैसा जल्दी नहीं मिलता, जैसा पृथ्वी में बीज बो देने से उसका फल बोनेवाले को थोड़े ही दिन के उपरान्त मिलने लगता है, किन्तु अधर्म का परिपाक धीरे-धीरे पलटा खाकर जड़-पेड़ से अधर्मी का उच्छेद कर देता है।"[1] इसमें धर्म-अधर्म से संबन्धित जो विचार व्यक्त किया गया है वह गाँधी चिंतन के अन्तर्गत स्वीकार्य चिंतन से पर्याप्त साम्य रखता है। गाँधी चिंतन एक अध्यात्मपरक जीवन दर्शन है। गाँधी जी के अनुसार मनुष्य और ईश्वर की सत्ता में कोई तात्विक विरोध नहीं है। इसका कारण उन्होंने यह व्यक्त किया है कि मनुष्य और समस्त जीवधारियों में आत्मतत्व ही प्रधान है। गाँधी जी के शब्दों में - "मैं अद्वैत में विश्वास रखता हूँ। मैं मनुष्य और इसीलिए सभी जीवधारियों की परम एकता में विश्वास रखता हूँ।"[2] अतः गाँधी जी "संसार की समस्त शक्तियों में आत्मा की शक्ति को सबसे बड़ा मानते थे।"[3] इसके साथ ही आत्मा की उन्नति के लिए नैतिकता का आलंबन सर्वथा आवश्यक होता है। इसी नैतिकता से एक सभ्य एवं सुन्दर समाज का गठन सुनिश्चित हो सकता है। नूतन ब्रह्मचारी में भट्ट जी लिखते हैं - "बेटा, जो अपने साथ बुरा करे, उसके साथ भी भलाई करना वरन् दुर्जन और दुष्ट मनुष्य, जिनका स्वभाव ही दूसरे की बुराई और हानि करने का है, सदा उनके साथ शुद्ध भलाई का बर्ताव करे और उनकी बुराई को अपनी भलाई से दबाकर उन्हें लज्जित कर उनका मन अपने वश में कर ले।"[4] इस सन्दर्भ को गाँधी जी के नैतिक तत्व के साथ जोडा जा सकता है।

---

1. बालकृष्ण भट्ट - सौ अजान एक सुजान, पृ. 86
2. गाँधी जी - यंग इण्डिया, भाग - 2, पृ. 421
3. गाँधी जी - हरिजन, अंक 22-8-1937
4. बालकृष्ण भट्ट - नूतन ब्रह्मचारी, पृ. 32-33

2.3.4 आर्थिक तत्व

ब्रिटिश साम्राज्य ने औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादन बढाने के लिए अपने उपनिवेशों का सहारा लिया और इनके प्राकृतिक एवं आर्थिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया। भारत जैसे बड़े उपनिवेश ब्रिटिश साम्राज्य की इस शोषक नीति का अधिक शिकार बने। अंग्रेज़ यहाँ से कच्चा माल लेकर इंगलैंड भेजते और वहाँ से उत्पादन करके भारतीयों को महंगे दामों पर बेचते थे। इस कारण मुद्रा का प्रवाह एक दिशा में अर्थात् इंगलैंड की ओर हो गया। इसके फलस्वरूप कमज़ोर प्रौद्योगिकी और ढांचागत व्यवस्था तथा क्षीण वित्तीय शक्ति के चलते यहाँ के उद्योग धंधे लगातार मरणासन्न होते चले गये। मज़दूर और किसान अंग्रेज़ी सरकार की शोषण नीति के कारण गरीबी के गर्त में धँसते चले गये। भारत का कुटीर उद्योग बर्बाद हो गया। अशिक्षा, धार्मिक रूढियों, जातिगत भेदभाव, गरीबी व बेरोज़गारी का शासन चहूँ ओर व्याप्त हो गया।

गाँधी जी ने जिस आर्थिक समानता के लक्ष्य का निर्धारण किया था वह ग्रामोद्योग, खादी प्रचार आदि के माध्यम से संभव है जिन्हें हम पूर्व प्रेमचन्द युग के अधिकांश उपन्यासों में देखते हैं। तत्कालीन समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता से बचने के लिए ग्रामोद्योगों एवं कुटीर उद्योगों के विकास पर विशेष रूप से बल दिया गया। प्रस्तुत युग के उपन्यासकार ब्रजनन्दन सहाय ने अपने उपन्यास 'अरण्यबाला' में देश में राष्ट्रीय स्तर पर लघु उद्योगों एवं ग्रामोद्योगों की आवश्यकता पर बल दिया है। वे लिखते हैं - "कल-काँटे का जहाँ-तहाँ कारखाना खोलो। तुम्हें कपड़ा, लोहा, चमड़ा

आदि सब पदार्थों का कारखाना खोलना होगा। ऐसा उपाय करना होगा कि अपने नित्य के व्यवहार में आवश्यक पदार्थों के लिए यहाँ के रहनेवालों के दूसरों का मुँह न जोहना पड़े।"[1] गाँधी जी ने भी आगे चलकर इसी बात का समर्थन किया। उनकी मान्यता थी कि "यदि हम छोटे पैमाने पर चलनेवाले उद्योगों की मदद करते हैं, तो हम राष्ट्रीय संपत्ति में वृद्धि करते हैं, इस विषय में मेरे मन में तनिक भी शंका नहीं है। इन गृह-उद्योगों को प्रोत्साहन और संजीवन देने में ही सच्चा स्वदेशीपन है। इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है।"[2] इस प्रकार देश को स्वावलंबी बनाने के साथ जनमानस को अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुओं की प्राप्ति संभव होगी।

2.3.5 सांस्कृतिक तत्व

यह युग सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का युग था। समाज में फैली अनेकों बुराईयों को दूर करके अनेकों समाज सुधारकों ने सांस्कृतिक जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अनेकों आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मतों, संप्रदायों एवं मिशनों का आविर्भाव हुआ जिनके फलस्वरूप समाज में नव-चेतना का उदय हुआ। इसके साथ ही अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार ने इस चेतना को और अधिक गति प्रदान की।

गाँधी चिंतन के अन्तर्गत लोक सेवा और लोक-कल्याण की भावना को विशेष रूप से महत्व दिया गया है। आलोच्य युग में एक बड़ी संख्या में ऐसे उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, जिनका उद्देश्य मनोरंजन मात्र था। किन्तु कुछ

---

1. डॉ. अरुणा चतुर्वेदी - गाँधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, पृ. 48
2. डॉ. हरिकृष्ण देवसरे - गाँधी विचार सार, पृ. 29, सस्ता साहित्य मंडल

उपन्यासकारों ने भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्वों यथा परोपकार, सेवा भावना, शिक्षा का महत्व, भाषा-मातृभाषा प्रेम आदि पर भी रचनाओं का सृजन किया है। जिनमें भारतीय संस्कृति का तत्व भी देखा जा सकता है। आलोच्य युगीन उपन्यासों में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लिखित 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' शीर्षक रचना में सेवा भावना के आदर्श रूप का निरूपण हुआ है। इस उपन्यास में देवनन्दन के रूप में एक समाज सेवी चरित्र की सृष्टि की गयी है - "देवनन्दन कब तक जीते रहे और किस किस ढंग से उन्होंने देश की बुरी चालों को दूर करने केलिये जतन किया, कैसे-कैसे खोटी रीत छुड़ा कर अपने देश-भाइयों का भला करना चाहा, इन सब बातों को यहाँ उठाने का काम नहीं है। पर जब तक वह जीते रहे, उनका यही काम था, कुछ दिनों पीछे रामनाथ भी उनका साथी हो गया था, बहुत दिन तक लोगों ने देवनन्दन को दूसरों की भलाई केलिए घूमते देखा था। पर पीछे उनको भी धरती छोड़नी पड़ी। जिस दिन उन्होंने धरती छोड़ी, उस दिन चारों ओर से लोगों से यह बात सुन पडी थी, 'क्या फिर कोई देवनन्दन जैसा माई का लाल न जनमेगा?"[1] गाँधी जी भी यही मानते थे कि पावन शरीर सेवा के लिए ही बनाया गया भोग के लिए बिल्कुल नहीं। त्याग ही सुखी जीवन का रहस्य है। भारतीय संस्कृति में भी इसी की पुष्टि प्राप्त होती है। गाँधी ने लिखा - "त्याग ही जीवन है। भोग मृत्यु है। इसलिए हरएक का हक है और उसकी इच्छा होनी चाहिए कि वह निष्काम भाव से सेवा करते हुए सवा सौ वर्ष जिये। ऐसा जीवन पूरी तरह और एकमात्र सेवा केलिए ही समर्पित होना चाहिए।"[2]

---

1. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध - ठेठ हिन्दी का ठाठ, पृ. 77
2. गाँधी जी - हरिजन सेवा, अंक 24, फरवरी सन् 1946

आलोच्य युग में भी पाश्चात्य संस्कृति के खिलाफ, उसका भारतीय संस्कृति पर नकारात्मक प्रभाव पडने के ऊपर बहुत से आरोप लगाये जा रहे थे। भारतीय जनमानस ने तत्कालीन समय में अपनी संस्कृति एवं सभ्यता को बचाके रखने का भरपूर प्रयास किया। गाँधी जी ने भी आगे चलकर पश्चिमी सभ्यता के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठायी। उन्होंने प्राचीन भारतीय आदर्शों के अनुगमन पर बल दिया। पाश्चात्य सभ्यता को नुक्सान देह कहकर पुराने सनातन धर्मी व्यवस्था में लौटने का आह्वान दिया। उन्होंने बुनियादी शिक्षा को जीवन में लागू करने तथा इसकी प्राप्ति के लिए मातृभाषा को ज़रिया बनाने की बात पर जोर दिया। इस दृष्टि से आलोच्य युग में देवकीनन्दन खत्री का नाम उल्लेखनीय है। 'चन्द्रकान्ता' एवं 'चन्द्रकान्ता सन्तति' उपन्यासों के पारायण करने हेतु असंख्य हिन्दी भाषा-भाषियों ने हिन्दी सीखी। खत्री जी ने अपने 'चन्द्रकान्ता-संतति' उपन्यास के चौबीसवें भाग में यह लिखा है कि मातृभाषा का प्रचार तभी हो सकता है, जब वह सरल और बोध गम्य हो। वे लिखते हैं - "यदि बाबू हरिश्चन्द्र अपनी भाषा को थोड़ा सरल कर लेते तो हमारे भाइयों को अपने समाज पर कलंक लगाने की आवश्यकता न पड़ती और स्वाभाविक शब्दों के मेल से हिन्दी की पैसिंजर भी मेल बन जाती। परन्तु साधारण विषयों की भाषा केलिए भी कोष की खोज करनी पड़े तो निःसन्देह दोष की बात है। मेरी हिन्दी किस श्रेणी की हिन्दी है इसका निर्धारण मैं नहीं करता, परन्तु मैं यह जानता हूँ कि इसको पढने केलिए कोश की तलाश नहीं करनी पड़ेगी। यह बात बहुत से सज्जनों

पर प्रगट है कि 'चन्द्रकान्ता' पढने केलिए बहुत पुरुष नागरी की वर्णमाला सीखते हैं और जिनको कभी हिन्दी सीखना न था, उन लोगों ने भी इसके लिए हिन्दी सीखी।"[1] इसकी पुष्टि तब होती है जब "महात्मा गाँधी ने जब 'हिन्दुस्तानी' को राष्ट्रभाषा बनाने का आंदोलन चलाया तो उन्होंने चन्द्रकान्ता की भाषा को आदर्श माना था।"[2] इस प्रकार यह बात साबित हो जाती है कि सांस्कृतिक धरोहर को बनाये रखने की कोशिश तत्कालीन युग के साहित्यकारों ने भी की है। गाँधी जी ने भी परवर्ती युग में राष्ट्रभाषा के महत्व को समझाया और कहा कि यदि कोई देश स्वतंत्र होने के पश्चात भी विदेशी भाषा को अपने राष्ट्र की भाषा के पद पर प्रतिष्ठित रखता है तो प्रकारान्तर से वह परतंत्र ही बना रहता है। इस प्रकार पूर्व प्रेमचन्द युग सच्चे अर्थों में सांस्कृतिक दृष्टि से सुधारवादी युग रहा। परिवर्तन की शुरुआत को इस युग से रेखांकित किया जा सकता है।

2.4 प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में गाँधी चिंतन

प्रेमचन्द युग ऐतिहासिक रूप से प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध, सामाजिक रूप से सुधारवादी नवीन चेतना, राजनैतिक रूप से कॉंग्रेस के नरम दल और गरम दल में बंटवारे और पुनःएकता, आर्थिक रूप से अव्यवस्था और असंतोष तथा सांस्कृतिक रूप से विशेष परिवर्तनशीलता का युग था। इस युग में समाज अलग अलग आधार पर शिक्षित-अशिक्षित, उच्च-निम्न, शोषक-शोषित, श्रमिक और पूंजीपति में विभक्त हो चुका था। मध्यम वर्ग

1. देवकीनन्दन खत्री - चन्द्रकान्ता-सन्तति, पृ. 82-83
2. ज्ञानचन्द जैन - प्रेमचन्द पूर्व के हिन्दी उपन्यास, पृ. 158

सबसे अधिक शिक्षित, जागरूक, प्रबुद्ध एवं चेतना संपन्न था। इस वर्ग की महिलाएँ भी अपनी स्वतंत्रता और समानता के लिए संघर्षरत थीं। सती प्रथा समाप्त हो चुकी थी, परदे की प्रथा समाप्त होने लगी थी और विधवा विवाह का समर्थन किया जा रहा था। गाँधी जी के अथक प्रयास के फलस्वरूप समाज की दलित एवं अस्पृश्य मानी जानेवाली जाति को समस्त सुविधाएँ एवं अधिकार दिलाने का महान प्रयास किया गया। शिक्षा के व्यापक प्रचार से भारतीय जन में राजनैतिक चेतना का विकास हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात ब्रिटेन की साम्राज्यवादी सरकार के सामने काँग्रेस और लीग ने एक सुधारवादी योजना प्रस्तुत की परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इसे अस्वीकार कर दिया। अंग्रेज़ी सरकार की इस वादा खिलाफी से व्यापक असंतोष का प्रचार हुआ। 1919 में जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड हुआ और पंजाब में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। सरकार की इस दमन नीति के विरोध में गाँधी जी ने असहयोग और स्वदेशी आन्दोलन चलाये। सरकारी नौकरियों का बहिष्कार किया गया, विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गई और किसानों ने सरकार को लगान देना बन्द कर दिया। जिसके फलस्वरूप अंग्रेज़ी सरकार ने इन आन्दोलनों को दबाने के लिए कड़ी दमन नीति अपनाई। आम जनता पर अनेक प्रतिबंध लगाये गये और सभी प्रमुख नेताओं को राजद्रोह में जेल भेज दिया गया। 1920 से 1930 के बीच देश के विद्यार्थी, कृषक और श्रमिक वर्गों ने राष्ट्रीय चेतना को आगे बढाया। 6 अप्रैल 1930 को गाँधी जी ने नमक कानून तोड़ा। 1934 के आसपास सविनय अवज्ञा आन्दोलन समाप्त

हो गया। गाँधी जी ने लंदन में हुए तीनों गोल मेज़ सम्मेलनों में कॉग्रेस की ओर से भाग लिया। भारतीय राजनीति में हिंसावादी और अहिंसावादी दोनों विचारधाराओं का प्रभाव था, परन्तु प्रधानता गाँधी जी द्वारा संचालित अहिंसावादी राजनीति की रही।

बीसवीं शताब्दी में हुए दो महायुद्धों के फलस्वरूप भारतीय अर्थ व्यवस्था की कमर टूट चुकी थी। औद्योगिक विकास और कृषि विकास पूर्ण रूप से बाधित था। किसान ज़मीन्दारों के लगान और साहूकारों के कर्ज़ से टूटा हुआ था। उद्योगों की बिगडती हालत से मज़दूर भी त्रस्त थे। महात्मा गाँधी ने पूँजीवाद के अभिशाप से मुक्ति के लिए ग्रामोद्योग विकास का सन्देश दिया। उन्होंने खादी प्रचार और चरखा आन्दोलन पर विशेष बल दिया। इसी के समानान्तर स्वदेशी आन्दोलन और विदेशी बहिष्कार का आन्दोलन चलाया गया। नवीन आर्थिक गतिविधियों एवं मशीनी उद्योगों के फलस्वरूप मध्यम वर्ग की स्थिति में कमोबेश सुधार हुआ। मध्यम वर्ग ही नवीन भारतीय संस्कृति का वाहक बना। यह नवीन संस्कृति भौतिकवाद एवं आध्यात्मिकवाद का समन्वित रूप थी। अर्थात् इसमें पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति के विशिष्ट सूत्रों एवं प्रमुख तत्वों का समावेश था। महात्मा गाँधी के आगमन ने समाज, संस्कृति एवं साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। साहित्य की उपन्यास विधा भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सकी। इस युग के विभिन्न उपन्यासों में गाँधी चिंतन के तत्व यत्र तत्र सर्वत्र दिखाई पडते हैं। प्रेमचन्द इस नवीन अवधारणा एवं चेतना के अग्रदूत बनकर उपन्यास संसार में आये।

2.4.1 गाँधी चिंतन के मूल तत्व

2.4.1.1 सत्य

प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास साहित्य में गाँधी चिंतन के मूल तत्वों यथा-सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह का समुचित रूप से समावेश हुआ है। संसार के अणु-अणु में भिन्न भिन्न रूपों में व्याप्त उस सत्य को गाँधी जी ने विश्व के मूल स्त्रोत के नाम से अभिहित किया। उन्होंने 'सत्य' को एक आवश्यक सद्‌गुण के रूप में देखा। उनके अनुसार "हमारी सारी प्रवृत्तियों का केन्द्र सत्य होना चाहिए। सत्य हमारे जीवन का प्राण होना चाहिये।.... सत्य के बिना जीवन में किसी भी सिद्धान्त या नियम का पालन असंभव है।"[1] इसी सत्य की प्रतिष्ठा प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों ने अपने-अपने उपन्यासों में किया है। वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने उपन्यास 'भुवन-विक्रम' में सत्य पर अखंड आस्था व्यक्त की है। इस उपन्यास का एक पात्र एक स्थान पर कहता है- "सत्ता से सत्य बड़ा होता है। न भूलना कि ऋत और सत्य के सहारे ही मनुष्य स्वर्ग को पाता है। वेद और वेदांग सद्‌गुण-शून्य मनुष्य का वैसे ही त्याग कर देते हैं, जैसे चिड़ियों के बच्चे पंख हो जाने पर नीड़ छोड़कर उड़ जाते हैं।"[2] इसी प्रकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने 'गामती के तट पर' शीर्षक उपन्यास में लिखा कि - "कोई भी स्वस्थ जीवन संयम और साधन के बिना कदापि संभव नहीं। विज्ञान की सबसे बड़ी देन यह है कि हम अधिक-से-अधिक जिएँ, फिर भी स्वस्थ रहें और जीवन यदि सत्पथ पर, मन सन्मार्ग पर और हृदय संयम पर स्थिर, दृढ़ किंवा अटल बना रहे, तो फिर हमें और कुछ

---

1. गाँधी जी - सर्वोदय, पृ. 9
2. वृन्दावनलाल वर्मा - भुवन विक्रम, पृ. 98

न चाहिए। किन्तु यदि हमारा मन, वचन और कर्म कुमार्ग, लिप्सा और भोग पर है, तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखकर भी हम वास्तविक जीवन-साफल्य की ओर कदापि अग्रसर नहीं हो सकते। बापू ने कहा था-सत्य स्वयं एक शक्ति है। वह अपने आप में ही सर्वशक्तिमान है और जब केवल विवाद और तर्क के लिए असत्य का पक्ष लेकर हम उसकी पुष्टि का प्रयत्न करते हैं, तब यह भूल जाते हैं कि सत्य का अपमान सर्वशक्तिमान भगवान की प्रभुसत्ता का अपमान है।"[1] गाँधी जी ने सत्य की अनन्य महिमा को ईश्वर के प्रतिरूप स्वीकारा था। उनके लिए "सत्य ईश्वर का सही नाम है।"[2]

2.4.1.2 अहिंसा

इस युग के उपन्यासों में सत्य की तरह अहिंसा की व्यावहारिक उपयोगिता का भी दर्शन होता है। गाँधी जी किसी भी प्रकार की हिंसा के पक्षधर नहीं थे। वे हमेशा अन्याय का विरोध अहिंसा से करने के पक्ष में रहे ना कि हिंसा से। 'रंगभूमि' उपन्यास में प्रेमचन्द ने भी इसी का समर्थन किया। उपन्यास के नायक सूरदास के प्रति अनेक प्रकार के अन्याय एवं अत्याचार होते हैं किन्तु वह उन्हें धैर्यपूर्वक स्वीकार करता है और अहिंसात्मक तरीकों से उनका शांतिपूर्ण विरोध करता है। अपने सहयोगियों को हिंसा से विमुख होने की प्रेरणा देते हुए वे कहते हैं कि- "तुम लोग यह ऊधम मचाकर मुझे क्यों कलंक लगा रहे हो? आग लगाने से मेरे दिल की आग न बुझेगी, लहु बहाने से मेरा चित्त शान्त न होगा। आप लोगों की दुआ से यह आग और

---

1. भगवतीप्रसाद वाजपेयी - गोमती के तट पर, पृ. 183
2. गाँधी जी - मंगल प्रभात - 1945-पृ. 2-3

जलन मिटेगी। परमात्मा से कहिए, मेरा दुख मिटाएँ। भगवान से विनती कीजिए, मेरा संकट हरे। जिन्होंने मुझ पर जुलुस किया है, उनके दिल में दया-धरम जागे, बस, मैं आप लोगों से और कुछ नहीं चाहता।"[1] गाँधी जी अहिंसा के पुजारी थे। उन्होंने यह भी कहा कि सत्य साध्य है और अहिंसा साधन। "जब अहिंसा को हम जीवन का सिद्धान्त मान लेते हैं, तो वह हमारे सारे जीवन में व्याप्त हो जानी चाहिये।"[2] गाँधी जी को कट्टर एवं दृढ अहिंसावादी के रूप में देखा जा सकता है। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन अहिंसात्मक मार्ग पर अग्रसर होकर ही प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया।

इसी युग में चतुरसेन शास्त्री द्वारा रचित 'आत्मदाह' उपन्यास भी अहिंसा एवं सहानुभूति के माध्यम से देश में एक नव-चेतना के जागरण का दृष्टान्त लेकर सामने आता है। प्रस्तुत उपन्यास में यह कहा गया है कि देश में नव चेतना का जागरण क्रान्तिवाद अथवा आतंकवाद से नहीं बल्कि अहिंसा के पथ का अवलंबन करके शांति एवं सहानुभूति के द्वारा होना चाहिए। उक्त उपन्यास का एक पात्र कहता है - "किन्तु आतंकवाद द्वारा नहीं, इसका श्रेय महात्मा गाँधी को है। जो राजनीति भारत के चुने हुए उच्च कोटि के वकीलों की जंबांदराजी का विषय था, आज वह घर-घर किसानों की चर्चा का विषय बन गई। यह महात्मा गाँधी का प्रताप है। महात्मा ने देश को जगाया है - देश अपने दर्द से वाकिफ हुआ है। उस दर्द को दूर करने में उसे समय लगेगा।"[3] इस प्रकार यह व्यक्त हो जाता है कि प्रेमचन्द युग के

---

1. प्रेमचन्द - रंगभूमि, पृ. 342 (भाग -2)
2. महात्मा गाँधी - हरिजन, 5-9-36
3. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - आत्मदाह, पृ. 161

उपन्यासकारों ने गाँधी जी की महत्ता को उसके सही अर्थों में पहचानकार उनके द्वारा प्रतिपादित तत्वों को पूर्ण रूप से स्वीकारा है। उसमें अपनी अनन्य निष्ठ व्यक्त की गई है।

2.4.1.3 सत्याग्रह

गाँधी चिंतन में सत्याग्रह का स्थान एक विशेष सिद्धान्त के रूप में परिलक्षित है। गाँधी जी के अनुसार "सत्याग्रह में विरोधी को हानि पहुँचाने की ज़रा भी कल्पना नहीं है। सत्याग्रह का नियम यह है कि स्वयं कष्ट उठाकर विरोधी पर विजय प्राप्त की जाय।"[1] गाँधी चिंतन में यह एक महत्वपूर्ण सार्थक प्रक्रिया के रूप में स्वीकृत है। प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' में पात्र सूरदास का यह विश्वास भी गाँधी जी के उसी मत पर आधारित है, जिसके अनुसार- "यदि विरोधी उसे बीस बार धोखा देते हैं, तो भी सत्याग्रही इक्कीसवें बार उसका विश्वास करने को तैयार रहता है, क्योंकि मनुष्य-स्वभाव में श्रद्धा उसके सिद्धान्त का सार है।"[2] इसीलिए जब उसका घर जला दिया जाता है, तब मिठुआ की जिज्ञासा का वह एक सत्याग्रही के रूप में ही शमन करता है-

"मिठुआ ने पूछा - दादा, अब हम रहेंगे कहाँ?

सूरदास - दूसरा घर बनायेंगे

मिठुआ - और जो कोई फिर आग लगा दे?

सूरदास - तो फिर बनायेंगे।

1. साबरमती - 13 से 15 जनवरी, 1928 को साबरमती में हुए आन्तर - राष्ट्रीय फेलोशिप संघ के सम्मेलन की रिपोर्ट से, पृ. 179
2. डॉ. गोपीनाथ धावन - सर्वोदय तत्व दर्शन, पृ. 139

मिठुआ - और फिर लगा दे?

सूरदास - तो हम फिर बनायेंगे।

मिठुआ - और कोई हज़ार बार लगा दे?

सूरदास - तो हम हज़ार बार बनायेंगे।"[1]

इस प्रकार यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सत्याग्रह अन्याय और शोषण के विरोध में एक शक्तिशाली अस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। रंगभूमि में सूरदास की विजय उसकी विजय न होकर सत्याग्रह की ही विजय है।

2.4.2 गाँधी चिन्तन संबन्धी सामाजिक तत्व

2.4.2.1 हरिजनोद्धार एवं अस्पृश्यता निवारण

गाँधी जी ने अछूतोद्धार और हरिजन कल्याण के लिए अपना अथाह प्रयास किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह व्यक्त किया कि हमें -"अछूतों के साथ भाईचारा रखना चाहिये, प्रेम और सेवा की भावना से उनके साथ संबंध स्थापित करना चाहिये, ऐसे कार्यों से अपने को पवित्र हुआ मानना चाहिये, उनके कष्ट दूर करने चाहिये; उन्हें युगों की दासता से उत्पन्न हुई जहालत और दूसरी बुराईयों पर विजय प्राप्त करने में धीरजपूर्वक मदद देनी चाहिये और दूसरे हिन्दुओं को वैसा ही करने की प्रेरणा देनी चाहिये।"[2] गाँधी जी के इसी सोच को लेकर प्रेमचन्द के उपन्यास कर्मभूमि में दृष्टान्त प्राप्त होता है-

1. प्रेमचन्द - रंगभूमि, पृ. 304
2. महात्मा गाँधी - मंगल प्रभात, 1945, पृ. 32

"अमर के सद्प्रयत्नों के फलस्वरूप चमारों के जीवन में एक नवीन उत्साह और उमंग का उदय होता है। वे शराब और मुर्दा मांस का प्रयोग छोड़ देते हैं। शुभ कार्य का आरंभ दूसरों केलिए भी उत्साहप्रद एवं प्रेरणाप्रद हुआ करता है। अतः आसपास के गाँवों के चमार ही नहीं, उच्च वर्ग के लोग भी उसका अनुसरण करते हैं। शिक्षा के प्रति भी उनकी सहज रुचि जाग्रत हो जाती है। अमर की पाठशाला में अब बच्चे ही नहीं, युवक और वृद्ध भी पढ़ने आते हैं। उसके सदुद्योग से छुआछूत का लोप हो जाता है।"[1]

गोविन्दवल्लभ पंत के उपन्यास 'अनुरागिनी' में भी अस्पृश्यता की भावना के निर्मूलन का समर्थन किया गया है। इस उपन्यास में 'वसन्त' नामक पात्र अस्पृश्यता की भावना को एक सामाजिक पाप मानता है। वसन्त कहता है कि - "कोई भी मनुष्य नीच नहीं है। किसी को छूत मानना घोर सामाजिक पाप है। सब मनुष्य बराबर हैं।"[2] गाँधी जी के अनुसार अस्पृश्यता निवारण का अर्थ सारे संसार के लिए प्रेम और उसकी सेवा है। वे कहते हैं - "अस्पृश्यता निवारण का अर्थ है मनुष्य-मनुष्य के बीच की और भिन्न श्रेणी के प्राणियों के बीच की दीवारें तोड़ डालना। हम देखते हैं कि संसार में सर्वत्र ऐसी दीवारें खड़ी कर दी गई हैं।"[3] इसी प्रकार पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपने उपन्यास 'मनुष्यानन्द' में अछूत समझकर किसी व्यक्ति से घृणा करने के बदले जाति-पाँति का भेदभाव ईश्वर का नहीं, बल्कि मनुष्य का बनाया हुआ है, का समर्थन करता है-"बोल तुझे किसने नहीं आने दिया? आदमी

1. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ. 173
2. डॉ. अरुणा चतुर्वेदी - गाँधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, पृ. 103
3. गाँधी जी - सर्वोदय - संपादक-भारतन् कुमारप्पा, पृ. 31

के चोले में यहाँ ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसने तुझे इस तरह से अपमानित कर इतना सताया? बता तो, मैं एक बार उसकी शक्ल देखूँ। नहीं, डर मत। संकोच भी न कर। ज़रूर बता, मैं देखना चाहता हूँ उस व्यक्ति को, जो अछूत या भंगी समझकर तुझसे घृणा करता है। तुझे भी सबकी तरह पंचतत्व का पुतला नहीं मानता? मुझमें भी उस परम प्रकाश की एक रेखा नहीं देखता? तू चुप है! तू नहीं बतायेगा। तू उनसे अधिक साधु या महापुरुष या ऊँचा है, जिन्होंने तुझे इस अखाड़े में नहीं घुसने दिया था।"[1] 'गोदान' उपन्यास में भी अस्पृश्यता निवारण को दर्शाया गया है। ब्राह्मण पुत्र मातादीन चमारिन सिलिया को अपनाता है। अन्त में मातादीन का हृदय परिवर्तन हो जाता है। "मातादीन... सिलिया की झोपड़ी के द्वार पर खड़ा हो गया और बोला-यही हमारा घर है। सिलिया ने अविश्वास, क्षमा, व्यंग और दुःख-भरे स्वर में कहा-यह तो सिलिया चमारिन का घर है। मातादीन ने द्वार की टाटी खोलते हुए कहा यह मेरी देवी का मन्दिर है।"[2]

2.4.2.2 वर्ण व्यवस्था

गाँधी चिंतन एक उदात्तवादी विचारधारा है। गाँधी जी का यह निश्चित मन्तव्य था कि वर्ण व्यवस्था का मूल आधार जन्म न होकर कर्म होना चाहिए। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'अप्सरा' उपन्यास में कनक नामक पात्र हिन्दू समाज में मान्य वर्ण व्यवस्था के उस रूढ़ रूप का विरोध करती है- "कनक को हिन्दू-समाज से बड़ी घृणा हुई, यह सोचकर कि क्या

1. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'-मनुष्यानन्द, पृ. 32
2. प्रेमचन्द - गोदान, पृ. 297

वह मनुष्य नहीं है। अब तक मनुष्य कहलानेवाले समाज के बड़े-बड़े अनेक लोगों के जैसे आचरण उसने देखे हैं, क्या वह उनसे किसी प्रकार भी पतित है? कनक ने भोजन बन्द कर दिया। पूछा- दीदी, क्या किसी जात का आदमी तरक्की करके दूसरी जात में नहीं जा सकता?"[1] चतुरसेन शास्त्री लिखित 'आत्मदाह' उपन्यास में वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था के परंपरागत रूपों का विरोध करते हुए सुधीन्द्र नामक पात्र कहता है कि "मनुष्य ही हमारी जाति है। शास्त्र कहते हैं - समान स्त्रवात्मिका जाति, जिनका समान रीति से प्रसव हो, वही एक जाति है। मनुष्य मात्र की इससे एक जाति होनी चाहिये।"[2] गाँधी जी प्रत्येक मनुष्य को परमात्मा का अंश मानते थे। वे किसी को भी जन्म से अछूत मानने के विरोधी थे।

2.4.2.3 स्त्रियों की उन्नति

प्रेमचन्द का लेखन सन् 1915 ई. के आसपास शुरु हुआ और 1936 तक अबाध गति से चलता रहा। यह समय भारतीय समाज में स्त्रियों और दलितों के लिए दोहरी गुलामी का समय था। गाँधी चिंतन के अन्तर्गत स्त्रियों की उन्नति से संबंधित जिस व्यावहारिक कार्यक्रम का सूत्रात्मक विवेचन हुआ है, उसका समर्थन इस युग के अनेक उपन्यासकारों ने किया। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'गबन' में कहा है कि जब तक स्त्री शिक्षित नहीं होगी, तब तक वह अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूक नहीं हो सकेगी। इस उपन्यास में वकील इन्द्रभूषण लड़कियों के लिए अनिवार्य शिक्षा के प्रस्ताव पर कहते

1. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अप्सरा, निराला ग्रन्थावली, भाग-3, पृ. 262
2. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - आत्मदाह, पृ. 116

हैं कि "आपके बोर्ड में लड़कियों की अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव कब पास होगा? जब तक स्त्रियों की शिक्षा का काफी प्रचार न होगा, हमारा कभी उद्धार नहीं होगा।"[1] दूसरे उदाहरण के रूप में प्रेमचन्द के ही उपन्यास 'गोदान' में भी उन्होंने मेहता के माध्यम से स्त्री-शिक्षा का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहलाया कि "मैं यह नहीं कहता कि देवियों को विद्या की ज़रूरत नहीं है। है और पुरुषों से अधिक है। स्त्री की विद्या और अधिकार हिंसा और विध्वंस में नहीं, सृष्टि और पालन में है।"[2] गाँधी जी के अनुसार स्त्री-पुरुष समान दर्ज के हैं। वे लिखते हैं - "मैं स्त्रियों की समुचित शिक्षा का हिमायती हूँ, लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि स्त्री दुनिया की प्रगति में अपना योग पुरुष की नकल करके या उसकी प्रतिस्पर्धा करके नहीं दे सकती। वह चाहे तो प्रतिस्पर्धा कर सकती है। लेकिन पुरुष की नकल करके वह उस ऊँचाई तक नहीं उठ सकती, जिस ऊँचाई तक उठना उसके लिए संभव है। उसे पुरुष की पूरक बनाना चाहिए।"[3] गाँधी जी ने हमेशा से ही नारी के सर्वक्षेत्रीय कल्याण की नियामक पहल की है।

वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'आहत' उपन्यास में नारी को छोटे मोटे घरेलू और ग्रामोद्योग में परिश्रम करके स्वावलंबी बन सकती है। 'मंजरी' नामक पात्र के रूप में लेखक ने एक ऐसे चरित्र का गठन किया है, जो दृढ इच्छा शक्ति से गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित स्वावलंबन के सिद्धान्त के इसी पथ पर बढ़ने का निश्चय करती है- "मंजरी ने मन में तै किया, जब ये यहीं

1. प्रेमचन्द - गबन, पृ. 65-66
2. प्रेमचन्द - गोदान, पृ. 165
3. महात्मा गाँधी - हरिजन, पृ. 27-2-37

जमकर कुछ नहीं कर पाते, तो बाहर जाकर ही क्या कर लेंगे? घटिया हो य बढ़िया, मैं ही गाँव में कुछ करूँगी। पड़ोस में ही करूँगी। चक्की तक पीस दूँगी, और भी तो हैं काम... अनाज का फटकना, बीनना, कपड़े सीना, चर्खा कातना, वगैरह-वगैरह। मैं थोड़े से रुपये जोड लूँगी और ये जब मुझे काम करते देखेंगे, तो कुछ तो लजायेंगे।"[1] गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित कुटीर उद्योग एवं गृह उद्योगों के माध्यम से स्त्री स्वावलंबी बन सकती है।

2.4.2.4 किसानों एवं श्रमिकों की उन्नति

गाँधीजी की मान्यता थी कि भारतवर्ष कृषि प्रधान देश हैं और इसलिए जब तक कृषकों की दशा में सुधार नहीं होगा। तब तक देश का कल्याण नहीं हो पाएगा। तत्कालीन युगीन उपन्यासकार प्रेमचन्द भी गाँधी जी के इसी आदर्श पर अडिग थे। उनके अनुसार कृषकों की उन्नति देश की प्रगति का एकमात्र आधार है। जब तक कृषक-वर्ग जागरूक, सचेत और संपन्न न होगा, तब तक देश भी समुन्नत न होगा। 'कर्मभूमि' नामक उपन्यास में प्रेमचन्द ने किसानों की उन्नति तथा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न योजनाओं के कार्यान्वयन पर बल दिया है। उदाहरण के लिए- "हम इसके सिवा और क्या चाहते हैं कि गरीब किसानों के साथ इन्साफ किया जाये और जब उस उद्देश्य को पूरा करने के इरादे से एक ऐसी कमेटी बनाई जा रही है, जिससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह किसानों के साथ अन्याय करे, तो हमारा धर्म है कि उसका स्वागत करें।"[2] गाँधी जी के शब्दों में –

1. डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा - 'आहत', पृ. 61
2. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ. 408

-"किसान या काश्तकार का स्थान पहला है, चाहे वह भूमिहीन मजदूर हो, चाहे मेहनत-मजदूरी करनेवाला भूस्वामी हो। खेती किसान पर ही निर्भर है।"[1] इस प्रकार किसान कल्याण के माध्यम से देश के विकास का सपना पूरा करने के लिए गाँधी जी ने जनसमूह को आह्वान दिया।

गाँधी जी ने जिस प्रकार किसानों की उन्नति के लिए कार्य किया ठीक उसी प्रकार श्रमिक वर्गों के प्रति भी वे संवेदनशील रहे। उन्होंने कहा- "यज्ञ कई प्रकार के हो सकते हैं। उनमें से एक शरीर श्रम भी हो सकता है। यदि सब अपने ही श्रम की रोटी खायें, तो सब के लिए पर्याप्त भोजन और पर्याप्त अवकाश उपलब्ध हो जायेगा।"[2] प्रेमचन्द भी श्रम की महता को सिद्ध करते हुए अपने उपन्यास 'कर्मभूमि' में एक पात्र के माध्यम से कहलवाते हैं कि- "काम करके कुछ उपार्जन करना शर्म की बात नहीं। दूसरों का मुँह ताकना शर्म की बात है।"[3] इसी युग में वृन्दावनलाल वर्मा लिखित उपन्यास 'अमरबेल' में किसानों की उन्नति के समानान्तर ही मज़दूरों की उन्नति की आवश्यकता और इसके लिए गृह उद्योगों का समुचित रूप में विकास पर प्रश्रय दिया है - "बटोले ने कहा, खेती मैं भी करता हूँ और तुम सब करते हो, पर हम थोडे-से लोग कुछ उद्यम भी करते हैंः लुहार, बढ़ई, कुम्हार अपना-अपना करते हैं और हम कपड़े का काम। पेट भर रोटी मिल जाय, तो बहुत समझो। पर इससे काम नहीं चलता। खेती-किसानी के बढ़ाने की बातें तो तै हो गई, हम लोगों के रोज़गार बढ़ाने के लिये भी कुछ होना

1. गाँधी जी - सर्वोदय, पृ. 138
2. महात्मा गाँधी - हरिजन - 29.6.35
3. प्रेमचन्द्र - कर्मभूमि, पृ. 16

चाहिए।"[1] इस प्रकार तत्कालीन युगीन उपन्यासकारों ने किसानों एवं मज़दूरों की उन्नति के माध्यम से देश के समग्र विकास पर बल दिया। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में लखनपुर गाँव की तबाही ज़मींदारी प्रथा के कारण होता है। उपन्यास का मुख्य पात्र प्रेमशंकर ज़मीन्दार होने के बावजूद इस प्रथा को त्यागता है। वह इस प्रथा से पीडित ग्रामवासियों के लिए, उनकी समृद्धि के लिए एक ऐसे आश्रम की स्थापना करता है जहाँ ज़मीन्दार-किसान, हिन्दू व मुसलमान, अमीर-गरीब सब प्रेम पूर्वक इकट्ठा होकर सेवा और त्याग की भावना के साथ एक दूसरे की मदद करते हैं। प्रेमशंकर किसानों को संगठित करके ज़मीन्दारी प्रथा के खिलाफ लडने के लिए प्रोत्साहित करता है। प्रेमशंकर गाँधी जी से पूरी तरह प्रभावित होता है। 'प्रेमाश्रम' की स्थापना करके वह गाँधी जी के रास्ते को अपनाता है। उपन्यास में कहा गया है "ज़मीन उसी का है जो उसे जोता है।"[2] प्रेमशंकर किसानों को अपनी ताकत, अपने अधिकार बोध से साक्षात्कार कराता है।

2.4.3 गाँधी चिंतन संबन्धी राजनैतिक तत्व

2.4.3.1 सांप्रदायिकता एकता

गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित रचनात्मक सूत्रों में सांप्रदायिक एकता महत्वपूर्ण तत्वों में से एक है। गाँधी जी ने देश की अखंडता की रक्षा हेतु सांप्रदायिक एकता का होना ज़रूरी समझा। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन इसी एकता को बनाए रखने का परिश्रम किया। प्रस्तुत युग के उपन्यासकारों ने

1. डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ. 150
2. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ. 156

भी गाँधी जी के इस प्रयास को प्रगति पर लाने की भरपूर कोशिश की। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'सेवा सदन' के माध्यम से यह संकेत दिया कि सांप्रदायिक वैमनस्य राष्ट्रीय हित में सबसे बडी बाधा का कारण है। विभिन्न वर्गों के लोक भिन्न भिन्न स्वार्थों से वशीभूत होकर बहुत से सामाजिक तथा अन्य समस्याओं को सांप्रदायिक विवाद का रूप दे देते हैं। इस सन्दर्भ में प्रेमचन्द के उक्त उपन्यास का एक पात्र कहता है - "मुझे यह देखकर शोक हो रहा है कि आप लोग एक सामाजिक प्रश्न को हिन्दू-मुसलमानों के विवाद का स्वरूप दे रहे हैं। सूद के प्रश्न को भी यह रंग देने की चेष्टा की गई थी। ऐसे राष्ट्रीय विषयों को विवादग्रस्त बनाने में कुछ हिन्दू साहूकारों का भला हो जाता है, किन्तु इससे राष्ट्रीयता को जो चोट लगती है, उसका अनुमान करना कठिन है।"[1] समान रूप से प्रस्तुत युग के अन्य उपन्यासकारों ने भी सांप्रदायिक वैमनस्य को दूर करके एक हार्दिक एकता की प्रतिष्ठा करना चाहा। भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने 'चलते चलते' उपन्यास में नायक के माध्यम से यह संकेत दिया है कि सांप्रदायिकता के विष का देशभक्ति के नाम पर प्रसार अत्यन्त घातक है। नायक कहता है कि- "देशभक्ति की पावन भावना का मैं उपासक अवश्य हूँ, लेकिन देशभक्ति की सांप्रदायिकता के विष को मैं अमृत नहीं मान सकता ।"[2] गाँधी जी ने हमेशा हिन्दू और मुसलमान को भाई-भाई का दर्जा दिया। उन्होंने मनुष्य को किसी भी जाति के दायरे में नहीं देखा। उनके लिए मनुष्य मात्र परमात्मा का अंश है। गाँधी जी ने उस परम शक्ति को एक माना तथा लोक कल्याण की आशा की।

1. प्रेमचन्द - सेवा सदन, पृ. 150
2. भगवतीप्रसाद वाजपेयी - चलते-चलते, पृ. 75-76

2.4.3.2 असहयोग आन्दोलन

गाँधी चिंतन के तहत व्यावहारिक कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण रचनात्मक सूत्र असहयोग आन्दोलन भी है। इसको राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आन्दोलन का पूरक माना गया है। गाँधी जी ने इस आन्दोलन को देश की स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु एक प्रभावशाली तंत्र के रूप में स्वीकार किया था। गाँधी चिंतन में प्रतिपादित असहयोग आन्दोलन की रूपरेखा के मूल में ब्रिटिश सरकार की शोषण नीति थी। उन्होंने इसी शोषण नीति के खिलाफ सबसे घातक हथियार के रूप में असहयोग को चुना। इस आन्दोलन के लिए भारत की समस्त जनता ने गाँधी जी को अपना भरपूर सहयोग दिया और अंग्रेज़ी राज को हिला कर रख दिया। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में भी इस विषय पर रचनाओं का सृजन हुआ। चतुरसेन शास्त्री लिखित 'आत्मदाह' उपन्यास में गाँधी जी के व्यक्तित्व एवं विचार से प्रभावित होकर एक बडी संख्या में युवा-वर्ग ने अपनी नौकरी, पढ़ाई अथवा व्यवसाय छोड़ दिये और असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रूप से निष्ठापूर्वक भाग लिया - "ग्यारह वर्ष नौकरी करके, असहयोग आन्दोलन में सुधीन्द्र ने नौकरी छोड़ दी। वे लिखने लगे।"[1] दूसरे उपन्यास 'उदयास्त' में चतुरसेन शास्त्री ने स्वामी जी नामक एक पात्र की सृष्टि की है जिनके माध्यम से उन्होंने गाँधी विचारधारा में उद्धृत सहयोग की भावना को स्पष्ट किया है। स्वामी जी कहते हैं - "गाँधी जी ने भारत को सीधी राह दिखाई। मनुष्य के प्रति मनुष्य का आत्म समर्पण। कर्तव्य पर अधिकारों का बलिदान। भारत यदि इस पथ पर चलेगा, तो वह

---

1. चतुरसेन शास्त्री - आत्मदाह, पृ. 35

विश्व का नेतृत्व करेगा। संसार के मानवों को अभयदान, जीवनदान देगा।... मैं सबका सहयोग चाहता हूँ। मैं नहीं समझता कि सब लोग कभी बराबर हो सकेंगे। पैर पैर रहेगे, सिर सिर रहेगा। पैर अपना काम करेंगे और सिर अपना। मैं केवल यह चाहता हूँ कि पैरें का सिर से सम-सहयोग रहे। पैरों को सिर पर बोझ ढोना असह्य न हो और सिर पैर में एक काँटा चुभे, तो भी उन्हें सावधान कर दे। इसी का नाम है सम-सहयोग... और यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति बिना शर्त दूसरे के प्रति आत्म-समर्पण कर दे तो, यह सम-सहयोग आसानी से हो सकता है।"[1]

2.4.3.3 स्वदेश प्रेम

किसी भी देश की स्वतंत्रता के लिए सबसे पहले आवश्यक है उस देश की जनता के मन में स्वदेश प्रेम को जगाना। इसी भावना से आलोड़ित होकर समस्त जन अपनी गुलामी के भेड़ियाँ तोडने को आतुर होजाता है। गाँधी जी ने प्रत्येक नागरिक को स्वदेश के लिए आत्म बलिदान देने की प्रेरणा दी। उन्होंने पराधीनता को सबसे बडा कलंक और अभिशाप माना व इसके खिलाफ संघर्ष करने का आह्वान किया। उनके अनुसार "राजनीतिक स्वाधीनता से मेरा मतलब यह नहीं कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट या रूस के सोवियट शासन या इंटली के फासिस्ट राज्य या जर्मनी की नाजी हुकूमत की नकल की जाय। उनकी प्रणालियां उनकी प्रकृति के अनुकूल हैं। हमें अपनी प्रकृति के अनुकूल प्रणाली अपनानी चाहिये। वह क्या हो सकती है, यह

1. चतुरसेन शास्त्री - उदायस्त, पृ. 50-52

बताना मेरे बूते की बात नहीं। मैंने उसे रामराज्य कहा है, अर्थात् उसमें शुद्ध नैतिक सत्ता के आधार पर आम जनता की सर्वोपरि सत्ता होगी।"[1] स्वदेश प्रेम से ओतप्रोत भारतीय चिंतना धारा पर आधारित एक स्वराज्य की कल्पना गाँधी जी ने की थी। 'माधवजी सिंधिया' नामक वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा लिखित उपन्यास में इसी ओर संकेत किया है कि - "स्वराज्य के आदर्श को आगे बढाना है। योग्य और सुपात्र लोग ही, चाहे वे ब्राह्मण हो चाहे मराठे, उस आदर्श को व्यवहार का रूप दे सकते हैं। पेशवा इसी प्रकार के लोगों का संघ बना रहे हैं, जो भारत भर में स्वराज्य की स्थापना करेंगे। माताजी, आपसी झगड़ों को नहीं उभड़ने देना चाहिये।"[2]

2.4.4 गाँधी चिंतन संबन्धी धार्मिक पक्ष

गाँधी जी के अनुसार इस संसार का सबसे बडा धर्म मानव धर्म है। धर्म को उन्होंने एक महाव्रत की संज्ञा दी है और उनका विचार था कि धर्म केवल अनुभव से जाना जाता है। उन्होंने नवजीवन में कहा है-"धर्म सीधी लकीर नहीं बल्कि विशाल वृक्ष है। उसके करोडों पत्ते हैं जिनमें दो पत्ते भी एक से नहीं है।..... धर्म जिस प्रकार सीधी लकीर नहीं, उसी प्रकार टेढ़ी भी नहीं। वह सीधी लकीर से परे है क्योंकि वह बुद्धि के परे है। वह अनुभव से जाना जाता है।"[3] गाँधी जी के विचारों का समर्थन तत्कालीन युग के उपन्यासकारों ने भी किया। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'मनुष्यानन्द' शीर्षक उपन्यास में गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित धार्मिक दृष्टिकोण का समर्थन

1. महात्मा गाँधी - हरिजन - 2-1-37
2. वृन्दावनलाल वर्मा - माधवजी सिंधिया, पृ. 220
3. महात्मा गाँधी - नवजीवन, अंक 10-5-1924, पृ. 415

करते हुए कहा है कि वही धर्म सच्चा धर्म है, जिसमें मानव मात्र के प्रति प्रेम के व्यवहार को उचित बताया गया है- "पादरी, तुम्हारी बाइबिल में लिखा है - अपने शत्रुओं से प्रेम करो और अपने सतानेवालों केलिए परमपिता से प्रार्थना करो। ऐसा करने से तुम अपने स्वर्ग-स्थित पिता की सन्तान कहलाओगे क्योंकि उसका सूर्य भले और बुरे दोनों पर उदित होता है। उसके बादल दोनों को पानी देते हैं। फिर, यह तुम्हारा कैसा आचरण है ईसाई साधु? तुम्हारा धर्म तो बड़ा उदार कहा जाता है।"[1]

गाँधी जी ने परंपरागत राजनीति से हटकर धर्म, नैतिक मूल्य एवं सामाजिक आदर्शों को राजनीति में स्थान प्रदान करके एक आधुनिक राजनीतिक विचारधारा की नींव रखी। धर्म एवं नैतिकता गाँधी जी की इस नयी राजनैतिक विचारधारा के मूल में थे। उनके अनुसार जो धर्म राजनीति का विरोधी है, वह धर्म नहीं है। व्यक्ति अथवा समाज धर्म से जीवित रहते हैं और अधर्म से नष्ट हो जाते हैं। उपर्युक्त सन्दर्भ का समर्थन उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द नैतिकता के आधार पर करते हैं, वे लिखते हैं-"मैं तो नीति को ही धर्म समझता हूँ और सभी संप्रदायों की नीति एक-सी है -बुरे हिन्दु से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है, जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दु।"[2] स्वतंत्रता पूर्व राजनीति में गाँधी जी अकेले ऐसे व्यक्ति रहे हैं जिन्होंने आध्यात्मपरक राजनीतिक जागरण, संघर्ष के लिए नैतिक सूत्रों एवं मानवीय भावनाओं का प्रयोग किया। उन्होंने भारतीय जनमानस की भावनाओं को समझकर अपने रचनात्मक सूत्रों का उन्नयन करते हुए राजनीति को गतिशीलता प्रदान की।

---

1. पांडेय बेचन शर्मा उग्र - मनुष्यानन्द, पृ. 66
2. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ. 227

2.4.5 गाँधी चिन्तन संबन्धी आर्थिक पक्ष

2.4.5.1 आर्थिक समानता

गाँधी जी ने आर्थिक विषमता के निवारण के लिए अनेक उपायों को अपने चिंतन के माध्यम से व्यक्त किया है। उनकी निश्चित धारणा थी कि जब तक आर्थिक समानता की दिशा में समाज को अग्रसर नहीं किया जाएगा, तब तक किसी न किसी रूप में शोषण अवश्य विद्यमान रहेगा। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम' के माध्यम से समाज में व्याप्त इसी तथ्य की ओर संकेत किया है कि आर्थिक विषमता का ही विकृत रूप पूँजीवाद एवं सामन्तवाद है और इनके प्रबल होने से मानवीय संबन्धों और भावनाओं की पवित्रता का विनाश हो जाता है। कमलानन्द नामक पात्र एक स्थान पर कहता है कि -"इसी जायदाद के कारण हम और तुम एक-दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं। संसार में जिधर देखो, ईर्ष्या और द्वेष, आघात और प्रत्याघात का साम्राज्य है, भाई भाई का बैरी, बाप बेटे का बैरी, पुरुष स्त्री का बैरी-इसी जायदाद के लिये, इसी धन के लिए । इसके हाथों जितना अनर्थ हुआ, हो रहा है और होगा, उसके देखते कहीं अच्छा है कि अधिकार की प्रथा ही मिटा दी जाती। यही वह खेत है, जहाँ छल और कपट के पौधे लहराते हैं, जिसके कारण संसार रणक्षेत्र बना हुआ है। इसी ने मानव जाति को पशुओं से भी नीचे गिरा दिया है।"[1]

---

1. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ. 304

2.4.5.2 स्वदेशी आन्दोलन

रचनात्मक कार्यक्रम में स्वदेशी आन्दोलन अत्यधिक महत्वपूर्ण सूत्र है। गाँधी जी का मानना था कि भारत जैसे विशाल ग्राम प्रधान राज्य में मशीनी सभ्यता अनुकूल नहीं हो सकती। समाज में सब के लिए रोज़गार सृजन एवं सुख सुविधा पूर्ण जीवन देने के लिए स्वदेशी को अपनाना और उसका उत्पादन करना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार भारत आर्थिक स्वतंत्रता की ओर बढ़ सकता है। प्रेमचन्द कृत 'गबन' उपन्यास में स्वदेशी आन्दोलन की व्यावहारिक सफलता के लिए समाज के सभी वर्गों का विशेषकर उच्च वर्ग एवं मध्य वर्ग, के समर्थन की अत्यधिक आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है। 'गबन' में देवीदीन नामक पात्र कहता है कि- "इन बड़े-बड़े आदमियों के किए कुछ न होगा, इन्हें बस रोना आता है। छोकरियों की भाँति बिसूरने के सिवा इनसे और कुछ नहीं हो सकता। बड़े-बड़े देशभक्तों को बिना विलायती शराब के चैन नहीं आता। उनके घर में जाकर देखो, तो एक भी देसी चीज़ न मिलेगी। दिखाने को दस-बीस कुरते गाढ़े के बनवा लिए, घर का और सब सामान विलायती है। सबके सब भोग-विलास में अन्धे हो रहे हैं, छोटे भी और बड़े भी। उस पर दावा यह है कि देश का उद्धार करेंगे।"[1] इसी प्रकार अन्य उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास जैसे गोविन्दवल्लभ पंत ने 'अनुरागिनी', श्रीमती उषा देवी मित्र ने 'पिया' आदि में स्वदेशी आन्दोलन के विभिन्न तत्वों तथा इसके माध्यम से एक नई आर्थिक व्यवस्था को बनाने का प्रयास किया है।

---

1. प्रेमचन्द - गबन, पृ. 218

2.4.5.3 ग्रामोद्योग

स्वदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत ग्रामीण अंचल का विकास-यही गाँधी का सपना था। इसकी प्राप्ति हेतु गाँधी जी ने कुटीर एवं लघु उद्योगों, खादी एवं चरखा प्रचार आदि का समर्थन किया। उनकी मान्यता थी कि भारत के लिए गाँवों का विकसित होना बहुत ज़रूरी था। "मैं कहूँगा कि अगर गाँवों का नाश होता है तो भारत का भी नाश हो जायेगा। उस हालत में भारत भारत नहीं रहेगा।"[1] गाँधी जी ने गाँवों के पुनर्निर्माण हेतु कई प्रयास किए। इन प्रयासों से गाँवों को सशक्त एवं समृद्ध बनाना चाहा। उनके अनुसार- "ग्राम बस्तियों का पुनरुत्थान होना चाहिए। भारतीय गाँव भारतीय शहरों की सारी ज़रूरतें पैदा करते थे और उन्हें देते थे। भारत की गरीबी तब शुरु हुई जब हमारे शहर विदेशी माल के बाज़ार बन गये और विदेशों का सस्ता और भद्दा माल गाँवों में भरकर उन्हें चूसने लगे।"[2] गाँधी जी ने लघु उद्योगों और ग्रामोद्योगों को अधिक महत्व दिया। उनकी मान्यता थी कि यदि यांत्रिक उद्योगों का विकास भारत जैसे कृषि प्रधान देश में होगा तो आर्थिक तंत्र में असंतुलन के साथ-साथ बेरोज़गारी भी बढ़ेगी। ग्रामोद्योग को प्रश्रय देते हुए प्रेमचन्द जी ने लिखा है- "उन्हें घर से निर्वासित करके दुर्व्यसन के जाल में न फँसायें। उनके आत्माभिमान का सर्वनाश न करें और यह उसी दशा में हो सकता है जब घरेलू शिल्प का प्रचार किया जाये और वह अपने गाँव में कुछ और बिरादरी की तीव्र दृष्टि के सम्मुख अपना-अपना काम करते रहें।... इसके लिए हमें विदेशी वस्तुओं पर कर लगाना पड़ेगा। योरपवाले दूसरे देशों

---

1. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 110
2. वही - पृ. 100

से कच्चा माल ले जाते हैं, जहाज का किराया देते हैं, उन्हें मज़दूरों को कड़ी मजूरी देनी पड़ती है, उस पर हिस्सेदारे को नफा भी खूब चाहिए। हमारा घरेलू शिल्प इन समस्त बाधाओं से मुक्त रहेगा।"[1] गाँधी जी ने ग्रामोद्योग में खादी एवं चरखे को भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' में लिखा है - "चरखा रुपये के लिए नहीं चलाया जाता। वह आत्मशुद्धि का एक साधन है।"[2] स्वदेशी वस्तुओं का स्वीकार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार से ग्रामोद्योगों का विकास होगा तथा देश की आर्थिक व्यवस्था में बदलाव आयेगा।

2.4.6 गाँधी चिंतन संबन्धी सांस्कृतिक तत्व

"भारत अपने मूल स्वरूप में कर्मभूमि है, भोगभूमि नहीं।"[3] गाँधीजी ने भारतीय संस्कृति को विश्व की सर्वोत्तम संस्कृतियों में से एक माना है। भारतीय संस्कृति नैतिक मूल्यों एवं शाश्वत मूल्यों से समृद्ध है। गाँधी जी ने इसी संस्कृति के विभिन्न तत्वों को अपने चिंतन में अपनाया तथा मानवता एवं मानव जीवन के लिए एक नए पथ का प्रदर्शन किया। हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में भी गाँधी जी द्वारा स्वीकृत सांस्कृतिक तत्वों अथवा विभिन्न सद्‌गुणों यथा परोपकार, सेवा-भावना, अतिथि-सत्कार आदि को विशेष स्थान दिया। इसके अलावा गाँधी जी ने यह भी व्यक्त किया कि अपनी संस्कृति की महता को पहचानना भारतीयों के लिए अत्यधिक आवश्यक है, इसके साथ ही दूसरे संस्कृतियों के अच्छे गुणों को भी अपनाकर आगे बढने का सन्देश दिया।

---

1. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ. 127-128
2. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ. 319
3. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया, 5.2.25

"मैं चाहता हूँ कि सब देशों की संस्कृतियों की हवा मेरे घर के चारों ओर अधिक से अधिक स्वतंत्रता के साथ बहती रहे।"[1] गाँधी जी भारतीय संस्कृति की महता को सिद्ध करते हुए यंग इण्डिया में लिखते हैं कि - "मेरा दृढ मत है कि कोई संस्कृति इतने रत्न-भण्डार से भरी हुई नहीं है जितनी हमारी अपनी संस्कृति है।"[2]

2.4.6.1 परोपकार

प्रेमचन्द के उपन्यास 'कायाकल्प' में परोपकार नामक सद्‌गुण को मनुष्य का परम धर्म निर्दिष्ट किया गया है। इस उपन्यास का एक पात्र एक स्थान पर कहता है- "मैं परोपकार के लिए अपने जीवन को सरल नहीं बनाना चाहता, बल्कि अपने उपकार के लिए-अपनी आत्मा के सुधार के लिए।"[3]

2.4.6.2 सदाचार

महात्मा गाँधी मनुष्य के जीवन में सत्य बोलने और सदाचरण पर विशेष बल देते थे। प्रेमचन्द अपने उपन्यास 'कायाकल्प' में लिखते हैं कि मनुष्य को सदाचार का अवलंबन करते हुए अपने आत्मिक उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। गाँधी जी का कहना था कि सदाचार के मार्ग पर चलकर ही व्यक्ति अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त कर सकता है। उपर्युक्त कथन का समर्थन करते हुए प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास में लिखा कि-"काल पर विजय पाने का अर्थ यह

1. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया, 1.6.21
2. महात्मा गाँधी - यंग इण्डिया, 1.9.21
3. प्रेमचन्द - कायाकल्प, पृ. 47

नहीं है कि कुत्रिम साधनों से भोग विलास में प्रवृत्त हों, वृद्ध होकर जवान बनने का स्वप्न देखें और अपनी आत्मा को धोखा दें। लोकमत पर विजय पाने का अर्थ है, अपने सद्विचारों और सत्कर्मों से जनता का आदर और सम्मान प्राप्त करना, आत्मा पर विजय पाने का आशय निर्लज्जता या विषय-वासना नहीं, बल्कि इच्छाओं का दमन करना और कुवृत्तियों को रोकना है।"[1]

2.4.6.3 अतिथि सत्कार

गाँधी चिंतन में विभिन्न सद्‌गुणों के समानान्तर ही अतिथि सत्कार को भी विशेष गौरव प्राप्त है। भारतीय संस्कृति और धर्म में अतिथि को देवता के समान मानकर उसकी सेवा और सत्कार का विधान है। प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री लिखित 'गीली यादें' शीर्षक उपन्यास में अतिथि सेवा का पोषण किया गया हैं। इस उपन्यास में एक हिन्दू शासक के द्वारा बन्दी मुसलमानों के अतिथि-सत्कार की भावना का निरूपण करते हुए यह संकेत किया है कि शत्रु अथवा मित्र का विचार किये बिना अतिथि के रूप में अथवा बन्दी के रूप में निवास करते हुए मनुष्य मात्र के प्राणों की रक्षा करना सदैव से भारतीय संस्कृति का आदर्श रहा है- "यवन सेनापति, मुझे तुमसे कुछ परामर्श करना है, मैं विवश हो गई हूँ। दुर्ग में खाद्य-सामग्री बहुत कम हो गई है और मुझे यह संकोच हो रहा है कि आपकी कैसे अतिथि-सेवा की जाय। अब कल से हम लोग एक मुट्‌ठी अन्न लेंगे और आप लोगों को दो मुट्‌ठी उस समय तक मिलेगा, जब तक कि अन्न दुर्ग में रहेगा। आगे ईश्वर मालिक है।"[2]

1. प्रेमचन्द - कायाकल्प, पृ.94
2. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - गीली यादें, पृ. 89

2.4.6.4 सेवा भावना

गाँधी जी की मान्यता थी कि दूसरों की सेवा से ही मनुष्य को सच्ची शांति, सच्चा सुख और सच्चा संतोष प्राप्त हो सकता है। आलोच्य युग में प्रेमचन्द जी ने 'गोदान' में सेवा भावना की पुष्टि करते हुए लिखा है कि- "संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं और वह आपको मिले हुए है।... हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा। उन्होंने केवल सेवा के अधिकार से सदैव गृहस्थी का संचालन किया है।"[1]

2.4.6.5 बुनियादी तालीम

गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित रचनात्मक कार्यक्रम में बुनियादी शिक्षा का होना बहुत ही उल्लेखनीय है। गाँधी जी के अनुसार धर्म विहीन शिक्षा से मनुष्य का आत्मिक उत्थान संभव नहीं है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द एक पात्र के माध्यम से कहते हैं कि- "यह तुम्हारा दोष नहीं, तुम्हारा धर्मविहीन शिक्षा का दोष है। तुम्हें आदि से ही भौतिक शिक्षा मिली..... तुम जो कुछ हो, अपनी शिक्षा-प्रणाली के बनाये हुए हो।"[2] बुनियादी शिक्षा के विषय में गाँधी चिंतन के अधीन जिन विचारों का समावेश किया गया है, उनका उद्देश्य ग्रामीण जीवन के उद्धार के माध्यम से भारतीय संस्कृति का चतुर्मुखी उन्नति है। 'अतीत के घूंट' शीर्षक उपन्यास में भगवीप्रसाद वाजपेयी अपने एक पात्र से कहलवाते हैं कि-"परन्तु अब गाँव में शिक्षा का विकास हो रहा है। अब गांव

---

1. प्रेमचन्द - गोदान, पृ. 163
2. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ. 263

के लड़कों में नैतिकता के प्रति आस्था और श्रद्धा का नव-आकर्षण उत्पन्न करना हमारा एक पावन कर्तव्य होना चहिये।"[1]

2.4.6.6 राष्ट्रभाषा-मातृभाषा प्रेम

गाँधी जी की मान्यता थी कि राष्ट्र निर्माण हेतु वास्तविक स्वराज्य की प्राप्ति के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना ज़रूरी है। अंग्रेज़ी भाषा की दासता से जूझते भारत को केवल उसकी अपनी भाषा ही परतन्त्रता की भेडियों से बचा सकता है। 'सेवसदन' में एक पात्र के माध्यम से प्रेमचन्द ने अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है कि -"हमारी पराधीनता का सबसे अपमानजनक, सबसे व्यापक, सबसे कठोर अंग अंग्रेज़ी भाषा का प्रभुत्व है।... अगर आज इस प्रभुत्व को हम तोड़ सकें, तो पराधीनता का आधा बोझ हमारी गर्दन से उतर जायेगा।... जिस दिन आप अंग्रेज़ी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेंगे उसी दिन आपको स्वराज्य के दर्शन होंगे।"[2] गाँधी जी केलिए राष्ट्रभाषा का होना जितना आवश्यक था उतना ही वे मातृभाषा के लिए भी समान महत्व को सिद्ध करते हैं। उनके शब्दों में कहा जाए तो- "हमने अपनी मातृभाषा के मुकाबले अंग्रेज़ी से ज़्याद मुहब्बत रखी, जिसका नतीजा यह हुआ कि पढ़े-लिखे और राजनीतिक दृष्टि से जागे हुए ऊँचे तबके के लोगों के साथ आम लोगों का रिश्ता बिलकुल टूट गया और उन दोनों के बीच एक गहरी खाई बन गई। यही वजह है कि हिन्दुस्तान की भाषायें गरीब बन गई हैं और उन्हें पूरा पोषण नहीं मिला।"[3] गाँधी जी के

1. भगवतीप्रसाद वाजपेयी - अतीत के घुंट, पृ. 165
2. प्रेमचन्द - सेवा सदन, पृ. 150-153
3 गाँधी जी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 220

लिए राष्ट्रभाषा अगर संपूर्ण देश की एकता का वाहक था तो मातृभाषा जीवनदायी दूध पिलानेवाली माँ समान थी। "मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हों, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा जिस तरह अपनी माँ की छाती से।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गाँधी जी की संस्कृति धर्मनिष्ठ थी। उन्होंने जीवन के सभी पक्षों में नैतिकता पर बल दिया। वे परंपरागत सांस्कृतिक दृष्टिकोण के पक्षधर थे। सत्य-अहिंसा, परोपकार, सेवा भावना, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रप्रेम आदि उनकी इसी सोच के परिचायक हैं। आलोच्य युग के लगभग सभी उपन्यासकारों ने गाँधी जी की सांस्कृतिक दृष्टि से प्रभावित होकर अपने उपन्यासों के विभिन्न चरित्रों के माध्यम से उनकी सांस्कृतिक सोच को समाज तक पहुँचाया है।

2.5 प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में गाँधी चिंतन

हिन्दी उपन्यास के विकास काल का तृतीय चरण प्रेमचन्दोत्तर युग से अभिहित है। इसकी काल सीमा सन् 1936 से सन् 1947 अर्थात् प्रेमचन्द के निधन से स्वतंत्रता प्राप्ति तक सीमित है। मूलतः यह युग तीव्र परिवर्तन का युग रहा। इसमें दूसरा विश्वयुद्ध भी शामिल है जिसने देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक घटनाओं को प्रभावित किया। इस युग में अनेक क्रान्तिकारी आन्दोलन एवं परिवर्तन हुए जिन्होंने इस देश की दशा और दिशा में महत्वपूर्ण बदलाव किया। इस युग में प्राचीन रूढीवादिता का

1. महात्मा गाँधी - हरिजन सेवक, 25-8-46

विरोध और सामाजिक स्तर पर नवीनता की स्वीकृति मुखर हुई। वर्णव्यवस्था, अन्तर्जातीय विवाह संबन्ध, खानपान, विदेशी यात्रा के प्रति दुर्भाव, अछूत वर्ग के प्रति उपेक्षा भाव आदि में उदारता नज़र आई। नारी जागरण को व्यापक अभिव्यक्ति एवं स्वीकृति मिली, शिक्षा प्रणाली में युवतियों का प्रवेश और विधवा विवाह का प्रचार भी इसी युग में हुआ। समाज सुधारकों की सामाजिक विकास की शोषण विहीन परिकल्पना गाँधी चिंतन से प्रेरित थी।

प्रेमचन्दोत्तर युग में अंग्रेज़ों का पूरा ध्यान द्वितीय विश्व युद्ध पर था और अपनी साम्राज्यवादी नीतियों के कारण वे भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोई ध्यान नहीं दे रहे थे। अंग्रेज़ों की दमन नीतियों के कारण गांवों की आर्थिक दशा और कृषि की हालात दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। गाँवों में महाजनों की प्राथमिकता थी। किसानों एवं मज़दूरों का शोषण बढ गया। उद्योग-धंधे समाप्त होते जा रहे थे जिसके कारण कृषि पर बोझ बढ़ गया था। द्वितीय विश्व युद्ध में जहाँ पूँजीपतियों को पनपने का भरपूर मौका दिया वहीं मज़दूरों को शोषण के गर्त में धकेल दिया गया। युद्ध के पश्चात स्थितियाँ और भी विकट हो गईं। इसी दौरान औद्योगिक व्यवस्था के फलस्वरूप एक नए वर्ग-सामन्त वर्ग-का उदय हुआ।

इस युग को सांस्कृतिक पुनर्जागरण का युग भी कहा जाता है। प्राचीन काल में जहाँ धर्म की प्रधानता थी, इस काल का आधुनिक तत्व वैज्ञानिक था। इस युग का बुद्धि और तर्क युक्त व्यक्ति मानवता को प्रधानता देता था। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण ही सती प्रथा, बाल विवाह, बल हत्या, विधवा विवाह, छुआछूत, नारी अशिक्षा आदि कुप्रथाओं के दमन के लिए प्रयत्न

हुए। पराधीनता के कारण राष्ट्रीय भावना की उत्पत्ति हुई और पाश्चात्य संस्कृति के प्रति तिरस्कार की भावना उत्पन्न होने लगी। भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के कारण सत्य एवं अहिंसा का तत्व जन जन में व्याप्त होगया एवं गाँधी चिंतन को अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त हुई।

प्रेमचन्द युग में जिन तत्वों को लेकर औपन्यासिक प्रवृत्तियों को शुरु किया गया था उनका चरमोत्कर्ष प्रेमचन्दोत्तर युग में ही हुआ। देश आज़ाद होगया। ज़मीन्दारी प्रथा एवं छुआछूत को कानून के माध्यम से रोका गया। गाँधी चिन्तन का अभ्यास पक्ष विनोबा ने ले लिया। शिक्षा हेतु योजनाएँ बनीं। गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का यत्र तत्र समावेश उपन्यासों में दिखाई दिया है। देवेन्द्र सत्यार्थी का दूधगाछ, शान्तिप्रिय द्विवेदी का 'दिगम्बर', गुरुदत्त का 'ममता', इलाचन्द्र जोशी का 'मुक्तिपथ', दुर्गाशंकर मेहता का 'अनबुझी प्यास', रामेश्वर शुक्ल अंचल का 'नई इमारत', जैनेन्द्र कुमार का 'परख', अज्ञेय का 'शेखरः एक जीवनी' आदि उपन्यासों में गाँधी जी के आदर्शों को सशक्त रूप से चित्रित किया गया।

सत्य की महिमा का प्रतिपादन 'दूधगाछ' उपन्यास में हुआ है। 'गोविन्दन' नामक पात्र अपने पिताजी की बातों को दोहराते हुए कहता है कि-"हमारे भीतर जो बीज है, जो सत्य है, उसे पहचानो और उसी का विकास करो।"[1] 'दिगम्बर' उपन्यास के यह वाक्य देखिए - "मिट्टी के साधो, मिट्टी ही सत्य है, शिव है, सुन्दर है, मिट्टी ही शरीर है, मिट्टी ही आत्मा है, मिट्टी ही परमात्मा है।"[2] गाँधी जी के लिए भी सत्य ही ईश्वर है उसके सिवाय पूजने के लिए कोई दूसरा ईश्वर नहीं है।

1. देवेन्द्र सत्यार्थी - दूधगाछ, पृ. 37
2. डॉ. अरुणा चतुर्वेदी - गाँधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, पृ. 279

गाँधी जी ने अस्पृश्यता को मिटाने के लिए अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित किया। गुरुदत्त कृत 'ममता' उपन्यास में इसी तथ्य का संकेत दिया है कि यदि निम्न वर्ग की लड़कियाँ उच्च वर्ग के परिवारों में बहू बनकर चली जाए तो इस दिशा में परिवर्तन ज़रूर होगा। 'ममता' उपन्यास में प्रस्तुत सन्दर्भ का उल्लेख यों मिलता है - "परन्तु बहु ! तुम म्लेच्छ नहीं हो। मैंने पहले भी एक दिन बताया था कि तुम मेरे लड़के की बहू हो, इस कारण मेरे घर का एक अंश हो और मेरे घर में कोई म्लेच्छ नहीं रह सकता।"[1]

गाँधी जी के अनुसार पुरुष के समान स्त्री को अधिकार दिलाने के लिए समाज को संघर्षरत होना चाहिए। इलाचन्द्र जोशी कृत 'मुक्तिपथ' उपन्यास इसका एक सटीक उदाहरण है। इस उपन्यास में एक ऐसी स्त्री का चित्रण किया गया है जो यह मानती है कि रूढिवादी परंपराओं को तोड़कर जीवन में संघर्ष करके स्वावलंबन हासिल करना है। वह कहती है - "आज का समाज विकसित हो रहा है, उसकी सामाजिक मान्यताएँ बदल रही हैं, इसलिए यदि विधवा साहस करके प्राचीन बन्धनों को तोड़कर बाहर निकल आये, तो समस्त विश्व में कोई भी उसका रास्ता नहीं रोक सकता।"[2] गाँधी जी ने स्त्रियों को आगे बढने का आह्वान दिया। वे उन सभी कुरीतियों के खिलाफ थे जो स्त्री को बाँध देती थीं।

गाँधी जी ने किसानों एवं श्रमिकों को समाज का अटूट हिस्सा माना। किसानों के आर्थिक एवं बौद्धिक विकास के लिए अनेक उपाय बताये गए।

1. गुरुदत्त - ममता, पृ-. 47
2. इलाचन्द्र जोशी - मुक्तिपथ, पृ. 230

किन्तु यह उतना कारगार सिद्ध नहीं हो पाया। इसका पमुख कारण है किसानों व श्रमिकों का संगठित एवं जाग्रत न होना। जब तक स्वयं किसान व श्रमिक वर्ग स्वयं संगठित एवं जाग्रत नहीं होंगे, तब तक उनके सुधार के लिए दूसरे लोग जो भी योजनाएँ बनायेंगे, वे सफल नहीं होंगे। उपन्यासकार दुर्गाशंकर मेहता ने अपने उपन्यास 'अनबुझी प्यास' में राष्ट्रीय स्तर पर कृषक वर्ग की जागृति पर इशारा किया गया है- "किसान अपनी किस्मत ज़रूर फेर सकता है। 35 करोड़ में से वे 26 करोड़ हैं। बताओ तो सही, 26 करोड़ का आठवाँ भाग भी यदि सिर ऊंचा कर दे, तो किसकी ताकत है कि उसे दबा सके? किसका सामर्थ्य है कि उसका सामना कर सके? यह शेषनाग जब तक सोता रहता है, तभी तक खैर समझो। जिस दिन वह जागेगा, इस देश की ओर से छोर तक हिला देगा। रुस के किसान और मज़दूरों ने वहाँ का राज उलट दिया। ऐसा ही होगा। सारी दुनिया में किसानों और मज़दूरों का राज होके रहेगा।"[1] इस कथन पर भवानी नामक पात्र सोचता है- "जो रुस में हुआ, क्या एक दिन यहाँ न हो सकेगा? लगभग उतना ही बड़ा देश है, बल्कि आबादी में यह बड़ा है। किसानों की हालत भी वैसी ही खराब है। परन्तु यह बात नहीं है। इन्हें अपनी शक्ति का भान नहीं है। महात्मा जी ने कानों में मंत्र तो फूँका है, पर वह अभी तक पूरी तरह बैठा नहीं है।"[2] गाँधी जी ने यह स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था कि श्रमिकों को उनका पारंपरिक श्रम तथा किसानों को उनका फल अवश्य मिलना चाहिए।

इस युग के उपन्यासकार अज्ञेय ने भी गाँधी जी के स्वदेशी भावना को

1. डॉ. अरुणा चतुर्वेदी - गाँधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, पृ. 205
2. वही

अपने उपन्यास 'शेखरः एक जीवनी' के माध्यम से व्यक्त किया है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र शेखर स्वयं गाँधी जी के असहयोग एवं स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित है और वह विदेशी वस्तुओं का त्याग करता है - "असहयोग की लहर आई और देश उसमें बह गया। शेखर भी उसमें बहने की चेष्टा करने लगा और जब नहीं बह पाया, तब हाथों से खेकर अपने को बहाने लगा... उसने विदेशी कपड़े उतार कर रख दिये, जो चार मोटे देशी कपड़े उसके पास थे, वही पहनने लगा।"[1] इस प्रकार इस काल में भी गाँधी जी के आदर्शों की स्वीकृति हुई। गाँधी जी के विचारों को हथियार के रूप में इस्तेमाल करके जीवन को सुखद बनाने की चेष्टा हुई।

2.6 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में गाँधी चिन्तन

हिन्दी उपन्यास के इतिहस के चतुर्थ विकास काल स्वातंत्र्योत्तर युग से अभिहित है। इसकी समय-सीमा सन् 1947 से लेकर 1985 तक माना जा सकता है। यह समय भारत के इतिहास की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण था। 15 अगस्त 1947 का दिन देश के इतिहास में एक नया मोड लेकर आया। इसके साथ ही विभाजन की समस्या ने जन साधारण को झकझोर दिया। एक ओर खुशी की शीत लहर उमड रही थी तो दूसरी तरफ विस्थापन की पीड़ा। कुछ समय पश्चात देश में विकास की अनेक दिशाएँ स्पष्ट हुईं। संयुक्त परिवारों का एकाकी परिवारों में बदलना, किसानों का श्रमिक बनने हेतु रोज़गार की तलाश में शहरों की ओर रुख करना आदि परिवर्तनों से

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी, पृ. 111

सामाजिक व्यवस्था में स्पष्ट बदलाव देखने को मिला। शिक्षा के व्यापक प्रसार ने हाशियेकृत समाज को पीछे न छोड़कर आगे बढाया। इससे आधी आबादी भी अछूती न रही। शिक्षा से उसे स्वतंत्रता के साथ साथ स्वावलंबन भी प्राप्त हुआ। देश के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को अपनाया गया। वर्गविहीन शोषणमुक्त समाजवादी समाज की स्थापना के लिए भारत की जनता ने संविधान को आत्मार्पित किया। देश के लगभग सभी बडे नेताओं ने स्वतंत्र भारत की चुनौतियों के समाधान के लिए गाँधी चिन्तन की व्यावहारिक उपयोगिता स्वीकार की। स्वतंत्रता प्राप्ति तक आते आते गाँधीजी का महत्व कम होता दिखाई देता है। गाँधी जी के विचारों के स्थान पर योरोपीय विचारों का महत्व बढ गया। गाँधी जी की हत्या, मतलब भारत में गाँधीजी की अप्रासंगिकता है। प्रत्येक क्षेत्र से गाँधी जी निकाले गए। इसलिए इस समय लिखे गए उपन्यासों में गाँधी के नाम पर भ्रष्टाचार चलानेवाले लोग अधिकांशतः दिखाई देते हैं। 'मैला आंचल' में बावनदास की हत्या गाँधी जी को लोग अप्रासंगिक मानने का दृष्टन्त है। 'राग दरबारी' का वैद्य गाँधी के नाम पर भ्रष्टाचार चलाता है। इस प्रकार गाँधी जी का दुरुपयोग करते हुए स्वदेशी भावना एवं मूल्यों से दूर जानेवाले समाज, राजनीति आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों का पतनोन्मुख स्वरूप कई उपन्यासों का विषय बन गया। लेकिन इधर-उधर कुछ उपन्यासों में गाँधी के कुछ विचार बहुत कम मात्रा में प्रयुक्त होता दिखाई देता है।

आधुनिक समाज ने गाँधी को लगभग या फिर पूरी तरह से भुला

दिया। 'मैला आँचल' का बावनदास स्वतंत्र भारत के लिए चिन्तित है। एक ओर गाँधी की हत्या और दूसरी ओर स्वतंत्र देश की स्थिति से वह परेशान हो जाता है। बालदेव द्वारा हाल-समाचार पूछने पर वह कहता है - "हाल क्या सुनियेगा ! अब सुनना-सुनाना क्या है ! रामकिसुन आसरम में भी हरिजन-भोजन होगा।... सिवनाथ बाबू आये है पटना से।.... संसाक जी परांती सभापति हो गये हैं, वह भी पटना में ही रहेगें। एमेले लोग तो हमेशा वहीं रहते हैं। ..... सुराज मिल गया, वह क्या है।... छोटन बाबू का राज है। एक कोरी बेमान, बिलेक मारकेटी के साथ कचेहरी में घूमते रहते हैं। हाकिमों के यहाँ दाँत सिटकाते फिरते हैं। सब चौपट होगया...।"[1] गाँधी जी की तरह ही बावनदास को भी मार दिया जाता है। अनीति के खिलाफ आवाज़ उठाने पर दुलार चन्द कापरा द्वारा बावनदास को मिटा दिया जाता है।

'राग दरबारी' उपन्यास का पात्र 'वैद्य' जी पूर्ण रूप से भ्रष्ट है। "अंग्रेज़ों के ज़माने में वे अंग्रेज़ों के लिए श्रद्धा दिखाते थे। देसी हुकूमत के दिनों में वे देसी हाकिमें के लिए श्रद्धा दिखाने लगे। वे देश के पुराने सेवक थे। पिछले महायुद्ध के दिनों में, जब देश को जापान से खतरा पैदा होगया था, उन्होंने सुदूर-पूर्व में लड़ने के लिए बहुत से सिपाही भरती कराए।... पहले भी वे जनता की सेवा जज की इजलास में जूरी और असेसर बनकर, दीवानी के मुकदमों में जायदादों की सिपुर्ददार होकर और गाँव के ज़मीन्दारों में लंबरदार के रूप में करते थे। अब वे कोऑपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डायरेक्टर और कॉलिज के मैनेजर थे। वास्तव में वे इन पदों पर काम नहीं

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ. 289

करना चाहते थे क्योंकि उन्हें पदों का लालच न था। पर उस क्षेत्र में जिम्मेदारी के इन कामों को निभानेवाला कोई आदमी ही न था और वहाँ जितने नवयुवक थे, वे पूरे देश के नवयुवकों की तरह निकम्मे थे; इसलिए उन्हें बुढ़ापे में इन पदों को सँभालना पड़ा था।... गाँधी की तरह अपनी राजनीतिक पार्टी में उन्होंने कोई पद नहीं लिया था क्योंकि वे वहाँ नये खून को प्रोत्साहित करना चाहते थे; पर कोऑपरेटिव और कॉलिज के मामलों में लोगों ने उन्हें मजबूर कर दिया था और उन्होंने मज़बूर होना स्वीकार कर लिया था।"[1] इस प्रकार शुक्ल जी ने व्यंग्यात्मक ढंग से वैद्य जी का चरित्र चित्रण किया है जो समाज - सुधारक का वेश धारण करके अपनी भ्रष्ट नीति चलाता है। इस प्रकार तत्कालीन उपन्यासों में गाँधी जी के आदर्शों को सामने रखकर पीछे से भ्रष्टाचार खेलते हुए समाज को खोखला करनेवाले बहुत से लोग समाज में मौजूद थे। गाँधी के आदर्शों को जीवन की कसौटी बनाने के बदले उसको स्वार्थ जनित आकाँक्षाओं की पूर्ति के लिए अपनाने लगे।

2.7 समकालीन हिन्दी उपन्यासों में गाँधी चिंतन

हिन्दी उपन्यास धारा समकालीन समय तक आते आते अपने बहुआयामी परिदृश्य का द्योतक बनता गया। सही अर्थों में अपने समय की वास्तविकता का उद्‌घाटन करते हुए इसका क्षेत्र विशाल होता गया। हिन्दी उपन्यास जगत् का क्षेत्र पहले भी विशाल, व्यापक धरातल पर चलता आया है किन्तु समकालीन समय की सच्चाई, उसका यथार्थ पूर्व के कलेवर से कुछ ज़्यादा

---

1. श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी, पृ. 31-32

ही अन्तर रखने वाला है। यह इसलिए कि समकालीनता में तत्कालीन समय बोध का चित्रण होता है। यहीं नहीं यह एक प्रकार की जीवन दृष्टि है। इसका मूल स्वर 'प्रतिरोध' का है। समकालीन जीवन संघर्षपूर्ण हो गया है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि सिर्फ समकालीन जीवन ही संघर्षमय है। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक युग की अपनी समकालीन सोच है। इस प्रकार तत्कालीन रचनाकार भी अपने उस समकालीन सोच पर निर्भर हो जाता है तथा वह अपने नित परिवर्तित सामाजिक यथार्थ को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति देता है।

समकालीनता में उन अनछुए प्रवृत्तियों को स्थान मिला जिस को कुछ समय पहले तक नगण्य समझा जाता था। इसलिए समकालीनता में विविधता को अपनाया गया। इस प्रकार समकालीन हिन्दी उपन्यास में 'प्रतिरोध' का स्वर गूंजने लगा। अब यह सोचा जा सकता है कि अचानक साहित्य में प्रतिरोध का स्वर गूँजने क्यों लग गया? स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने जिन जिन सपनों को साक्षात् हो जाने का सपना देखा था एक-एक करके उन पर पानी गिरता गया। जिस धरातल पर देश को आगे बढ़ना था उसको भुलाकर पाश्चात्य नीति को अपनाया गया। नव साम्राज्यवादी ताकतों के आने से विश्व भर में विज्ञान व तकनीक का विस्फोट हुआ। भारत में भी पश्चिमी विकास नीति के चलते अपने पुरातन संस्कृति, परंपरा, जीवन दृष्टि एवं मूल्यों को बाबा आदम के ज़माने की सोच का नाम दे दिया गया। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों से

भारत ने इण्डिया तक का फांसला तय किया है। भारत नेपथ्य में चला गया और एक नवीन इण्डिया का उदय हो गया है। इस नवीन परिस्थिति में जीवन इतना जटिल एवं संघर्षशील हो गया है कि मनुष्य का मूल्य ही गिर गया है। बाज़ार ने अपना एक ऊँचा स्थान पा लिया, जहाँ सिर्फ और सिर्फ पूँजी का ही महत्व रह गया है।

समकालीन हिन्दी उपन्यास जटिल होते जा रहे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को अपनी पैनी एवं सूक्ष्म दृष्टि से परखने की क्षमता रखता है। 'विद्रोह' आज के ज़माने का स्वर बन गया है। आर्थिक विसंगतियों, धार्मिक भेदभावों, सामाजिक विकृतियों पर कड़ा प्रहार करते हुए समकालीन हिन्दी उपन्यासों ने प्रतिरोध का रस्ता चुना है। इस प्रकार समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री, दलित, आदिवासी, प्रकृति, अल्पसंख्यक आदि अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में नवीन चिंतनधारा का प्रदर्शन हुआ है जिसके तहत हाशिए पर रखे गए लोगों को भी अपना संघर्ष करने का अवसर प्राप्त हुआ है। विमर्श के जिस दौर में साहित्य ने अपना कदम बढ़ाया है उसी दौर में समकालीन हिन्दी उपन्यास भी कुछ पीछे नहीं है। समकालीन हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियों के रूप में गाँधी चिंतन, विस्थापन की समस्या, पारिस्थितिक विमर्श, बाज़ारवाद, नव औपनिवेशिक ताकतें, भूमंडलीकरण, स्त्री, दलित, आदिवासी, किसान, मज़दूर, भ्रष्ट राजनीति, मुनाफावाद आदि

को माना गया है।

तत्कालीन विचारधारा रहित समाज के लिए गाँधी चिन्तन की उपयोगिता पर पुनःव्याख्यायित करना समय की आवश्यकता बनकर खडी है। विभिन्न प्रकार की समस्याओं से उलझे हुए वर्तमान समाज को एक नयी राह प्रदान करने की दृष्टि से गाँधी चिंतन का पुर्नपाठ अति आवश्यक प्रतीत हो रहा है। इस ओर नयी पीढ़ी को सोचने के लिए मज़बूर किया जाना ज़रूरी है। तभी वे समझेंगे कि भारतीय अस्मिता, उसके अस्तित्व को लौटाने में गाँधी जी का रास्ता ही वह एकमात्र रास्ता है जिस पर चलकर अतीत के गौरव को पुनःप्राप्त कर सकते हैं। गाँधी चिंतन के आदर्शों पर चलकर एक स्वावलंबी, आत्मनिर्भर ओजपूर्ण संस्कृति से युक्त दृढ राष्ट्र की स्थापना की जा सकती है। हमें अपने विकास के लिए पश्चिम की ओर देखने की ज़रूरत नहीं है अपितु गाँधी चिंतन में वे सभी तत्व मोजूद हैं जिन से सतत विकास की राह पर चला जा सकता है। आगे के अध्यायों में समकालीन हिन्दी उपन्यासों में प्रयुक्त गाँधी विचारों की व्याख्या की गई है। इसके लिए चुने गए मुख्य उपन्यास गिरिराज किशोर का 'पहला गिरमिटिया', 'बाँ', 'परिशिष्ट'; अलका सरावगी का 'कलिकथाः वाया बाइपास', 'शेष कादम्बरी'; अखिलेश का 'निर्वासन'; कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान'; वीरेन्द्र जैन का 'डूब', 'पार'; चित्रा मुद्‌गल का 'आवां'; मैत्रेयी पुष्पा का 'इदन्नमम'; संजीव का 'फाँस'; श्रीलाल शुक्ल का 'बिस्रामपुर का संत'; रवीन्द्र वर्मा का 'निन्यानवे', 'घास का पुल'; राजेन्द्र मोहन भटनागर का 'अंतिम सत्याग्रही'; अमरकान्त का 'इन्हीं हथियारों से'; मधुकर गंगाधर का 'जय गाथा'; भीमसेन त्यागी का

'ज़मीन'; भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़'; पंकज सुबीर का 'अकाल में उत्सव'; पुरुषोत्तम अग्रवाल का 'नाकोहस'; शिवमूर्ति का 'आखिरी छलाँग' आदि हैं।

2.8 निष्कर्ष

संपूर्ण अध्ययन के विवेचन एवं विश्लेषण के पश्चात यह कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में गाँधी-विचारधारा की प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में विद्यमान सत्य एवं अहिंसा को अपना आदर्श बनाते हुए गाँधी जी का आगमन एक बहुत बडी घटना थी। जिस से प्रभावित होकर उपन्यासकारों ने अपनी प्रतिनिधि औपन्यासिक कृतियों में गाँधी चिंतन की महत्ता को सिद्ध किया। पूर्व प्रेमचन्द युग में गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को उनकी विचारधारा के रूप में नहीं बल्कि मानव जीवन में प्रयुक्त होने वाले शाश्वत मूल्यों के रूप में चित्रित किया है। इस काल में गाँधी विचारधारा के तत्वों का परोक्ष रूप से अभिव्यक्ति हुई है। गाँधी जी का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष प्रभाव प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में परिलक्षित होता है। यह युग अनेक परिवर्तन, क्रान्ति एवं नवजागरण का युग था। गाँधी जी के आगमन से समाज में बहुत बड़ी क्रान्ति हुई। इस परिवर्तन से उपन्यासकार भी अछूते नहीं रहे। गाँधी जी के आदर्शों को उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में व्यापक परिवर्तन होने लगा। गाँधी जी और उनके सिद्धान्त आम जनता से दूर होते गये।

राष्ट्रभक्ति एवं समाज सेवा कहीं नेपथ्य में चली जा रही थी। स्वार्थपरक जीवन के लिए सारे सिद्धान्तों को ताक पर रख दिया। समाज आधुनिक बोध से ग्रस्त होकर मानवीय मूल्यों से हटकर वैयक्तिक सुख एवं लाभ की प्राप्ति की ओर रुख कर गया। गाँधी वास्तविकता से निकल के सिद्धान्त और पुस्तकों का हिस्सा भर ही रह गये। लेकिन 1980 के बाद गाँधी पुनः साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगे। गाँधी जी की स्थानीयता, बहुलता का सिद्धान्त, स्त्री एवं प्रकृति केन्द्रित विचार समकालीन साहित्य की बुलंद आवाज़ बन गए। यह आज की माँग है। भौतिकतावादी समाज, मूल्यविहीन जन चेतना के दौर में गाँधी चिन्तन का पुनर्पाठ आवश्यक प्रतीत होता है। उपनिवेशिक दौर की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ कमोबेश रूप में नव उपनिवेशी दौर में भी हमारे सामने आ खडी हुईं हैं। इन सबका समाधान गाँधी चिन्तन में मौजूद है। समकालीन उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से इसकी अभिव्यक्ति दी है। इन उपन्यासों में गाँधी कभी कुछ पात्रों, कभी कुछ प्रतीकों के माध्यम से तो कभी रचनाकारों के विचारों के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्शाते हैं।

❖ ❖ ❖

तीसरा अध्याय

सामाजिक एवं लोकतंत्रीय व्यवस्था में गाँधी चिंतन

सामाजिक एवं लोकतंत्रीय व्यवस्था में गाँधी चिंतन

समाज से तात्पर्य है - 'व्यक्तियों का समूह'। समूह में रहनेवाले व्यक्तियों के अन्तर संबन्धों के फलस्वरूप समाज का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो समाज सर्वव्यापी है अर्थात् जहाँ जीवन है वहाँ संबन्ध है और जहाँ संबन्ध है वहाँ समाज पाया जाता है। वास्तव में समाज पारस्परिक संबन्धों की संपूर्णता का बोध कराता है। एक सुव्यवस्थित, पारस्परिक संबन्धों की वह व्यवस्था जिसमें रह रहे व्यक्तियों के आपसी सहयोग सम्मिलित रहता है। इसी परिवर्तनशील व्यवस्था को हम समाज कहते हैं।

समाज की अपनी विशिष्ट प्रकृति एवं विशेषताएँ होती हैं। यहीं समाज व्यक्ति को सामाजिक बनाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है - का कथन हम बरसों से सुनते आ रहे हैं। मानव को मानव बनाने का कार्य समाज ही करता है। समाज में रहनेवाला हर व्यक्ति अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहता है। इसलिए मनुष्य में सामाजिकता की प्रवृत्ति समाज में रहने से ही प्राप्त होता है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर आश्रित है। व्यक्ति समाज का ही अंग है।

समाज हर प्रकार के व्यक्तियों का समुच्चय है। समाज को अगर वर्गों में बांटा जाता है तो तीन वर्गों में रखा जा सकता है। जिसमें प्रथम कोटि में उच्च वर्ग है जिसके पास राज्य के अधिकतम संसाधनों का स्वामित्व है तथा दूसरा मध्य वर्ग है जो आधारभूत सुविधा वाले हैं और अन्त में निम्न वर्ग जो संपत्तिविहीन एवं साधनविहीन वर्ग है।

भारतीय समाज विविधताओं का समूह है। चूँकि भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसलिए गाँधीजी ने गाँवों की ओर लौटने का आह्वान दिया। भारत की आत्मा गाँवों में बसा हुआ है। गाँधी जी ने भारत का विकास गाँवों के विकास के माध्यम से चाहा था। किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् हुए बदलाव ने उनकी इस सोच को हाशिये में कर दिया। समाज कई प्रकार की विद्रूपताओं का शिकार होता गया। समकालीन भारतीय सामाजिक संरचना काफी सीमा तक ब्रिटीश शासन के परिणामस्वरूप हुए परिवर्तनों की झलक है। वर्तमान भारतीय समाज अपनी परंपराओं की सीमाओं को लाँघकर एक नवीनतम संस्कृति की ओर उन्मुक्त हो रहा है जिसमें भारतीय संस्कृति के पुरातन तत्व छूट रहे हैं। उसमें पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण बढता जा रहा है। कहने के लिए भारत ऊर्फ 'इण्डिया' शाइन कर रहा है किन्तु क्या यह चमक वास्तव में असली है या बर्बादी की ओर इशारा करनेवाला है। भारतीय समाज आज एक भीषण स्थिति से गुज़र रहा है। इस स्थिति से बचने का रास्ता खुद उसकी संस्कृति में मौजूद है। इस पर गौर करना वर्तमान समय की माँग है।

3.1 सामाजिक व्यवस्था के बदलते स्वरूप

इक्कीसवीं सदी का यह समाज कहने के लिए आधुनिक, सभ्य समाज बन गया है किन्तु उसने सच्चे अर्थों में अपना वजूद खो दिया है। प्रत्येक समाज समय के चलते परिवर्तित होता रहता है। यह परिवर्तन सकारात्मक भी हो सकता है या नकारात्मक भी। जिस भारत की कल्पना

देश के कर्णधार और राष्ट्रनिर्माताओं ने किया था, आज उनका सपना हकीकत में कुछ और बनकर खड़ा है। विदेशी अंधानुकरण ने समाज को पूरी तरह से बदलकर रख दिया। यूरोपीय संस्कृति के तहत पनपी पूँजीवादी औद्योगीकरण के बढ़ते दुष्प्रभाव के कारण भारतीय समाज में भारी परिवर्तन नज़र आने लगे। पाश्चात्य संस्कृति भारतीय संस्कृति पर हावि होती गयी। स्वतंत्रता से पहले जिस भारत की कल्पना की गई थी उसका वर्तमान भारत से कोई लेना-देना नहीं रहा। स्वतंत्रता की प्राप्ति से जितनी खुशी थी लोगों में, अपना राष्ट्र, अपने लोगों का राज होगा जैसे सपने पल भर में समाप्त हो गया।

'डूब' उपन्यास में विकास के नाम पर सामाजिक व्यवस्था के बदलते स्वरूप का ही चित्रण हुआ है। विकास की बाढ़ में एक पूरा जन समूह किस प्रकार शिथिल हो जाता है - का सशक्त रूप से वर्णन मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में लोगों की स्वतंत्रता प्राप्ति पर अत्यधिक उत्साह एवं आनन्द का चित्रण किया गया है। गाँववालों को स्वतंत्रता प्राप्ति की खबर देते हुए मास्साव कहता है -"अब हर गाँव की तरक्की होगी। पक्कि गढ़मात (सड़क) बनेगी, मोटर चलेगी। फर्र से बैठो, फर्र से चदंई मूँगावली पहुँचा। न उसमें बैलों की ज़रूरत, न चारे की दरकार।"[1] गाँव में एक आशा की लहर उमड़ती है। क्योंकि अब अंग्रेज़ों का सरकार नहीं बल्कि अपने लोगों की सरकार आएगी। जो सबको गरीबी से मुक्त कर देंगे। स्वाधीन भारत का लक्ष्य अपने उजड़े गाँवों को और वहाँ के लोगों की ज़िन्दगी को उभारना था।

---

1. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 54

गाँधी जी के नेतृत्व में जिस पूर्ण स्वराज्य की कल्पना की गई थी इसका अर्थ समूचे ग्रामों का विकास ही था। इसलिए लोग खुश थे क्योंकि अब उनका जीवन, उनका भविष्य स्वर्णिम हो जाएगा। 'ज़मीन' उपन्यास में भी गाँवों के विकास तथा उसकी उन्नति पर गाँववाले सोचते हैं कि आज़ादी के पश्चात सब कुछ सही हो जाएगा। वे कहते हैं - "कैसे आएगी आज़ादी? अपने नेता राज करेंगे! और सब कुछ बदल जाएगा। लोगों के मन बदल जाएंगे। कोई किसी को नहीं सताएगा। सब सुख से रहेंगे।"[1] इससे यह बात सामने आ जाती है कि स्वतंत्रता ने गाँववालों के मन में एक सकारात्मक भावना को जन्म दिया। एक सुनहरे भविष्य की कामना, अपने दुख दर्द से मुक्ति, शोषण का मिटना, गरीबी का शमन जैसे कई सपनों से सजे ग्रामवासियों के मन की तीव्र इच्छा उपरोक्त वक्तव्यों में परिलक्षित है। गाँधी जी ने जिस रास्ते पर चलना सिखाया, उन के लिए ग्रामवासी उनका स्मरण करते हुए कहते हैं - "धन्न भाग! बापू, आज तुम्हारा सपना पूरा हो गया। तपस्या फल गयी। अब सुराज आ जाएगा। सबके दुख दलिद्दर दूर हो जाएँगे।"[2] गाँधी जी ने जिस प्रकार का समाज चाहा था आज उसको पाने का समय आ गया है। किन्तु आज़ादी के पश्चात् ये सारी आशाएँ एक एक करके टूटने लगी। जिस सुखद, उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की गई थी वह धीरे धीरे ओझल होने लगा। समाज परिवर्तित होने लगा।

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। इसमें गाँधी के विचारों से प्रभावित अनेक पात्र हैं। 'सुरंजन

1. भीमसेन त्यागी - ज़मीन, पृ, 8
2. वही - पृ. 14

शास्त्री' इसी प्रकार का एक पात्र है। वे कहते हैं - "हम अपने प्रखर विचार और निरन्तर परिश्रम द्वारा जातिवाद, संप्रदायवाद, अस्पृश्यता, गरीबी, अन्याय सब कुछ मिटा देंगे। हम देश में पोंगू, पेटू और अजगरी व्यवस्था नहीं चाहते। हमें निजी स्वतंत्रता के ख्वाबों में रहनेवाले आरामतलब और चालाक लोग नहीं चाहिए। हम ऐसा जनतंत्र चाहते हैं, जिसमें सभी परिश्रम करें और एक-दूसरे की स्वतंत्रता, एक दूसरे के विकास के लिए कार्य करें।"[1] सामाजिक व्यवस्था का ऐसा रूप जिससे राष्ट्र का समूचा विकास संभव हो पाएगा, गाँधी जी का उद्देश्य रहा। लेकिन इस भावना को आगमी समय ने तोड़ डाला।

एक आधुनिक भारत की नींव पडी। किन्तु यह इतना आसान कार्य भी नहीं था। आज़ादी की लड़ाई ने संपूर्ण मानव समाज को यह समझाया कि जाति व्यवस्था कितना घातक है। विभाजन इसी का नतीजा है। विभिन्न रियासतों में बँटे, विभिन्न धर्मों में बिखरे लोगों को एक सूत्र में बाँधने की कोशिश हुई। प्रजातंत्र एवं समानता के मूल्यों से अवगत जनता ने पहली बार 'स्वतंत्रता' को पहचाना। किन्तु स्वाधीन भारत ने जिसके बल बूते पर आज़ादी को प्राप्त किया था, उसी गाँधी जी के सपनों के विरुद्ध राज्य की सरकार ने अपना रवैया उठाया। कुछ ही अन्तराल में असलियत से सामना हुआ। नेहरू का गद्दी में बैठना, समाजवाद को अपनाना आदि घटनाओं से भारतीय समाज के लिए देखे गये गाँधी जी के सपनों का नामोनिशान मिट

1. अमरकान्त - इन्हीं हथियारों से, पृ. 83

गया। 'कलि-कथाः वाया बाइपास' उपन्यास में किशोर बाबू द्वारा अमोलक के विचारों को स्पष्ट करते हैं कि "सारे अंग्रेज़ों के पिट्ठू और दलाल गाँधी-टोपी पहनकर कांग्रेस में घुस आए हैं। नेहरु ने वे सारे अफसर भी ज्यों-के-त्यों रख लिए हैं, जिन्होंने अंग्रेज़ों के साथ मिलकर हम पर जुल्म किए थे।"[1] गाँधी के विचारों का बहिष्कार करके एक नवीन राष्ट्र के निर्माण में लगे सत्ताधारियों ने समाज को ही बदलकर रख दिया। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो स्वतंत्र भारत के लिए गाँधी केवल महात्मा बनकर रह गए। खुद काँग्रेस ने गाँधी के विचारों की उपेक्षा की। उनको गाँधी जी के विचार आउटडेटड लगने लगे।

3.2 स्वार्थ केन्द्रित जीवन

समाज में परिवर्तन होना एक आम घटना है। किन्तु आज भारतीय समाज में इतना बदलाव आ चुका है कि वह स्वार्थ पर आधारित हो गया है। केवल 'मैं' पर आधारित हो गया है। 'निर्वासन' उपन्यास में यहीं कहा गया है कि "दूसरों की खुशी केलिए मिटना ही ऊँचे उठना है, दूसरों को खुशी देने में ही सच्ची खुशी है लेकिन इधर का फंड़ा ये हैं कि अपनी मस्ती। अपने सुख केलिए हज़ारों को तकलीफ पहुँचाना पड़े, कोई प्रॉब्लम नहीं। विकास और आज की सभ्यता का भी यही शऊर है कि आनेवाली पीढ़ियों और आनेवाले समय के बारे में मत सोचो। आज सब दुह लो । भविष्य अंधकार का सामना करेगा करने दो। अपना भला कर लो।"[2] प्रस्तुत उपन्यास में

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 161
2. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 226

सूर्यकान्त नामक पात्र का चाचा के कहे गए ये वाक्य असल में सच्चाई का ही द्योतक है। आज समाज में 'हम' नहीं केवल 'मैं ही मैं' में समा गया है। स्वार्थ इतना बढ़ गया है कि मानवता नामक चीज़ ही नहीं रह गयी। गाँधी जी ने हमें यह सीख दी थी कि स्वार्थी मत बनो। उनका मानना था कि स्वार्थ आदमी को अंधा बना देता है।

समाज के बदले हुए रूप को दर्शाते हुए 'अन्तिम सत्याग्रही' उपन्यास में नगारा नामक पात्र उभर आता है। यह उपन्यास सत्याग्रह के बहाने स्वतंत्रता से पहले और बाद के समय की विडंबनाओं, मुश्किलों का चित्रण करता है। इसका नायक नगारा है। जो गाँधी जी के आदर्श पर चलनेवाला है। आज़ादी के पश्चात कई लोगों ने अपना चेहरा बदला, चरित्र बदला लेकिन यही एक अकेला व्यक्ति रहा जो नहीं बदला। सत्याग्रह को अचूक हथियार बनाकर उसने अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध जागरण किया। नगारा का संघर्ष ही उसका आत्मबल है, उसका संपूर्ण जीवन है। अतीत और वर्तमान के बीच की कड़ी बनकर उसका जीवन एक पेण्डुलम सा झूलता रहता है। स्वार्थी समाज पर टिप्पणी देते हुए नगारा बाबा से वंदना कहती है कि "न कैसे बाबा, आज के आपाधापी और स्वार्थ कुंठित युग में किसी के पास सत्य की अनुभूति केलिए समय कहाँ है। उनका सत्य तो छीना-छपटी से मिली निर्जीव सफलता है।"[1] संकुचित समाज आज भौतिकवादी एवं भोगवादी हो गया है। अर्थ तथा आत्मकेन्द्रित समाज में आज स्वार्थ,

1. डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर - अन्तिम सत्याग्रही, पृ. 125

ईर्ष्या आदि भावनाओं को ही ऊंचा स्थान प्राप्त हुआ है। 'पहला गिरिमिटिया' उपन्यास में गाँधी जी कोई महात्मा बनकर नहीं आए हैं। वे एक साधारण मनुष्य के रूप में समस्याग्रस्त लोगों की, गिरमिटों की सहायता करने हेतु आ जाते हैं। वास्तव में उनके अन्दर स्वार्थ की भावना लेश मात्र भी नहीं है। इसलिए उपन्यास में वे कहते हैं - "हमारी मान्यताएँ टूट रही है। मूल्य बिखर रहे हैं। सत्य विखण्डित हो रहा है। मनुष्य की गरिमा गिर रही है। परपीड़न बढ़ रहा है। उसमें लोगों को सुख मिलता है।"[1] मनुष्य अपने स्वार्थ को पूरा करने के लक्ष्य से इतना पशु समान होगया है कि उसमें मानवता नाम की चीज़ ही लुप्त होती जा रही है। स्वार्थ ने उसको अंधा कर दिया है।

3.3 संवेदनहीन समाज तथा जीवन मूल्यों का बिखराव

आज के परिवेश ने वास्तव में भयानक रूप धारण कर लिया है। नित-नए आविष्कारों ने मानव जीवन को सुखद एवं सुविधा जनक तो बना दिया है किन्तु वह आज यंत्रवत् बन चुका है। उसमें संवेदनशीलता नामक चीज़ घटती जा रही है। परिणामस्वरूप जीवन मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। आज वह सिर्फ और सिर्फ अपने बारे में ही सोचता है। दिखावटी जीवन को अपना सब कुछ माननेवाला मनुष्य आज भोगविलास को ही जीवन का आधार मानने लग गया है। समाज की इस दशा पर प्रकाश डालते हुए रवीन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यास 'निन्यानवे' में के.के. नामक पात्र का परिचय दे दिया था। के. के. आज की उपभोग संस्कृति का प्रतीक है। वह परिवार से बढ़कर

---

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 590

अपने लाभ पर ध्यान केन्द्रित करनेवाले व्यक्तियों का एक उचित उदाहरण बन गया है। उपन्यास में उद्धृत किया गया है कि "वह अम्मा-बाबू को एक छोटे से हॉल में ले गया जहाँ रोशनी थी। रोशनी में एक बेंच पडी थी। उसी बेंच पर अम्मा-बाबू को बिठाकर किन्ने कोठी में गायब हो गए। उसने अम्मा बाबू के पैर नहीं छुए। न वह लौटा। एक काला आदमी सफेद लिबास पहने आया और दो थालियों में खाना दे गया, जो उन्होंने बेंच पर बैठकर खाया जैसे हरिद्वार के रेलवे- प्लेटफार्म पर खाया था।"[1] यहाँ इस तथ्य को दर्शाया गया है कि के.के, के पिता को अपने बेटे के घर और रेलवे प्लेटफार्म में कोई फर्क महसूस नहीं होता। यही आज की सच्चाई है। कहते हैं कि माँ-बाप ईश्वर समान है। आज इसी जीते जागते ईश्वर की निन्दा हो रही है। यह सोचने की बात है । वाकई आधुनिक समाज में संवेदना नामक भावना खत्म हो चुकी है।

भारतीय समाज में हमेशा से ही जीवन मूल्यों को एक उम्दा स्थान दिया है। कोई भी परिवार, समाज या राष्ट्र इन जीवन मूल्यों के बिना जीवित नहीं रह सकता। इतना सब कुछ होने के बावजूद भारतीय सामाजिक व्यवस्था में मूल्यों का स्खलन हो रहा है। एक छद्म व्यवस्था अर्थात् पश्चिमी नकल के पीछे भाग रही नयी पीढी अपने मूल्यों को बीच रास्ते में ही छोड रही है। नैतिक मूल्यों के गिरावट से राष्ट्र अपना अस्तित्व खो सकता है। आज का यथार्थ भी यही है। आए दिन हो रहे परिवर्तन से लोगों को यह

1. रवीन्द्र वर्मा - निन्यानवे - पृ. 199

लगता है कि वह कुछ पा रहे हैं लेकिन सच्चाई यह है कि वह अपना सब कुछ खो रहा है। इसी यथार्थ का चित्रण 'बिस्रामपुर का सन्त' उपन्यास में हुआ है। भारतीय समाजिक मूल्यों के बिखरते प्रतिमान के रूप में इस उपन्यास को देखा जा सकता है। इस उपन्यास का पात्र कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह के चरित्र को मानव समाज के बिखरते आदर्श के रूप में रखा गया है। एक भोगवादी एवं सुखवादी पात्र के रूप में जयंतीप्रसाद पाठकों के सामने आता है। लेकिन अन्त में वह आत्महत्या करने पर आ जाता है। वह लिखता है कि - "इतनी लंबी ज़िन्दगी पर निगाह डालने के बाद मुझे कुछ भी नहीं लगता जिसके लिए आगे खींचा जाए। यह जीवन उतना ही व्यर्थ जान पड़ता है जितनी की मृत्यु। पर जीवन में व्यर्थता के साथ एक-एक दिन जीने का संकट जुड़ा है। इसलिए मैंने इस उबाऊ व्यर्थता की जगह सारी ऊब, सारे ऊहापोह खत्म करनेवाली मृत्यु की व्यर्थता को तरजीह दी है।"[1] भोगवादी रहे जयंती से आत्मग्लानि से पीडित जयंती तक के फाँसले को दर्शाया गया है। वह स्त्री देह भोगने की लिप्सा के कारण एक के बाद दूसरी चाहत और दूसरी के बाद तीसरी, अतृप्ति की स्थिति में भटकता रहता है। अन्त में आत्मग्लानि से पीडित जयंती अपने आपको को खत्म करता है। यहाँ मूल्यों का बिखराव ही हुआ है।

3.4 मानवता का ह्रास - अमानवीयता का तांडव

भीड़ भरे इस जीवन में मानव आत्मकेन्द्रित बनता जा रहा है।

1. श्रीलाल शुक्ल - बिस्रामपुर का सन्त, पृ. 201

आधुनिक समाज में अपने आपको सटीक बिठाने के लिए मनुष्य यांत्रिक बन गया है। आज सच्ची मानवता और सज्जनता लुप्त हो चुकी है। औद्योगिक क्रान्ति से जिस व्यवसायिकता की प्रतिष्ठा हुई उसने समस्त श्रेष्ठ मानवीय मर्यादाओं को समाप्त कर दिया। 'कलिकथाः वाया बाइपास' में वर्तमान समय की इसी हैवानियत को दर्शाया गया है - "आदमी की क्या कीमत है? कीड़े-मकोड़े की तरह मरते हुए लोग-लाखों लोगों के भूख और बिमारी से मरने की स्थिति जब आदमी ही आदमी केलिए पैदा कर दे, तब यह समझना चाहिए कि अब मनुष्यता केलिए थोडे से शब्द मनुष्य से बड़े हो गए हैं... यहाँ कोई अनावृष्टि नहीं हुई, कोई सचमुच का अकाल नहीं पड़ा - आदमी ने यह अकाल बना दिया आदमी केलिए।"[1] गाँधी जी मानवतावाद को संपूर्ण प्राणीमात्र के कल्याण की भावना के रूप में देखा करते थे। इसमें समस्त प्राणियों के लिए दया भाव निहित है। यही नहीं बल्कि मानवतावाद में सेवा, त्याग, कर्तव्य, आत्मसम्मान, प्रेम, अपरिग्रह, अहिंसा आदि भावों का समावेश होता है। इन सबको संरक्षित करना होगा। आज इससे निपटने के लिए अतीत में छोडे गए तथ्यों पर पुनःविचार करना होगा।

यांत्रिक सभ्यता से व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति मानवीय मूल्यों का हनन ही हुआ है। "आज लोग बस ऊपरी तड़क-भड़क, खाने-पीने, कपड़ों से माडर्न हैं और अन्दरूनी तौर पर खोखले।"[2] चाचा का यह वाक्य सौ फीसदी आज की स्थिति में वास्तविकता को दर्शानेवाला है। यही समाज का

---

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 147
2. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 228

सच्चा यथार्थ है। इसी का चित्रण शेष कादम्बरी में रूबी दी ने भी किया है। वह मन ही मन अपनी नाती द्वारा कंप्यूटर खरीदने तथा 'चैट' करने का प्रस्ताव सुनकर सोचती है कि - "जीते-जागते हाड़-मांस के चलते-फिरते लोगों से बात करने का ठिकाना नहीं, कंप्यूटर के स्क्रीन में आँखें घुसाए अनजाने-अनदेखे लोगों से बात करने की फुरसत तुम्हारी पीढ़ी को ही मुबारक हो।"[1] वास्तव में आज रिश्ते-नाते, मानवीय संबन्ध आदि बस यहीं तक सीमित हो गए हैं। हर किसी को जीवन जीने से मतलब है, चाहे उसमें नौतिकता हो या ना हो, चाहे आप मानवीयता भर्ते या नहीं, इसके बारे में सोचना हर कोई भूल गया है। यही आज की कड़वी सच्चाई बन गई है।

मानवता किस में है? यह सवाल सबको अपने आप से ही पूछना होगा। तब अन्तरात्मा से जवाब मिलेगा कि मानवता हम सबके अन्दर ही विद्यमान है। उसको परखने की ज़रूरत है। गाँधी जी ने हमें यही सिखाया था। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास का पात्र ब्रेव सोराब जी मानवीयता का मिसाल है। सैकड़ों गिरमिटियों को बचाने के वास्ते सोराब जी जनरल के घोड़े की लगाम पकड़ लेता है। उसने जनरल को खबरदार किया कि वे उन निरीह गिरमिटियों पर गोली न चलाये। एक अठारह साल के लड़के ने इस प्रकार से समझदारी का कार्य किया। पहले तो जनरल के तेवर चढ़ गये। बाद में जब उन्होंने पूछा कि "तुम बहुत हिम्मती हो। इतनी बड़ी जिम्मेदारी तुम किसके दम पर ले रहे हो?

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 145

मेरे पास तो प्रेम है....।

जनरल ने कहा, ठीक है, तुम अपना यह हथियार इस्तेमाल करके देख लो। यह कोई हथियार नहीं, जनरल! यह आस्था है, विश्वास है।"[1] मनुष्य के जीवन का लक्ष्य लोकमंगल की कामना है। दूसरे के दुःख दर्द को समझकर उसके अनुरूप दूसरों के साथ निभाने से ही उसका जीवन सार्थक होगा। इसके लिए मन में एक दूसरे के प्रति प्रेम भावना का होना अनिवार्य है। केवल अपने सुख की इच्छा मानव को मानवता से पृथक करती है। समाज को अपना परिवार मानकर चलने से ही मानवता की शाश्वत पूंजी पाया जा सकता है।

3.5 गाँव का टूटनाः शहर का बनना

विकास का क्रम इस बात का साक्षी है कि मनुष्य निरन्तर छोटे समुदाय से बड़े समुदाय में प्रवेश करता है। विकास की इस प्रक्रिया ने ही शहर, नगर आदि की स्थापना की है। अतः दूसरे शब्दों में कहा जाए तो शहरों की उत्पत्ति गाँवों से हुई है। यह एक सिलसिलेदार प्रक्रिया होती है। गाँवों का सर्वांगीण विकास तथा उसके द्वारा देश का उद्धार, यही गाँधी जी का सपना था। ज़मीनी स्तर से विकास करना ही व्यावहारिक है। किन्तु ऐसा नहीं हुआ, विकास आया ज़रूर परन्तु गाँवों को छुए बिना शहरों को सुधारता गया। फिर यह हुआ कि विकास से शहरों का आकर्षण बढ़ता गया और गाँवों का टूटना शुरु हो गया। बदलते सरकारों ने कई प्रकार की पद्धतियों

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 863

की घोषणा ज़रूर की, बजट में भी गाँवों का सुधार करने के उपाय निकाले गये किन्तु प्रायोगिक तौर पर इनका क्रियान्वयन ठप होता चला गया। एक ओर जहाँ शहरों में आधुनिक सुख सुविधाओं का भण्डार खुलने लगा वहीं दूसरी ओर गाँवों में आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना भी मुश्किल होता गया। 'पार' उपन्यास में सरकार जब बाँध बनाने की योजना बनाती है तो पूरे गाँव को ही अपना सब कुछ छोड़ छाड़कर जाना पड़ जाता है। अब लड़ैई डूब क्षेत्र नहीं रही। किन्तु "यहाँ लड़ैई में बनाएँगे अभयारण्य। जानवरों को बसाएँगे यहाँ । हमें खदेड़ेंगे।"[1] सरकार को बस अमीरों की पड़ी है। गरीब ग्रामीण जनता का कोई फिक्र करनेवाला ही नहीं रहा। उनको कभी भी कहीं से भी उठाकर फेंक दिया जा सकता है। पूरे गाँव को कंगाल कर सकता है। इसलिए कि इनके पास न तो पैसा है न ही अधिकार।

विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र वाले देश की बहुत बड़ी जनसंख्या गाँवों में रहती है। गाँवों से ही देश का विकास संभव है। भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। उस आत्मा को पुनःजीवित कराने की आवश्यकता है। 'निर्वासन' उपन्यास में भी सूर्यकान्त का भाई शिब्बू गाँव से शहर जाने की बात करता है, वह कहता है कि "जी भैया मेरा बड़ा मन है सुल्तानपुर से निकलने का।" - शिब्बू बोला।

यहाँ क्या कमी है?

ये भी रहने की कोई जगह है? सबसे बड़ी बात यहाँ आगे बढ़ने का कोई चांस नहीं है।

---

1. वीरेन्द्र जैन - पार, पृ. 97

ये तो है। गाँव वालों को लगता है शहर चलो, शहर वाले को बड़े शहर में चांस दिखता है । बड़े शहर वाला बहुत बड़े शहर का इरादा रखता है और बहुत बड़े शहर वाला विदेश में बसना चाहता है। यही दस्तूर है आज का - कोई अपनी जगह पर नहीं टिकना चाहता।"[1] आज आधुनिक भारत के ग्रामीण समाज में नगरीय संस्कृति हावी होती जा रही है। जिसका चित्रण उपरोक्त सन्दर्भ में किया गया है। गाँवों में नगरीय संस्कृति के आगमन से जहाँ एक ओर गाँव के युवकों में शहरीय फैशन का प्रभाव ज़्यादा बढ़ गया है तथा दूसरी ओर इसके प्रवेश से गाँव की संस्कृति पर भी बहुत ही नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

गाँव से शहर की ओर पलायन के भी कारण अनेक हैं। गाँवों में भारत की आत्मा बसती है, गाँव चलो आदि नारे देनेवाले गाँधी जी ने खुद इस दुनिया को ग्राम जीवन की अहमियत समझायी है। एक ओर जहाँ नयी पीढि सुविधा, फैशन, नगरीय चकाचौंध आदि के कारण गाँव छोडने की तीव्र इच्छा में है तो दूसरी ओर गरीबी, बेकारी, भुखमरी की वजह से भारत की ग्रामीण जनता अपनी ज़मीन छोड़ने के लिए विवश हो जाती है। 'कलि कथाः वाया बाइपास' का अमोलक कहता है, "कलकत्ते की सड़कों पर भीख माँगने वाले गाँव के लोग किस तरह बढ़ रहे हैं?.... बंगाल के गाँवों के लोगों के पास खाने को कुछ नहीं है। अपने सारे बर्तन-भाँडे बेचकर ये लोग चावल

---

1. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 184

खरीदकर खा चुके हैं और अब भूख के मारे गाँव छोड़कर कलकत्ता आ रहे हैं।"[1] एक दूसरी जगह पर लेखिका अपने पात्र के माध्यम से कहती है- "भिखमंगों का शहर है कलकत्ता। .... ये सारे भिखमंगे अंग्रेज़ों ने बनाए हैं। बंगाल के कपड़े बुननेवालों और दूसरे उद्योगों में जुटे लोगों को इन्होंने जड़ से उखाड़ डाला है - गाँवों में कोई काम न होने की वजह से ये भिखमंगे कलकत्ता की गलियों में भर गए हैं।"[2] इससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि गाँवों में आज भी जीवन बिताने के साधन बहुत ही कम है। यही कारण है कि नयी पीढ़ि को अपना सब कुछ छोडकर शहरों की ओर संक्रमण करने के लिए बाध्य करते हैं। गाँव की दुर्दशा से त्रस्त इन्सान एक नयी सुबह की खोज में शहर के लिए निकल पड़ता है।

3.6 महानगरीय संस्कृति

महानगर का अर्थ है बड़ा नगर, नगर भेद। महानगर के लिए अंग्रेज़ी शब्द है - मेट्रोपोलिस (Metropolis)। यह एक ग्रीक शब्द है जिससे 'मेट्रोपोलिटन' शब्द बना है। मेट्रोपोलिस शब्द का अर्थ है 'नगर-जननी' (Mothercity)। भारतीय सन्दर्भ में महानगरीय जीवन की विशेषताएँ कुछ अलग ही हैं। हर व्यक्ति महानगर की भीड़ में उलझा हुआ है। स्थिति इतनी भयानक हो गई है कि बढ़ती प्रदर्शनप्रियता तथा अनुकरण के कारण यहाँ मनुष्य-मनुष्य नहीं रह जाता है। महानगरों में ज़्यादातर ऐसे व्यक्ति पाये जाते हैं जिसका मन कई प्रकार की समस्याओं से जूझ रहा होता है। बढ़ती दूरी

---

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 142-143
2. वही - पृ. 118-119

के कारण व्यक्ति-व्यक्ति के बीच एक असंतुलित स्थिति का जन्म हो गया है। असंतुलित व्यक्तित्व के कारक है यंत्राश्रित जीवन, भावात्मक संबन्धों की दूरी आदि। प्रत्येक व्यक्ति व्यस्त है लेकिन उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि इस व्यस्तता ने उनको वास्तविक जीवन से कितना दूर कर दिया है। यह तभी संभव हो सकता है जब प्रत्येक व्यक्ति इस पर सोचना शुरु कर दें। किन्तु यहाँ यही विडंबना है कि उसके पास सोचने के लिए भी समय नहीं है।

महानगरीय व्यक्ति के मन पर वैज्ञानिक खोजों, टेक्नॉलजी और उसके कारण जीवन में आई व्यस्तता का गहरा प्रभाव पड़ा है। जीवन में व्यस्तता और भागमभाग के कारण डर, आतंक, असुरक्षा और मृत्यु-भय के तनाव से महानगरीय व्यक्ति गुज़र रहा है। समाज में व्यक्ति अनेक प्रकार के मानसिक संघर्षों एवं तनावों से घिरा रहता है। इसी से सामाजिक विघटन की स्थिति पैदा हो रही है। मानसिक संघर्ष एवं असंतोष से व्यक्ति जीवन शिथिल हो जाता है, वह अपने आप ही टूट जाता है।

यदि वर्तमान समाज में व्यक्ति जीवन में तनाव है तो वह सिर्फ पैसे कमाने की सोच से उभरा तनाव है। समाज का एक विश्व बाज़ार में तब्दीली ने मानव को भी परिवर्तित करके रख दिया है। दिखावे की होड़ में भागम भाग करता व्यक्ति सिर्फ और सिर्फ भौतिक उपलब्धियों से जीवन स्तर को नापता है। 'कलि कथाः वाया बाइपास' में किशोर बाबू से उसका लड़का कहता है कि "आप तो सारा अखबार पढ़ते हैं। देखते नहीं कितने लोग कैसे-

कैसे किसलिए आत्महत्या कर रहे हैं - कोई लड़की इसलिए जहर खा लेती है क्योंकि उसका बाप उसे माधुरी दीक्षितवाली घाघरा चोली नहीं ला देता- और अपने इर्द-गिर्द क्या हो रहा है उसकी कोई खबर है आपको? अभी मेरे दोस्त अरुण की पत्नी ने आत्महत्या कर ली क्योंकि अरुण उसे अपनी शादी की सालगिरह पर 'ताज बंगाल' नहीं ले गया था सेलीब्रेट करने।"[1] मतलब आज दुनिया में दिखावा करना ही सब कुछ हो गया है। कृत्रिम एवं दिखावटी जीवनयापन करने की ओर नयी पीढी अत्यधिक आकृष्ट हो रही है।

महानगर में सुख सुविधा है। वह मनुष्य की समस्त भौतिक सुविधाओं के लिए आकर्षण केन्द्र बनता जा रहा है। महानगरों की ओर पलायन आज आम बात हो गयी है। इस नयी सभ्यता ने मानव को अपने आप में जकड़ लिया है। भीड़ ही भीड़ है हर कहीं जहाँ पहचान कम अजनबीपन ज़्यादा रहता है। फिर भी महानगर के चकाचौंध की दुनिया सबको अपने में खींच लेती है। 'घास का पुल' उपन्यास में इक्कीसवीं सदी के लखनऊ का दर्शन होता है जहाँ महानगरीय संस्कृति ने अपना जादू चलाया है। उपन्यास का पात्र नन्दलाल अपने बचपन के दोस्त गंगू को थाने से छुडाकर अपने घर लाता है। गंगू गाँव का रहनेवाला है। वह शहर में आकर वहाँ की सहुलियतों को देखकर हैरान रह जाता है। गंगू सोचता है- "उसके दिमाग में यह बात ज़रूर आयी कि शहर में टट्टी के लिए कमरा है और गाँव में सोने के लिए कमरा नहीं है और यदि सोने के लिए कमरा है तो खाने केलिए रोटी नहीं होती है।"[2]

---

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 199
2. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 36

शहर में आराम की ज़िन्दगी है। गंगू ठहरा गाँव का पिछड़ा आदमी जिसे एक वक्त की रोटी नसीब नहीं होती है। यही आकर्षण है शहर में कि यहाँ कुछ न कुछ मज़दूरी करके अपना पेट पाल सकते हो। इसलिए नगरीय संस्कृति की ओर आज पलायन होता जा रहा है।

3.7 हाशिए का समाजः स्त्री, दलित, आदिवासी, किसान एवं मज़दूर

समाज एक इकाई है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो वह व्यक्तियों का एक समूह है। जहाँ तक भारतीय समाज का सवाल है, वह चिरंतन काल से लेकर 'विश्व बन्धुत्व' की अवधारणा लेकर चला है जिसमें संपूर्ण विश्व को एक वृहत् जनसमूह माना गया है। दूसरी तरफ आधुनिक समाज यह चिल्लाता आया है कि वे सभ्य हैं, आधुनिक हैं। उनमें पुरानी मर्यादाओं को तोड़कर नवचेतन भावनाओं की अजस्र गंगा बह रही है। ऐसे में इस इक्कीसवीं सदी में भी, इतना आधुनिक एवं सभ्य बनने के बावजूद यह तथाकथित समाज सिर्फ पुरुषों को तवज्जो क्यों दे रहा है? आज भी स्त्री, दलित, आदिवासी तथा किसानों व मज़दूरों को हाशिए में क्यों रखा गया है? इस पर विचार-विमर्श करने पर कहा जाता है कि स्त्रियों को 33% का आरक्षण मिला हुआ है, दलितों को आरक्षित कर दिया गया है, आदिवासियों को ज़मीनी स्तर पर आधारभूत सुविधाएँ दी जा रही हैं, किसानों के लिए सरकार राहत निधि जारी कर रही है आदि। ऐसे में समाज में इन तबकों के लिए आज भी नकारात्मक भावना क्यों है? आज भी ये हाशिए पर क्यों हैं?

3.7.1 आधी आबादी स्त्री

उत्तर आधुनिक युग में स्त्री जो हाशिए पर थी, केन्द्र में आ गई है। किन्तु इसको सौ प्रतिशत सच्च नहीं माना जा सकता है। आज भी उसका शोषण हो रहा है। बस इतना फर्क है कि आज इसके तरीके बदल गए हैं। वास्तव में समाज का निर्माण स्त्री एवं पुरुष के अस्तित्व से होता है। गाँधी जी ने स्त्री को पर्याप्त सम्मान दिया। "पहली बार गाँधी ने स्त्री को स्वाधीनता संग्राम में शामिल किया। घर की चहारदीवारी में कैद रहने वाली और दबकर रहनेवाली स्त्री पूरी सक्रियता से गाँधी के साथ आंदोलनों में कंधे से कंधा मिलाकर चलती है और बहुत से महत्वपूर्ण आन्दोलनों का नेतृत्व करती है।"[1] गाँधी का साक्षात् प्रभाव 'इदन्नमम' उपन्यास की मन्दा पर दिखाई देता है। महाराज से टीकम सिंह की कहानी सुनकर मंदा में आत्मविश्वास बढ़ता है। महाराज कहता है - "टीकमसिंह की वेशभूषा देखकर अचरज करते थे लोग कि यह आदमी, घुटनों तक की मटमैली धोती, बिना बटन का कुर्ता, कंधे पर मैला-सा पंचा, निहायत भोलाभाला किसान, सरकार से लडने चला है।"[2] महाराज द्वारा कहा गया यह वाक्य सुनकर वह बैठे-बैठे यह संकल्प लेती है कि - "मुझे तो किसी सरकार से भी नहीं लड़ना, किसी राजतंत्र का विरोध नहीं करना, चंद व्यापारियों के विरुद्ध ही आवाज़ उठानी है। वही भी वे, जो परदेसी हैं हमारी भूमि पर।"[3] यहाँ पर मन्दाकिनी में टीकमसिंह हावि हो जाता है। वह उसके कार्यों से इतनी प्रभावित हो जाती है कि उसमें अपने

1. संपादक -विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - दस्तावेज़ 100 गाँधी अंक, पृ. 173
2. मैत्रेयी पुष्पा - इदन्नमम, पृ. 190
3. वही - पृ. 190

गाँव सोनपुरा में परिवर्तन लाने हेतु आत्मविश्वास जाग उठता है। यहाँ टीकमसिंह को वास्तव में गाँधी जी के ही प्रतीक के रूप में दर्शाया गया है।

गाँधी जी ने स्त्रियों को भी स्वतंत्रता संग्राम में सहभागी बनाया। वे स्त्री को बरावरी का दर्जा देने के पक्षधर थे - "कस्तूरबा ने आश्रम की जिम्मेदारी दूसरों पर छोड़कर, गाँव-गाँव और नगर-नगर घूमना आरंभ कर दिया था। बापू का वह सन्देश बा के कान में गूँजती आवाज़ बन गया था। वह घर-घर जाकर महिलाओं को असहयोग के दूसरे दौर में भाग लेने के लिए प्रेरित कर रही थी।"[1] गाँधी जी ने अपने समय में नारियों को घर की चाहरदीवारी से बाहर निकलने का आह्वान दिया। वे स्त्री पर लगाई गई पाबन्दियों को हमेशा के लिए तोड़ने का परिश्रम करते रहे। गाँधी ने सही पहचाना कि औरतों को अपंगु बनाए रखने में शारीरिक अक्षमता से भी बढ़कर एक प्रकार का मानसिक डर और विवशता ज़्यादा है जो समाज द्वारा उन पर संस्कृति के नाम पर थोपा गया है। बरसों से उत्पीड़ित एवं प्रताड़ित अबला नारी को जागृत करने में गाँधी जी की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

संजीव के 'फाँस' उपन्यास की स्त्रियाँ गाँधी जी के कदमों का अनुगमन करती दिखाई देती है। शकुन के मन में अपनी सहेली आशा की आत्महत्या दारु-विरोध के इरादे को और भी पुख्ता कर देती है। गाँधी जी का वर्धा अब दारू का अड्डा बन गया है। तभी शकुन का भट्ठी भंजक दल इसको बन्द करवाने की जिम्मेदारी उठाती है। थानेदार कहता है - "इसे

---

1. गिरिराज किशोर - बा, पृ. 222

कहते हैं नारी शक्ति! शाबाश! शाबाश! मैं तो कहता हूँ आप लोगों ने एक मिसाल कायम की है। देश के एक चौथाई लोग भी आप जैसे जागरूक हो जाएँ तो दारु तो दारु, हर तरह का नशा और करप्शन छू मन्तर हो जाए। गाँधी जी के रास्ते काम हुआ-यह और बड़ी बात है।"[1] इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाज की प्रगति में स्त्री की भूमिका महत्वपूर्ण है। गाँधी जी ने पुरुषों के समान स्त्रियों को भी स्वाधीन समाज के सृजन में पूर्ण अधिकारी का दर्जा दिया है।

गाँधी जी ने स्त्रियों को आत्मनिर्भर व स्वावलंबी बनने का उपदेश दिया था। 'आवां' उपन्यास में 'श्रमजीवी' संस्था चलानेवाली शाहबेन गरीब बेरोज़गार महिलाओं को रोज़ी-रोटी कमाने का अवसर प्रदान करती है। यह संस्था उन स्त्रियों के लिए एक सबल आधार है जो गरीबी से जूझ रही हैं। यहाँ 'शाहबेन' गाँधी जी की शिष्या है। नारियों को स्वावलंबी बनाना तथा सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक शोषण से बचाना ही उनका लक्ष्य है। वे ज़रूरतमंद महिलाओं को अपनी संस्था में काम देकर उनको दिहाडी कमा लेने का मौका देती है। ऊपर से सख्त एवं मुँहफट होते हुए भी शाहबेन हृदय से काफी संवेदनशील है। उनकी संवेदनशीलता का ही उदाहरण है कि वे कई घरों के ठण्डे पडे चूल्हे जलाने के कारण हैं। इतना ही नहीं जब श्रमजीवा के वृद्धमाली रामचन्द्र भाऊ की मृत्यु के अवसर पर श्रमजीवा के पापड बेलनहारियों के दिहाड़ी से कुछ रुपये रामचन्द्र भाऊ के घरवालों को देने का शाहबेन का निर्णय सुनकर वहाँ के कुछ बेलनहारी महिलाओं ने अपना

1. संजीव - फाँस, पृ. 154

विरोध प्रकट किया तब शाहबेन कहती है - "एक दिन की कमाई दान करने में कैसी हिचक! राज-पाट छिना जा रहा? वह भी समय था। आज़ादी की लड़ाई में बापू के आवाहन पर हम अपना सर्वस्वदान कर सत्याग्रह में कूद पड़े। एक तुम स्त्रियाँ हो। असहाय मरे बूढ़े की सहायतार्थ आगे आने में हिचकिचा रहीं। संवेदनाएँ सूख गई तुम्हारी? रही बात संस्था की तो संस्था कहाँ से पैसा लाए? व्यवसाय नहीं कर रही 'श्रमजीवा'। समाजसेवा में संलग्न है।"[1] गाँधी जी की सेवा भावना से प्रभावित शाहबेन के लिए सेवा ही सब कुछ है, स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार इस संस्था के माध्यम से वे अपने आपको और दूसरों को भी आत्मनिर्भर बनाती हैं।

'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में भी गाँधी जी द्वारा स्त्री सशक्तिकरण को महत्व दिया गया है। उपन्यास में गाँधी जी स्त्रियों को सशक्त बनने के लिए कहते हैं। दक्षिण अफ्रीका की सरकार के खिलाफ वहाँ रहनेवाली भारतीय महिलाएँ गाँधी जी द्वारा कहे गये सत्याग्रह के रास्ते पर चलकर वहाँ की सरकार को चुनौती देती हैं। इसके लिए खुद कस्तूरबा गाँधी भी उनका साथ देती है। वहाँ का कानून लिखत-पढ़त की शादी को ही मंजूरी देते हैं। इस के खिलाफ लड़ने के लिए भारतीय महिलाएँ सामने आती हैं। मोहनदास जब कस्तूरबा से कहते है कि - "तुम्हें मालूम है तुम अब मेरी पत्नी नहीं रहीं। कस्तूर चौंक पडी। गुस्से से बोली, क्या वाहियात बात करते हो? कौन है जो मुझे तुम्हारी पत्नी होने से रोक सकता है?

यहाँ की सरकार। उन्होंने कानून बना दिया है, जिसकी लिखत-पढ़त में शादी

---

1. चित्रा मुद्गल - आवां, पृ. 168

नहीं हुई वह पत्नी नहीं।

..... इसके लिए क्यों नहीं लडते? कस्तूर बेकाबू हो गयी।

कौन लड़ेगा?

हम लडेंगी !

तुम्हें मालूम है जेल में कितनी मुसीबत उठानी पड़ती है?

उठाऊँगी! सत्याग्रहियों में सबसे ऊपर मेरा नाम लिखो?"[1] यह है स्त्री सशक्तीकरण । स्त्रियों को अपने हक की लड़ाई के लिए आगे आना चाहिए। गाँधी जी ने जीवनपर्यन्त इसका भरपूर प्रयास किया।

3.7.2 दलित

गाँधी जी ने 'दलित' शब्द का उपयोग कभी किया नहीं। उनके लिए सभी प्राणीमात्र ईश्वर (हरि) का ही रूप है अर्थात् 'हरि का जन'। गाँधी जी ने अस्पृश्यता एवं छुआछूत की समस्या को जड़ से उखाडना चाहा। जीवन भर उनकी कोशिश भी यही रही। दलित जीवन का वास्तविक चित्रण 'परिशिष्ट' उपन्यास में देखा जा सकता है। इसका पात्र बावनराम को दलित जाति में जन्म लेने के कारण यातना के ऐसे भयंकर दौर से गुज़रता है कि वह अपने पुत्र को पढ़ा-लिखाकर इंजीनियर बनाने की चाह रखता है, ताकि कम से कम उसका बेटा इस जलालत भरी ज़िन्दगी से उभर सकें। वह कहता है - "इज्जत क्या और और बेइज्जती क्या है, इसको तुम हमसे ज़्यादा थोडे ही जानते हो। तुम यह कमरा छोड़कर जाने की बात करते हो....। दुनिया की हर तरह की बेइज्जती के बावजूद रोटी का एक छोटा-सा टुकड़ा तक

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 805

छोड़ कर जाना हम लोगों के बस में नहीं था। हम उसे उस बेइज्जती के साथ ही निगल कर पानी पी लेते थे। बेइज्जती के जिस तल को मैं देख आया हूँ, उससे नीचे बस पाताल ही है और कुछ नहीं। उसके ऊपर जो भी होता है, हमें तो वह इज्जत ही मालूम होती है।"[1] एक पीढ़ी द्वारा भोगा हुआ यथार्थ का मार्मिक चित्रण उपरोक्त शब्दों में दर्शाया गया है।

स्वतंत्रता के पश्चात भी हरिजनोद्धार के लिए सरकार ने कई प्रकार के प्रयास किए। शिक्षा संस्थानों में प्रवेश, नौकरियों में पदोन्नति के अवसर, संसद एवं विधानसभाओं में भी प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को संविधान में जोडा गया। फिर भी इनको कई नई प्रकार की जटिलताओं का सामना करना पड़ा। आरक्षण की सुविधा ने कई सदियों से विशिष्टता के पद पर बैठे सवर्णों की मानसिकता आहत हुई। किन्तु बावनराम द्वारा कहे गये शब्दों ने हरिजनों में स्वस्थ आशा का संचार किया। "नहीं भैया हिम्मत मत हारो। अपने पुरखों को देखों हज़ारों साल सन्तानहीन पितरों की तरह अपमान के कुएँ में उल्टे लटके रहे... कोई आयेगा जो उद्धार करेगा, सम्मान दिलाएगा। गाँधी और अम्बेडकर बाबा आए लेकिन और लोगों को भी आगे आना है, वे तो आकर चले गए। पितर-रिन से बड़ा कोई रिन नहीं... सब चुक जाते हैं वो नहीं चुकता। ठीक है गढ़्ढ़ा बहुत गहरा है, हिम्मत हारना ठीक नहीं खुद भी निकलो, औरों को भी निकालो। बिना दांत वाले सांप ज़मीन में ही घुसे रहते हैं, बाहर नहीं निकलते, कोई मार न डाले.... ऐसे कब तक पड़े रहेंगे.... निकलना तो होगा ही।"[2] आज स्थिति में बहुत कुछ परिवर्तन आया है लेकिन अभी भी दलित वर्ग समस्याओं से अपने आपको उभारने के लिए

1. गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृ.52
2. वही - पृ. 52

प्रयास कर रहे हैं। आज दलित की मुक्ति, उनके लिए समान अधिकार आदि पर चर्चाएँ चलते समय दलितवादी लेखक गाँधी जी को या फिर उनका नाम बिल्कुल नकार देते हैं। दलितवादियों के लिए गाँधी नहीं बल्कि अंबेडकर ही भगवान है। यह सच्च है कि अंबेडकर ने अपना संपूर्ण जीवन दलितों के लिए उनकी उन्नति के लिए सौंपा था किन्तु इस बात को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि छुआछूत को मिटाने के लिए, अछूतों के लिए मंदिर प्रवेश आदि कार्य गाँधी जी के द्वारा ही संपन्न हुआ था। एक समय तक जिसका न कोई स्वत्व था, ना ही अस्तित्व उनको मुख्यधारा में लाने का पहला जिम्मा महात्मा गाँधी ने ही उठाया। उनका मानना था कि दलितों को समाज के आगे लाए बिना स्वराज्य की स्थापना असंभव है। "जब तक हिन्दू धर्मावलंबी छुआछूत को हिन्दू धर्म का हिस्सा मानेगा तब तक स्वराज्य संभव नहीं हो पाएगा।"[1]

3.7.3 आदिवासीः भारत के मूल निवासी

'आदिवासी' शब्द का अर्थ है 'मूल निवासी'। प्राचीन ग्रन्थों में दस्यु, निषाद आदि के नाम से जिन प्रजातियों का उल्लेख किया गया है उन्हीं के वंशज को वर्तमान सन्दर्भ में आदिवासी कहे जाते हैं। अतः आदिवासियों को संसार के प्राचीन निवासी भी कहा जा सकता है। अंग्रेज़ी में 'ऐबोरिजिनल' शब्द से विख्यात ये समूह वास्तव में किसी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए कहा जाता है जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र के साथ काफी प्राचीन संबन्ध रहा हो।

1. महात्मा गाँधी - कलक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, भाग - 24, पृ. 24

वर्तमान दौर में आदिवासी अपने अस्तित्व की पहचान के लिए कोशिश कर रहे हैं। आज़ादी के 71 साल के बाद भी भारत के आदिवासी उपेक्षित, शोषित और पीड़ित नज़र आते हैं। प्रकृति से, संस्कृति से घनिष्ठ संबन्ध रखनेवाले इन समूहों का अपना सब कुछ खिसकता जा रहा है। जहाँ एक ओर सूचना, संचार, इंफ्रास्ट्रक्चर, प्रौद्योगिकी व प्रबन्धन जैसे क्षेत्र प्रमुखता पाते जा रहे हैं वही दूसरी ओर इनसे अपना जल, जंगल और ज़मीन पर जो परंपरागत अधिकार था, जिनको वे अपने जीवन का आधार मानते थे, उनके हाथों से छीना जा रहा है। 'पार' उपन्यास इसका सटीक उदाहरण है। आदिवासी और उनके प्राकृतिक जीवन में आए बिखराव व तनाव को इसमें व्यक्त किया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात् अपनाई गई नीतियों के कारण आदिवासी जीवन में भी असंतुलन पैदा हुआ है। इसी असंतुलित विकास से त्रस्त लोगों का आख्यान है 'पार'। 'पार' की कथा आदिवासी खेरे जीरोन से प्रारंभ होती है। यहाँ के लोग विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से अनजान हैं। इनका आधार ही प्रकृति है। लेकिन आज विकास के नाम पर वहाँ के मूल निवासियों को उजाडना शुरु कर दिया गया है। मुखिया एक होने वाले मुखिया से कहता है कि "हमें गाँव वालों से किसी चीज-बसत का सहारा था क्या? तब तो हम अपनी गुजर-बसर इसी डाँग से कर लेते थे। अब दिनोंदिन गाँव वालों के आसरे होते जा रहे हैं। काहे ! काहे कि अब डाँग में वह बरकत नहीं रही। तू भी तो जाता है डाँग में। बता तू ही कि कितना भटकने के बाद जलावन मिलता है । गाद मिलती है। शहद मिलता है।

जड़ी-बूटियाँ तो जाने कहाँ समाती जा रही हैं। हम भले ही हरा-भरा रुख नहीं काटते। वह देवता है हमारी निगाह में। हमरा पालनहार। पर फिर भी हरे भरे रुख बच पाए। हम उनका कटना रोक पाए? रोक पाएँगे कभी?..... अब ये शहर वाले नदी बाँध रहे हैं। तब प्रलय आएगी। जो अब तक बचा है वह सब भी स्वाहा हो जाएगा। तब हम कहाँ जाएँगे? कैसे जिएँगे?। "[1] यही वास्तविक सच्चाई है। यही घोर विडंबना है। जिरोन क्षेत्र के राउत जनजाति वर्ग परेशान है अपने आस-पास होनेवाले परिवर्तनों से। वे बेचारे लाचार होकर कहते है - "अब ये गाँव वाले ही हमरी डाँग रिताने आने लगे हैं। पहले ऊपर वाले ने पानी, हवा, उजियारा सबमें कटौती की अब ये हिस्सा बटाई को आन पहुँचे। हमारा न ऊपर वाले पर वश है, न इन पर।"[2] सरकार विकास लाना चाहती है किन्तु सरकार का विकास इन लोगों के लिए विनाश का रास्ता खोल देता है। विनाश के कगार तक पहुँचा देने वाले वर्तमान विकास नीति से ग्रस्त जनजातीय समूह का उद्धार करके, उनको मुख्यधारा में लाने की आवश्यकता है। यहीं सरकार का लक्ष्य होना चाहिए। प्राचीनकाल से ही आत्मनिर्भर आदिवासियों से समाज को सीखने के लिए बहुत कुछ है। खुद गाँधीजी पर भी इनका प्रभाव देख सकते हैं। ग्राम स्वराज और खादी की पूरी अवधारणा गाँधी जी ने इन्हीं आत्मनिर्भर आदिवासियों से ली होगी-ऐसा जान पडता है।

3.7.4 किसानः एक मरती हुई प्रजाति

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की संस्कृति भी गाँवों की

1. वीरेन्द्र जैन - पार, पृ. 51
2. वही - पृ. 31

संस्कृति है। कृषि प्रधान देश होने के नाते समाज में किसानों की भूमिका अहम है। यहीं नहीं बल्कि कृषि क्षेत्र सबसे बड़ा रोज़गार प्रदान करनेवाला क्षेत्र है। इतना कुछ महत्व रखने के बाद भी किसानों की स्थिति को सुधारने में आज भी सरकार नाकामयाब है। भारतीय किसानों की दशा में बदलाव तो दूर लेश मात्र भी सुधार दिखाई नहीं दे रहा है। गाँधी जी के अनुसार किसान दुनिया का पिता है। वे कहते हैं "अगर परमात्मा देनेवाला है, तो किसान उसका हाथ है।"[1] यही नहीं आगे वे कहते हैं कि "जो आदमी अपनी ज़मीन से अन्न पैदा करता है और खाता है, वह यदि जनरल बने, मंत्री बने, तो हिन्दुस्तान की शकल बदल जायगी। आज जो सड़ाँध फैली हुई है वह मिट जायेगी।"[2] इसका यह नतीजा निकलता है कि जो किसान भारत का सब कुछ है, जिस पर निर्भर पूरी जनता है, उसका उद्धार होने से वास्तव में सच्चा विकास हो पाएगा। किन्तु यहाँ का परिदृश्य कुछ ओर ही है। आए दिन समाचार पत्रों में यह खबर छपती है कि किसानों ने आत्महत्या की। देश के कोने कोने में किसान कई प्रकार की समस्याओं से पीडित है। कर्ज़, फसल हानि, सूखा, बाढ़, ऋण आदि से पीडित किसानों की समस्याओं का सरकार भी समाधान नहीं कर पा रही है।

सरकार योजनाएँ तो बना रही है किसानों के लिए, किन्तु उसका फल खा रहे है दूसरे लोग। संजीव द्वारा रचित 'फाँस' की कथावस्तु किसानों को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। इसमें आत्महत्या के लिए विवश किसानों

---

1. महात्मा गाँधी - ग्राम स्वराज्य, पृ. 91
2. वही - पृ. 95

की व्यथा का चित्रण किया गया है। उपन्यास यवतमाल जिले के 'बनगाँव' की कहानी को पाठकों के सामने लाता है। वास्तविक सच्चाई यही है कि "भारतीय किसान कर्ज में जन्म लेता है, कर्ज में ही बड़ा होता है, कर्ज में ही मर जाता है।"[1] किसानों की यह जो स्थिति है वह आजकल में पैदा हुई स्थिति नहीं है वह बरसों से चलती आ रही प्रक्रिया है। पहले ब्रिटीश राज में भी इनकी स्थिति समान थी आज वर्तमान में भी यही स्थिति है। फर्क बस इतना है कि पहले पूँजीपति, साहूकार आदि से परेशान थे और आज सरकारी योजनाओं के रहते हुए भी उन तक लाभ न पहुँच पाने की स्थिति है। 'फाँस' में विजयेन्द्र नामक पात्र कहता है कि "कोई महामारी या कोई ऐसी विपत्ती नहीं आयी है कि भारत सहित दुनिया भर के किसान बैमौत मारे जा रहे है। यह वैश्विक अर्थव्यवस्था का नया रूप है जिसमें किसान को हाशिये पर धकेला जा रहा है। आत्महत्या एक संक्रामक व्याधि की तरह देश के उन राज्यों में भी पैलती जा रही है जहाँ अब तक नहीं थी, मसलन, बुन्देलखण्ड। जहाँ एक ठाकुर ने आत्महत्या की। यह आत्महत्या के अध्ययन का नया आयाम खोलता है। आगे और भी आयाम खुलेंगे। और भी आत्महत्याएँ होंगी? अब भी नहीं जगे तो आने वाले दिनों में पूरा देश श्मशान बन जाएगा।"[2] यह एक चेतावनी है आगे आने वाले गंभीर विनाश का । जिन किसानों के माध्यम से भारतीय जनता सांस ले पा रही है, जो उनका पालनहार है, उसका नाश पूरे समाज का ही विनाश होगा। इस गंभीर स्थिति का सामना करने का समय आ गया है।

1. संजीव - फाँस, पृ. 187
2. संजीव - फाँस, पृ. 197

आज आधुनिक युग में 'वाइट कॉलर जॉब' वालों की ही पूछ है। जिसके पास बंगला, गाडी, स्टेट्स है उसी का अस्तित्व है। इनके बीच में बेचारा किसान समूह की क्या अहमीयत है? सरकार तो सरकार आम जनता भी धोती पहनने वाले, कीचड-मिट्टी में काम करनेवाले भारत के पालनहारों को हीन भरी दृष्टि से देखते हैं। यह वहीं किसान है जो तथाकथिन उच्च वर्ग का डाइनिंग सजाता है। 'घास का पुल' उपन्यास में भी किसानों की दर्दनाक स्थिति का उल्लेख किया हुआ है। गंगू और नन्दु दोस्त है। एक गाँव का किसान है तो दूसरे का बसेरा शहर में है। गंगू नामक किसान को गाँव छोड़कर भागना पड़ जाता है। गरीबी की स्थिति में उसकी बाई (माँ) ज़हर खाकर आत्महत्या कर लेती है। यही किसान समूह की विडंबना है। नन्दु को रमेश वास्तविक स्थिति के बारे में जानकारी देता है कि "पिछले चार साल में बुन्देलखंड के सात जिलों में लगभग दो सौ लोग आत्महत्या कर चुके हैं। आत्महत्या की कहानी काफी कुछ एक जैसी थी। पहले साल फ़सली ऋण। फसल का सूख जाना। ऋण न चुका पाना। फिर साहूकार से सवाया गेहूँ - जो प्रेमचन्द की कहानी 'सवा सेर गेहूँ' की तरह कभी चुकाया नहीं जा सकता। इसी में ब्याह और बीमारी का जुड़ता ऋण। कहानी का निश्चित अन्त आत्महत्या। डेढ़ सदी बाद ऐसा अकाल फिर पड़ा था। एक फर्क ज़रूर था। अंग्रेज़ों की प्रतिशोधी नीति के चलते पचीसा (1868-69) अकाल में भी किसान ने आत्महत्या नहीं की थी। किसान की बलि लेते मौजूदा अकाल के पीछे आज़ाद देश का सठियाता विकास था जो भूमंडलीकरण

के कुएँ में डूब गया था।"[1] यहीं हैं आज़ाद भारत के 75% जनसंख्या की सच्चाई। इससे निजात पाने के लिए अपनाने होंगे ठोस कदम, जो आज की स्थिति की अनिवार्यता है।

'आखिरी -छलाँग' उपन्यास में भी उपन्यासकार शिवमूर्ति ने वर्तमान किसान जीवन की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया है। मानव समाज के उत्थान में खेती का बड़ा हाथ है। किसान खेती का संचालक है। देश के लिए किसान एवं खेती एक महत्वपूर्ण घटक है। वर्तमान खेती और किसानों की दशा संकटग्रस्त है। पारंपरिक खेती व्यवसाय को त्यागकर नए नए प्रयोगों ने किसानों को ही नहीं बल्कि मिट्टी को भी नष्ट कर दिया है। उपन्यास का नायक पहलवान पांडे एक किसान है जिसके पास गाय, भैंस, बैल, बछड़ा, गन्ने की खेती है। फिर भी उसकी आर्थिक स्थिति दयनीय है। सरकार भी किसानों के साथ नहीं है। सरकार के किसान विरोधी नीतियों को दिखाने वाला उपन्यास का एक प्रसंग इस प्रकार है - "गेहूँ पैदा करने में लागत बारह रुपये किलो आती है लेकिन गेहूँ बिकता है सात रुपये किलो, आलू और प्याज किसान के घर पैदा होता है तो दो रुपये किलो बिकने लगता है। दो महीने बाद जैसे किसान के घर से बाहर निकला दस रुपये किलो हो जाता है। सोना पचाहत्तर गुना, डीज़ल पचास गुना जबकि गेहूँ सिर्फ सात गुना सारी मंदी किसानों के लिए ही है। पिछले दिनों की बजट की खबर अखबार में छपी थीं उसमें जो चीजें सस्ती की गयी थीं उसमें थीं कार, कंप्यूटर, कालीन

---

1. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 29

और कोकाकोला और जो चीजें महँगी की गई थीं उनमें थीं बीड़ी, माचीस, चाय, बिस्कुट, पोस्टकार्ड।"[1] आज सरकार भी गरीबों के पक्ष में नहीं बल्कि पूँजिपतियों और बडे-बडे उद्योगपतियों के हाथ की कठपुतली है। अमीर लोगों के उपयोग में आनेवाली चीज़ों को सस्ता कर दिया गया और गरीब लोगों की उपयोगी चीज़ों का मूल्य बढ़ा दिया गया। कुटीर उद्योगों में बनाई जा रही चीज़ों के मूल्य को बढ़ाकर तथा बडे बडे कारखानों में बनाये जा रहे चीज़ों को किफायती दरों में बेच के सरकार इन्हीं पूँजिपतियों का साथ देते हैं। उपन्यासकार यहाँ किसानों की दारुण स्थिति से विचलित है - "जो ऋण किसान की भलाई के लिए दिया जाता है? जब खेती की आमदनी से इतनी भारी रकम की वापसी हो ही नहीं सकती तो उसे किसानों को अपने गले में बांधने के लिए उत्साहित क्यों किया जाता हैं।"[2] इस प्रकार भारतीय किसानों का जीवन दर्दनाक होता जा रहा है। अब उसको अपने हक की लड़ाई खुद करनी पडेगी। गरीब किसान को अब खुद के लिए खड़ा होना पडेगा। उपन्यासकार शिवमूर्ती लाखों किसानों को आगाह करते हुए कहते हैं कि - "जिंदा रहना है तो मारनेवालों के सामने डटना तो पड़ेगा, वरना जैसे हज़ारों जातिया जनजातियाँ, पशु-पक्षियों की प्रजातियाँ इस दुनिया से उच्छिन हो गयीं, वैसे ही किसान नाम की प्रजाति भी विलुप्त हो जाएगी।"[3] समय व्यक्ति को सिखाता है कि कब क्या करना है। किसानों को सचेत करते हुए उपन्यासकार उनको आगमी परिस्थितियों से संघर्ष करने का हौंसला प्रदान

1. रवीन्द्र कालिया - नया ज्ञानोदय (आखिरी छलांग उपन्यास), पृ. 89
2. वही - पृ. 99
3. वही - पृ. 91

करता है। उपन्यास का पहलवान किसान बहुत ही हिम्मती पात्र है जो अपनी खेती, कर्ज, बेटी की शादी, ट्यूबवेल की समस्या आदि को छोडकर-भुलाकर पहलवानी दिखाते हुए पूरे जोश के साथ मैदान में कूद के छलागं लगाता है। यह उनके लिए एक सीख है जो अपने समस्याओं में ही उलझकर घुटते हुए आत्महत्या करते हैं। पहलवान की छलांग वास्तव में एक बार फिर से अपने को जीवन रुपी संग्राम में उतारने की छलांग है। शायद यह छलांग जीवन की सान्ध्यबेला में आखिरी भी हो सकता है।

'अकाल में उत्सव' उपन्यास में भी वर्तमान भारतीय किसानों की व्यथा है। इस कहानी के दो मुख्य पात्र है। एक सूखा पानी गाँव का किसान रामप्रसाद और दूसरा वहाँ का जिला कलेक्टर श्रीराम परिहार। किसान जीवन और गांव की पृष्टभूमि में लिखे गये इस उपन्यास में किसानों के जीवन के दुःख दर्द की कहानी है। शासन द्वारा किस प्रकार किसानों को दबोचा जाता है, किसानों की आत्महत्या जैसे मुद्दों को उठाया गया है। भ्रष्ट शासन किसानों को न के बराबर समझता है। उपन्यास में रमेश चौरसिया नामक पात्र वर्तमान प्रशासनिक अधिकारी और भावी कलेक्टर से पूरी सूझबूझ से कहता है - "अगर किसान खेती नहीं करेगा तो आप और हम खाएँगे क्या? और वैसे भी अब किसान धीरे-धीरे मज़दूर होता जा रहा है इस देश में। उसकी ज़मीनें जा रही हैं। कुछ दिनों बाद इस देश में मल्टीनेशनल कंपनियाँ ही खेती करेंगी सारी। और देखियेगा उस समय कोई न्यूनतम समर्थन मूल्य नहीं चलेगा। जो कंपनियाँ चाहेंगी वही मूल्य रहेगा।"[1] किसानों

---

1. पंकज सुबीर - अकाल में उत्सव, पृ. 170-171

की दीन दशा कोई नहीं समझ रहा या फिर दूसरे शब्दों में सरकार सब कुछ समझकर भी अनजान बन रही है। गाँधी जी के सपनों का भारत छिन्न भिन्न हो गया है। देश के अन्नदाता की स्थिति शोचनीय है। वह आत्महत्या करने पर मज़बूर है। सरकारी नीतियाँ उसकी स्थिति सुधारने में नाकाम साबित हुई हैं। गाँधी जी के सपनों का आत्मनिर्भर गाँव मरणासन्न है।

3.7.5 मज़दूर

मज़दूर भी समाज का वह अंग है जो अपनी रोज़ी रोटी के लिए दिन भर ठोकरें खाकर अपने परिवार का पालन पोषण करता है। गाँधी ने मज़दूरों के लिए अहिंसात्मक मार्ग को अपनाते हुए संगठित होने और एकता से कार्य करने की सीख दी। "हम लोगों ने एकजुट होना नहीं सीखा। इसीलिए गुलामी हमारी नियति बन गयी। यहाँ की एकजुटता हिन्दुस्तान की तैयारी बन सकती है।"[1] गिरमिटियों को उपदेश देते हुए उन्होंने 'एकता' कायम रखने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। तभी आगे वाले को मज़दूरों की शक्ति का अहसास होगा। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास मज़दूरों की संघर्ष गाथा है। गिरमिटिया मज़दूर कूली के समान ही है। उन पर घोर अत्याचार होता रहता है। इनसे मुकाबला करने के लिए गाँधी जी उनको सत्याग्रह रूपी हथियार थमा देते हैं। यह एक ऐसा हथियार है जो न किसी को काटता है, न मारता है। गाँधी द्वारा दिये गए इस मंत्र को गिरमिटिया मज़दूर वर्ग सिर आँखों पर ले लेते हैं। "मज़दूर हर ज्यादती को बर्दाश्त करते थे और शान्त रहते थे। जब उत्पीड़न असह्य हो उठता था तो मन ही मन गाँधी भाई की शपथ दोहरा

---

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 247

लेते थे... सब सहेंगे, सच्चाई पर डटे रहेंगे, एकता को भंग नहीं होने देंगे... सत्याग्रही हैं, सत्याग्रह के साथ जिएँगे, उसके साथ मरेंगे।... उलटकर हमला नहीं करेंगे।"[1] गाँधी जी ने सच्चाई का रास्ता चुना था। उसी में चलकर जीत हासिल की थी। आज हमारे आगे जितनी भी मुश्किलें हैं उनको जीतने का मूलमंत्र देकर गये थे गाँधी जी।

देश के बदलते आर्थिक परिवेश से देश के अन्नदाताओं का रूपान्तरण मज़दूर के रूप में हो रहा है। जोतें इतनी छोटी हो गयी हैं कि खेती करना सर्वथा नुकसान दायक है। सरकार की ओर से किसानों के लिए विमुखता की भावना भी इनका मज़दूर बन जाने का एक ठोस कारण है। जिसके पश्चात शहरों की ओर पलायन करके एक मज़दूर के रूप में परिणत हो जाता है - "किसान जब तक लड़ सकता है, तब तक किसान रहता है और फिर हार कर मज़दूर बन जाता है। पहले अपने लिए मज़दूरी करता था, अब दूसरों के लिए करता है। जब अपने लिए करता था, तो कभी कुछ मिलता था और कभी कुछ नहीं भी मिलता था लेकिन, दूसरों के लिए करने में यह तो तय ही रहता है कि मज़दूरी तो मिलेगी ही। घर में चूल्हा तो जलेगा ही।"[2] नियति किस प्रकार का खेल खेलती है किसान व मज़दूरों के बीच में। एक बात तो तय है कि भूखे पेट के कारण ही उनको इस तरह से पलायन करना पड़ रहा है।

'आवां' उपन्यास श्रमिक वर्ग की संघर्ष गाथा है। उनकी व्यथा की कहानी है जिसमें श्रमिक वर्ग अपनी रोज़मर्रा के जीवन के लिए आजीवन

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 859
2. पंकज सुबीर - अकाल में उत्सव, पृ. 8

प्रयासरत है किन्तु उनके इन प्रयासों पर पूँजीपति वर्ग पानी डाल देता है। अपने जीवन में सुधार लाने के वास्ते पूँजीपतियों से इनको आए दिन संघर्ष, करना पड़ता है। उपन्यास में 'अन्ना साहब' नामक पात्र को गाँधी जी के प्रतीक के रूप में दर्शाया गया है। वे कामगार अघाडी नामक मुंबई के मज़दूर संगठन के शीर्षस्थ नेता हैं। उनके लिए अपने घर की चुल्हे की आग महत्वपूर्ण नहीं, बल्कि उनको महत्वपूर्ण है सैकडों, हज़ारों, लाखों इंधनविहीन वे चूल्हे जो हफ्तों तक आग का मुँह नहीं देख पाते। उपन्यास में अन्ना साहब गरीबों, मज़दूरों की सुरक्षा के लिए चिन्तित हैं। जब मज़दूर अन्ना साहब के कामगार आघाड़ी छोड़ देते हैं तो अन्ना साहब कहते हैं - "मुझे उनसे शिकायत है, उन मज़दूर भाइयों से जो अपने लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई में, संघर्ष में बीच मंझधार मेरा साथ छोड़कर चले गए। गए तो विछोह के दुःख से ज़्यादा दुःख उनकी नादानी का है। उन भाइयों ने मेरा साथ नहीं छोड़ा, 'कामगार आघाडी' का साथ नहीं छोड़ा, उन्होंने अपनी संतानों का साथ छोड दिया। अपनी संतानों के भविष्य का साथ छोड़ दिया। बेंच दिया उनका भविष्य। सौदा कर लिया कंपनी से 'लोकशाही' के बरगलावे में आकर, छोटे-मोटे प्रलोभन में पड़कर ! समझ में नहीं आ रहा, उन्होंने अपनी अच्छी भली आँखों पर चंद सिक्कों की पट्टी कैसे बांध ली।"[1] यहाँ अन्ना साहब उन मज़दूरों के लिए चिन्तित हैं जिन्होंने लालच में आकर उनका साथ छोड़ दिया। वर्तमान समाज में रुपये की ताकत इतनी बढ़ गयी है कि उससे किसी की भी गरीबी, पीड़ा, दुःख दर्द को खरीदा जा सकता है। मानवीय

---

1. चित्रा मुद्गल - आवां, पृ. 175

संवेदनाएँ तो पहले ही टूट चुकी। इन पूँजीपतियों को केवल अपने होने से मतलब है। अन्ना साहब यहाँ पर गाँधी जी के प्रतिनिधि के रूप में नज़र आते हैं। यह बात अलग है कि मनुष्य होने के नाते उनके जीवन में भी विचलन आया है। गाँधी जी के जीवन में भी विचलन हुआ था। वहीं विचलन अन्ना साहब के जीवन में भी पाया गया है। किन्तु वे श्रमिक वर्ग के लिए चिन्तित हैं, वे कहते हैं - "श्रमिकों की अस्मिता का प्रश्न मेरे लिए राजनीति का खेल नहीं। समता-अर्जन का धधकता हुआ संघर्ष है। अपने रक्त की... रक्त की आखिरी बूंद तक मैं इस लड़ाई को जारी रखूंगा।"[1] वे श्रमिक वर्ग से अपेक्षा करते हैं कि वे कंपनी के फूट डालो, राज करो की नीति को समझो। उनके झांसे में मत आओ। "वे जो नाटक कर रहे हैं, सावधान होइए उनसे ! सावधान होइए सर्वहारा वर्ग के छद्यम हितैषियों से, जिनकी असलियत घात लगाए बैठे हुए जयचंदों सी है - ऊपर से चिकनी -चुपड़ी, भीतर से बिच्छू के डंक-सी जहरीली।"[2] अन्ना साहब ने यहां वर्तमान समस्या को उजागर किया है। गाँधी जी ने भी अपने समय में इसी प्रकार लोगों को आगाह किया था। अन्ना साहब गाँधी जी के रास्ते कदम पर चलकर वर्तमान दुनिया को यह समझाना चाहते हैं कि अपने हक के लिए लड़ों, संघर्ष करो, दूसरों की बातों में मत आओ। सतर्क रहना सीखो, सतत सजग रहकर संघर्ष करो, आगे बढो।

3.8 लोकतंत्रीय व्यवस्था और आम जनता

लोकतंत्र का सीधा मतलब ही शासन की उस प्रणाली से है जिसमें

1. चित्रा मुद्गल - आवां, पृ. 178
2. वही - पृ. 179

जनता का ही सर्वोच्च अधिकार रहता है। जहाँ जनता अपना शासक खुद चुनती है। अर्थात् लोकतंत्र वास्तव में जनता का शासन ही है। सुप्रसिद्ध कथन 'जनता का, जनता के लिए और जनता के द्वारा शासन' ही लोकतंत्र का सामान्य अर्थ है। भारतीय संविधान में इसी लोकतंत्र को अपनाया गया है। किन्तु आज क्या लोकतंत्र सही अर्थों में जनता का तंत्र है? क्या जनता तय करती है सब कुछ? इनका उत्तर है 'न'। सर्वश्रेष्ठ पद्धति होते हुए भी लोक-तंत्र आज राज-तंत्र बनता जा रहा है। कल्याणकारी राज्य को अमंगल कर दिया है वर्तमान दूषित व्यवस्था ने। देश संकटग्रस्त है। जिनके हाथ में राज तंत्र है वे अपने स्वार्थ के चलते देश के भविष्य की चिंता न करके खुद की स्वार्थपूर्ति में लगे हुए हैं।

'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में (गाँधी) मोहनदास कहते हैं- "मैं यह बात स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि लोकतंत्र हमारे लिए कोई अजूबा नहीं और न ईश्वरीय सिद्धान्त है। हमारे देश में लोकतंत्र की परंपरा इतनी पुरानी है कि तब शायद बहुत से यूरोपीय देशों का अस्तित्व भी नहीं रहा होगा।"[1] भारत के लिए यह अवधारणा कोई नयी नहीं बल्कि बहुत पुरानी है। 'लोक' का हित इसमें छिपा हुआ है। देश के सभी वर्गों को, समुदायों को एक सूत्र में बाँधने के लक्ष्य से इसका नींव पडा। बहुस्वरता वाले भारतीय समाज में एकता को लाने में लोकतंत्र का होना अनिवार्य है। इसलिए भारतीय समाज के लिए लोकतंत्र की महता इतनी अधिक है कि अगर लोकतांत्रिक व्यवस्था में रत्ती भर भी आंच आ जाए तो संपूर्ण भारत को ह्रास

---

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 229

की स्थिति से बचाया जाना मुश्किल हो जाएगा।

मानवता को, मानव को सर्वोपरि मानकर चलने वाला लोकतांत्रिक दृष्टिकोण आज जनता से दूर होता जा रहा है। इसमें आम जनता की भूमिका महज औपचारिक हो गयी है। आज लोकतंत्र जनता का नहीं केवल पार्टी के आधार पर चलाने वाले मुट्ठी भर नेताओं का हो गया है। भारतीय लोकतंत्र कदम कदम पर क्षत विक्षत होता जा रहा है। 'अन्तमि सत्याग्रही' उपन्यास का नायक दूषित वर्तमान समाज के लिए चिन्तित है। वह इस उपन्यास में गाँधी जी का प्रतीक बनकर खडा है। वे इस बात को समझ रहे हैं कि आज अपनी सरकार होते हुए भी कोई फर्क नहीं है। अब अपना राज है । फिर भी अपनों का नहीं चलता है। पुलिस नगारा से कहती है कि - "तुझे कुछ नहीं मालूम।.... हम उसी सरकार के भूत हैं।... आज भी वही हो रहा है जो तब हो रहा था और आज हम पहले से भी अधिक शक्तिशाली और मनचाहा करने के लिए स्वतंत्र हैं। पैसे का युग है।"[1] मतलब गोरों की सरकार ने अपना भूत छोड रखा है। आज निरीह जनता के ऊपर स्वतंत्र भारत की सरकार तांडव कर रही है। सब कुछ सरकार के हित में जनता के अहित में।

जिस सरकार को आम, निरीह जनता के पक्ष में होना चाहिए वह अब उन नेताओं से मिलकर निरीह लोगों के शोषण करने पर उतर आए हैं। इस पर अपना दुःख व्यक्त करते हुए 'काला पहाड़' उपन्यास का पात्र नबी

---

1. डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर - अन्तिम सत्याग्रही, पृ. 83

खाँ कहते हैं कि "मनीराम, अब तो सिरकार भी तिहारी है और पुलस भी तिहारी है... हमारो भी या मुलक में कोई होतो तो आज ये दिन ना देखना पडता....।"[1] सरकार का रवैया आज इस प्रकार का हो गया है कि लोगों में धर्म, जाति के आधार पर भेदभाव करने लग गये हैं। लोकतंत्र में सब एक समान है। मानव को मानव के नज़रिए से देखने की परिपाटी से लोकतंत्र दूर हो गया है। तत्कालीन स्थिति के बारे में 'अन्तिम सत्याग्रही' उपन्यास का पात्र वंदना नगारा से कहती है कि - "यदि तात्कालीन हालत में क्रान्तिकारी सुधार नहीं हुआ तो यही सवाल एक-न-एक दिन समूची लोकतांत्रिक व्यवस्था का उसी तरह खात्मा कर देंगे जैसे राजतंत्र का हुआ था। इन्सान को तंत्र नहीं, जीवित रहने की सामूहिक व्यवस्था चाहिए। भरपूर साझेदारी के अवसर चाहिए और चाहिए आपसी पहचान।"[2] लोकतंत्र व्यक्तिवादी, तानाशाह बन गया है। इस संकट को कई वर्ष पहले ही गाँधी जी ने पहचान लिया था। इसलिए उन्होंने दलविहीन लोकाधारित लोकतंत्र का विकल्प दिया था। उनका स्वराज्य ही लोकतंत्र का आधार है।

आज हमारे देश में जो लोकतंत्र चल रहा है वह सही मायनों में खोखला होगया है। यदि भारत को वर्तमान संकटों से बचाना है तो एक मात्र अहिंसक लोकतांत्रिक तरीकों को ही अपनाना होगा। वर्तमान लोकतांत्रिक समाज पर प्रश्न चिन्ह लगाता हुआ 'अन्तिम सत्याग्रही' उपन्यास का नायक नगारा कहता है कि - "गाँधी कहाँ है? कौन जोड़े मानव को आत्मसत्य

---

1. भगवानदास मोरवाल - काला पहाड़, पृ. 442
2. डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर- अन्तिम सत्याग्रही, पृ. 31

से।... सत्य है कहाँ? फिर आग्रह का मन कहाँ से लाया जाए? उस आग्रह का जो डंडे खाए, गोली खाए, भूखा मरे, लेकिन मारनेवाले की सद्बुद्धि देने के लिए प्रार्थना करे प्रभु से।"[1] गाँधी जी की आवश्यकता है समय को, यह समय की अनिवार्य माँग है। गैर सामाजिक प्रतिबद्धता वाली वर्तमान लोकतांन्त्रिक पद्धति को नए सिरे से रूपायित करने के लिए गाँधी जी के 'स्वराज्य' जैसे पवित्र विचारधारा की आवश्यकता है। जिस सरकारी नीति के खिलाफ गाँधी जी बरसों पहले लड़े थे, आज समय वैसा ही आगया है फर्क इतना है कि आज हमारे अपने ही अपनों को मिटा रहे हैं। आज समय ऐसा आ गया है कि सरकार तय करेगी की आम जनता क्या करेगी और क्या नहीं। 'नाकोहस' उपन्यास में हम वर्तमान की इस सच्चाई का पुख्ता सबूत देख सकते हैं। "सरकार ने तय किया - हर नागरिक का खाना-पीना, रोना-गाना, हगना मूतना सरकार की निगाह में रहेगा।"[2] जनता को अपने नीचे दबोचकर राज करने के तंत्र के खिलाफ आवाज़ उठाने का समय आ गया है। यह गुलामी चाहे वह अपनों से ही क्यों न हो उसके खिलाफ संघर्ष करना ही होगा। लोकतंत्र में अधिकार प्राप्त लोगों का षड्यंत्र चल रहा है।

3.9 मताधिकार में बदलता लोकतंत्र

असल में लोकतंत्र जन कल्याण की भावना और प्रबन्धन करने वाली शासन प्रणाली है, जिसमें प्रजा अर्थात् नागरिक का ही सर्वोच्च स्थान है। किन्तु आज लोकतंत्र अपने सही अर्थों से दूर होता जा रहा एक खोखली

1. डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर- अन्तिम सत्याग्रही, पृ. 88
2. पुरुषोत्तम अग्रवाल - नाकोहस, पृ. 37

व्यवस्था बनकर खड़ी है। जिसका आज एक ही उद्देश्य है - वोट हासिल करना। इसी लोकतंत्र को बनाए रखने वाली एक महत्वपूर्ण संस्था है 'भारतीय संसद', जो निर्वाचित प्रतिनिधियों से बनती है। गाँधी जी ने बहुत पहले ही इस प्रकार की संस्थाओं की कड़ी आलोचना की है - "उन्होंने ब्रिटीश संसद को बाँझ और वेश्या कहा है, जिस पर बहुत आपत्ति की गयी, लेकिन भारतीय संसद के सदस्यों ने अपने आचरण से गाँधी जी की आलोचनाओं को ही सही साबित किया है। जिस संसद के सदस्य खरीदे और बेचे जाते हों, जैसे कि अविश्वास पर मतदान के समय संसद में हुआ था, या जिस संसद के सदस्य रुपये लेकर सवाल पूछते हों, उसे वेश्या क्यों न कहा जाय।"[1] आज कुछ अवसरवादी लोगों ने राजनीति को ध्वस्त कर दिया है। यही लोग व्यक्तिगत स्वार्थ के चलते जनतंत्र में जनता को अपने रचाये गये तंत्र में लाकर स्वयं के विकास हेतु अपने रास्ते तक पहुँचने के लिए जनता को सीढ़ी बनाई जा रही है। जनता केवल एक 'वोटर' बनकर रह जाती है। 'डूब' उपन्यास का 'माते' सवाल करता है कि "हमसे वोट के सिवा तुमने कुछ चाहा है भला? हमरी जो दशा बनाई है तुमने, उसमें और देने को है ही क्या हमरे पास? तुम्हारी दी चीज़ तो तुम हर पाँच बरस पीछे माँग ही लेते हो...।"[2] माते का यह सवाल सिर्फ उसका ही नहीं हैं बल्कि संपूर्ण हताश भारतवासियों का है। राजनीति जब अनीति में बदलने लगती है तब जनता अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो जाती है। माते इसका एक सशक्त उदाहरण है। इस प्रकार के जन विरोधी लोकतान्त्रिक व्यवस्था पर घोर आक्रोश करते हुए माते कहता है - "अब इस गाँव में चुनाव-उनाव की

1. मैनेजर पाण्डेय - भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा, पृ. 173
2. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 181

कोई ज़रूरत नहीं है।... तुम तो चुनाव में खडे होने बात सोच ही इसीलिए रहे हो ताकि यहाँ फिर से सिर-फुटौवल है, सब के सब पाप राजनीति के सिर मढ के अपने पाक-साफ बने रहे।"[1] उपन्यास में 'माते' वास्तव में गाँधी जी का ही प्रतिरूप बनकर सामने आता है। गाँधी जी ने 'चुनाव' की कटु आलोचना की थी। आज भारत में चुनाव ही लोकतंत्र का एकमात्र लक्षण रह गया है। लोकतंत्र खाली प्रहसन मात्र रह गया है। इसीलिए बहुत पहले ही गाँधी जी ने जनहित को अनदेखा करनेवाली पश्चिमी संसदीय व्यवस्था का विरोध किया था।

आए दिन लोकतंत्र एक प्रकार का मज़ाक बनता जा रहा है। मन्दिर-मस्ज़िद से संबन्धित विवाद को आग देकर अपना मुकाम हासिल करना राजनीतिक दलों को बहुत अच्छे से आता है। रवीन्द्र वर्मा के उपन्यास 'निन्यानवे' में मन्दिर निर्माण हेतु ईंटों और पत्थरों को इकट्ठा करने हेतु शोर मच रहा था। इस 'शोर' का वास्तविक अर्थ मनमोहन और कबीर की बातचीत से व्यक्त होता है, कबीर मनमोहन से पूछता है - "तो क्या ईंटों का मतलब मंदिर नहीं है, शोर है?

'हाँ'
'शोर से क्या फायदा?'
शोर को वोटों में बदल देंगे।"[2]

वास्तव में यह शोर जनता को धार्मिक भावनाओं के नीचे लाकर सांप्रदायिक राजनीति चलाने के लक्ष्य से है। ताकि सत्ता मोही समाज में धार्मिक विष फैलाकर अपनी राजनीति आसानी से चला सकें।

---

1. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 93
2. रवीन्द्र वर्मा - निन्यानवे, पृ. 182

लोकतंत्र में चुनाव को वास्तव में आम जनता के कल्याण के लिए अपनाया गया था। ताकि जनता खुद अपने नेता को चुन सकें। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में इस बारे में गाँधी जी कहते हैं कि -"लोकतंत्र में मताधिकार ही साधनहीन और दुर्बल लोगों का आत्मबल है।"[1] किन्तु आज इसी आत्मबल का ज़्यादा दुरुपयोग हो रहा है। वोट की राजनीति में व्यक्ति केवल मतदाता ही रह जाता है, वह अस्तित्वविहीन हो जाता है। 'डूब' उपन्यास का माते कहता है - "हम दुनिया वालों को यह बताना चाहते है कि इस गांव में सात सौ तीन वोटर नहीं, हाड़-मांस वाले, दया-धर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य को जानने - समझने वाले, दिल-दिमाग रखने वाले इनसान रहते हैं।"[2] वर्तमान राजनीति मनुष्य की संवेदनाओं को नगण्य समझकर स्वार्थ पर अधिष्ठित हो गया है। मतदान व्यक्ति का अधिकार है, किन्तु उसी अधिकार का हनन आज हो रहा है।

3.10 भ्रष्टाचार की राजनीति

आज की राजनीति छल-छद्म प्रधान हो गयी है। छल, कपट, स्वार्थ, संकीर्णता, लोभ और मोह से मण्डित होकर राजनीति भ्रष्ट हो चुकी है। भ्रष्ट राजनीति में भ्रष्टाचार के प्रति संवेदनहीन होता जा रहा नेता वर्ग भी इसका एक मुख्य अंग है। छलबल, बाहुबल और धनबल से राजनीति में एक ऐसा वर्ग उभर आया है जिसके सामने सरकार कठपुतली बनकर खड़ी है। भ्रष्ट नेता ऐसे दीमक की तरह है जो धीरे-धीरे समाज की बुनियाद को

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 230
2. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 93

खोखला करते जा रहे हैं। 'इदन्नमम' उपन्यास में दादा-बाऊ को बताते हैं कि - "राजकाज की भाखा समझना तुम्हारे-हमारे बस की नहीं है मातौन। काहे से कि जब तक हम एक बात समझ पायें, तब तक तो हमारे नेता लोग चार पहेलियाँ और धर देते हैं हमारे सामने। वह भी ऐसे, जैसे कुनैन को शक्कर में लपेट दिया हो। सरकार और विपक्षी दलों का गोरख धंधा मछेरे का जाल-सा फैला है। कहाँ-कहाँ तक बचे आदमी। वे लोग, जीभ-जुबान से लोकसभा-विधानसभा में लड़ते हैं। स्याही कलम से अखबारों में, और करम-आचरण से हम-औरों के बीच मचवाते हैं महाभारत।"[1] नेता वर्ग से आदमी घृणा करने लगे हैं। इन का काम है चिल्लपों करना, जनता को अंधा बनाकर भ्रष्ट राजनीति को चलायमान रखना।

यह इस देश का दुर्भाग्य है कि आज़ादी के इतने वर्ष पश्चात् भी यहाँ की जनता यह कहने के लिए मज़बूर हो रही है कि आज से अच्छा तो अंग्रेज़ों के समय का राज था। तब न तो इस प्रकार का भ्रष्टाचार था न ही राजनीति इतनी गंदी थी। जब राज सत्ता अपने हाथ में आ गए तो इस देश को अपनों ने ही तोड़ दिया है। देश की स्थिति पर 'शेष कादंबरी' नामक उपन्यास का पात्र 'देवीदत्त', जो कि एक गाँधी भक्त है, राजनीतिज्ञों पर टिप्पणी करता है कि - "रंडी की भी इज्जत होती है। उसके भी कुछ उसूल होते हैं। ये लोग तो रंडियों से भी गिरे हुए लोग हैं। इस देश की राजनीति अब रंडी की मंडी बन गई है।"[2] जिन नेताओं को समाज का उद्धार करना

1. मैत्रेयी पुष्पा - इदन्नमम, पृ. 17
2. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 62

चाहिए वही लोग अवसरवादी एवं बेईमान होता जा रहा है। सत्ता का मोह इन पर इतना चढ़ गया है कि ये लोग केवल नोट की भाषा समझते हैं।

आज की राजनीति शोषण पर केन्द्रित हो गयी है। भ्रष्टाचार से राजनीति छल-छद्म प्रधान हो चुकी है। समय इस प्रकार से पलट गया है कि सत्ता लोलुपता प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव का अभिन्न अंग बन गया है। इनकी आँखों में मानवीयता नामक चीज़ ही नष्ट हो गयी है। ये खाली अपनी जेब भरने की कोशिश में रहते हैं। "साव लोगों के जाने के बाद कई लोगों ने कोशिश की बिना घूस दिए, कि बिना साव की बही में नया अंगूठा निशानी उतरवाए पा जाँए मुआवजा। मगर ऐसी अनहोनी सचमुच संभव नहीं थी। अव्वल तो एल.ओ.ओ के दफ्तर में बाबू तो बाबू चपरासी तक ऐसे पेश आता था जैसे उसके सामने कोई शाह नहीं चोर आ खड़ा हुआ हो ! जैसे देश के विकास के लिए अपना सब-कुछ देने वाला देशप्रेमी नहीं - कोई देशद्रोही आ पहुँचा हो ! जैसे अपनी ज़मीन की सही कीमत लगाने का अनुरोध करने या जो सरकार ने तय कर दी है, मन मारकर वही कीमत पाने की तमन्ना लेकर आने वाला कोई लाचार, बेबस, ठगा गया भोलाभाला किसान नहीं - भिखारी आ खडा हुआ हो।"[1] आज पूरा सरकारी तंत्र भ्रष्टाचार की गिरफ्त में है।

वर्तमान राजनीतिज्ञों पर कटाक्ष करते हुए 'बिस्रामपूर का संत' उपन्यास का पात्र विवेक अपने पिता कुँवर जयंती प्रसाद सिंह से कहता है

1. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 232

कि - "बाबूजी, इन राजनीतिज्ञ जंतुओं में सचमुच ही अगर कोई ऐसा दिखे- जिसकी हैसियत कुत्ते से बेहतर हो तो बताइएगा। देखना चाहूँगा कि वह कैसा दिखता है।"[1] आज नेता लोग राजनीति की आड़ में अपना ही खेल खेल रहे हैं। लोगों को ठगना, घोटाले करना आदि एक सामान्य बात हो गयी है। जनता उनके इन करतूतों को बहुत अच्छे से पहचानने लग गई है। राजनीति खेलते खेलते इन तथाकथित नेता लोगों में लेश मात्र का भी इन्सानियत नहीं बची है। चाहे कुछ भी हो जाए, दूसरों के घर में अंधेरा करके अपने घर को उजाले में रखना इनकी फितरत हो गयी है। ऐसे ही नेता लोगों का प्रतिनिधि है कुंवर जयंतीप्रसाद सिंह। उनके अन्दर सत्ता का मोह इतना अधिक है कि वे बिलायत में बैरिस्टरी करने के बाद पहले हाईकोर्ट में वकालत करते थे। वे दिल्ली चले जाते हैं ताकि सरकार में उन्हें कोई अच्छा पद मिल जाए। वे बाद में महामहिम का पद हासिल भी कर लेते हैं। भोगी, लंपट व्यक्ति के रूप में जयंती प्रसाद का चित्रण उपन्यास में किया गया है। सेवानिवृत्त हो जाने के बाद जब उनको अपने राजनीतिक भविष्य अंधेरे में पड़ते हुए नज़र आता है तब वह बहुत ही सरलता से बिस्रामपुर में जाकर संत का चोगा धारण कर लेने का निर्णय लेता है। इसी पर विवेक टिप्पणी करता है कि - "ये महापुरुष अब सत्ता से वंचित होकर नाटकीयता में जीना चाहते हैं।"[2] यहाँ पर राजनीतिज्ञों के चरित्र का खुलासा किया गया है। ताकि इनकी चर्चा एक न तो दूसरे रूप में हो सकें। वर्तमान समय में बहुत सारे

1. श्रीलाल शुक्ल - बिस्रामपुर का संत, पृ. 68
2. वही - पृ. 79

राजनीतिज्ञ का चरित्र कुंवर जयंतीप्रसाद जैसा मिल जाएगा। जो एक तरफ भोगवादी, दूसरी तरफ समाज सुधारक, तीसरी तरफ सन्त बन बैठे हैं। समाज के हितैषी, समाज सुधारक के नाम पर राजनीतिक महत्वकांक्षा रखने वाले इस देश में कम नहीं हैं जिनको खाली नाटक खेलना आता है।

'ज़मीन' उपन्यास में भी ऐसे पात्र हैं जो अपनी करतूतों पर पर्दा डालने के लिए सत्ता में अपना स्थान पा लेता है। जो कि पहले ब्रिटिश के पक्षधर रहता है बाद में आज़ादी के पश्चात् कांग्रेसी बन जाता है। जिस व्यक्ति ने राष्ट्रीय आन्दोलन को नाकाम करने की कोशिश की आज वही कांग्रेस का मेम्बर बनकर आया है। बहादुरसिंह कहता है कि - "खुशी की बात यह है कि देश आज़ाद हो गया और अपनी सरकार बन गयी, कांग्रेसी सरकार। इस सरकार को चलाने की जिम्मेदारी हम सब पर है। हमारा फर्ज है कि मुस्तैदी से कांग्रेस के काम को आगे बढ़ाए और ज़्यादा से ज़्यादा तादाद में कांग्रेस का मेम्बर बने।"[1] वास्तव में यही बहादुर सिंह उपनिवेशवादियों के पक्ष में रहकर जनता का शोषण करनेवालों में से एक था। इसी के द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को तोडने की कोशिश की गई थी। किन्तु सत्ता मोह के कारण आखिर वह पलट जाता है।

राजनीतिज्ञ कितने स्वार्थपरक एवं राजनीति कितनी भ्रष्ट हो गयी है का एक उदाहरण है 'डूब' उपन्यास का ठाकुर देवीसिंह की सोच - "अब उन्हें मालूम था कि वे ऐसी पार्टी के उम्मीदवार होने जा रहे हैं जिसे सदियों

---

1. भीमसेन त्यागी - ज़मीन, पृ. 103

तक इस देश पर शासन करना है। उन्हें मालूम है कि वोट उसी को मिलेगा जिसकी लाठी में ज़ोर होगा। उन्हें मालूम है कि पुलिस, दरोगा उसी को सलाम बजाएँगे, उसी की हिफाजत करेंगे जिसके हाथ में ताकत होगी। उन्हें मालूम है कि जब तक अपने लठैत, अपना दरोगा अपने वोटर और अपना सुरक्षित क्षेत्र न हो, तब तक इस देश में राजनीति में लंबे समय तक बने रह पने का स्वप्न नहीं देखना चाहिए।"[1] राजनीति में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो चुका है, समाज कल्याण का इरादा तो दूर अमानवीयता का तांडव हो रहा है। सत्ता के प्रति मोह, अधिकार हासिल करने की ललक से समाज और देश का उद्धार नहीं बल्कि स्वयं का उद्धार हो रहा है।

'काला पहाड़' उपन्यास का एक प्रसंग देखिए "मानवीय प्रधानमंत्री जी, जैसा कि आप जानते हैं हमारा यह इलाका बेहद गरीब और पिछड़ा हुआ है। यहाँ पिछले कई सालों से न के बराबर बारिश हो रही है जिसके कारण सारे जोहड़ और तालाब सूख चुके हैं। मटर, जौ, चना जैसी फसलें पैदा होनी बंद हो गई हैं। इसलिए इलाके की ओर से चौबीसी की पहली माँग यह है कि मेवात में सिंचाई की पर्याप्त सुविधाएँ मुहैया कराई जाए और बरसों से मंजूर 'मेवात नहर' का निर्माण जल्दी शुरु कराया जाए...।"[2] वास्तव में यहाँ मेवात के प्रति राजनेताओं की लापरवाही देखा जा सकता है। चुनाव के समय आकर वोट बटोरने और सांप्रदायिक राजनीति करने के

1. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 39
2. भगवानदास मोरवाल - काला पहाड़, पृ. 18

लिए इनके पास समय है। फिर वापस दिल्ली फरार हो जाते हैं। इस प्रकार गरीब की माँग, माँग ही रह जाती है।

3.11 शिक्षा क्षेत्र की विसंगतियाँ

किसी भी समाज में शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। गाँधी जी से जब एक बार पूछा गया कि क्या आप शिक्षा के ज़रिए किसी खास तरह का समाजिक संगठन पैदा करने का प्रयत्न करेंगे? तो उनका जवाब था कि "अगर व्यक्ति का चरित्र निर्माण करने में हम सफल हो जायेंगे, तो समाज अपना काम आप संभाल लेगा। इस प्रकार जिन व्यक्तियों का विकास हो जायेगा, उनके हाथों में समाज के संगठन का काम मैं खुशी से सौंप दूँगा।"[1] यही शिक्षा के माध्यम से वे हासिल करना चाहते थे। प्रारंभ में शिक्षा से तात्पर्य नैतिकता का विकास था जब कि आज इसका उद्देश्य प्रॉडक्ट संस्कृति को बढ़ावा देना होगया है। आज हमारे समाज में शिक्षा से जुड़े कुछ संकीर्ण विचारधारा के लोगों की संकीर्णता एवं स्वार्थपरता के कारण शिक्षा के क्षेत्र में गिरावट हो रही है। 'जय गाथा' नामक उपन्यास में शिक्षा के महत्व को दर्ज करते हुए ज्योति बाबू कहते हैं कि "विद्या ही मनुष्य को देवता बनाती है और विद्याविहीन मनुष्य जानवर कहलाता है।"[2] यहाँ ज्योति बाबू अपने बेटे जयन्त को एक अच्छा इन्सान बनाने के लिए उसको शिक्षा का महत्व समझाता है। यहाँ ज्योति बाबू पर बापू का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई पड़ता है।

---

1. महात्मा गाँधी - सर्वोदय - पृ. 158
2. डॉ. मधुकर गंगाधर - जय गाथा, पृ. 67

आज स्थिति कुछ और ही है। शिक्षा के क्षेत्र में भी राजनीति घुस आई है। आज किसी के पास भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं है। 'पुरुषोत्तम अग्रवाल' द्वारा लिखित 'नाकोहस' में समकालीन बदलते परिवेश का सटीक चित्रण हुआ है। सुकेत, रघु और शम्स तीनों पक्के दोस्त हैं। सुकेत विश्वविद्यालय के प्रोफसर हैं। सुकेत को कुछ छात्रों ने नेशनल सेंटीमेंट्स से खिलवाड़ करने के जुल्म में देश का गद्दार घोषित कर दिया है। ये छात्र वर्तमान सरकार के पिट्टू हैं। सुकेत द्वारा लिखे गए परंपरा, संस्कृति और धर्म के नाम पर चल रही हिंसक राजनीति के विरुद्ध पॉलिटिकल आर्ग्यूमेंट को विवादास्पद बना दिया है। यह आज की त्रासदी है। किसी की अभिव्यक्ति को राष्ट्रवादी तत्वों से लपेटना और उस व्यक्ति को और उनके विचारों को राष्ट्रविरोधी बना देना, उसका मुँह बन्द कर देना - यही सब आज समाज में चल रहा है। आज शिक्षा भी सत्ता पर जो बैठी है उनके हिसाब से चलती है। यहाँ तक की नव पीढ़ी को भी ये लोग बहला फुसलाकर उनकी आँखों पर पट्टी बांध देते हैं। आज शिक्षा क्षेत्र में नैतिकता का लोप होता जा रहा है। 'नाकोहस' के गिरगिट तीनों दोस्तों को उठा लेता है और अपनी सीख पर चलने के लिए उन्हें मज़बूर कर देते हैं। वह कहता है कि "मेरे लध्दड़ बुद्धिजीवी विद्यार्थियों, बात यह है कि हम होमोसोपियन अब होमो-इकोनॉमिक्स की अगली स्टेज-होमो-इनफोमेटिक्स में प्रवेश कर चुके हैं... अब हम सब को परिभाषित करने वाली एक्टिविटी है - इन्फर्मेशन और एन्टरटेनमेंट-सूचना और मनोरंजन-इक्कीसवीं सदी के मनुष्य-होमो इनफोमेटिक्स - को

करना यही है कि काँक्रीट के जंगल में निवास करें, सूचना के वन का विकास करे और मनोरंजन के उपवन में विहार करें... मस्त, चकाचक... ।"[1] इसका मतलब यह है कि आज शिक्षा पर नैतिकता का नहीं बल्कि नवीन सूचना प्रणाली का हस्तक्षेप है। इसी को शिक्षा का आधार बनाया जा रहा है। शिक्षा व्यवस्था ऐसा होना चाहिए कि वह आनेवाली पीढियों को दिशा प्रदान करें, किन्तु यहां नवीन रास्ते उनको दिशाहीन बनाते जा रहे हैं।

'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में शिक्षा पद्धति के बारे कहा गया है। मोहनदास (गाँधीजी) के मन में सवाल उठता है - "बच्चों को दी जानेवाली शिक्षा का उद्देश्य क्या हो? आत्मसम्मान, स्वतंत्रता या फिर डिग्रियाँ और कैरियर?... आत्मसम्मान और स्वतंत्रता विहीन शिक्षा हो या अशिक्षा, दोनों ही मिट्टी के ढेर से ज़्यादा कुछ नहीं, चाबीवाले बबुये हैं जिन्हें अपने पैरों चलने के लिए ही चाबी की ज़रूरत पड़ती है।"[2] यह वर्तमान समाज के लिए कहा गया जान पड़ रहा है। आज शिक्षा पद्धति कैरियर ओरिएन्टेड हो गयी है। वास्तविक शिक्षा से मतलब बच्चों को फर्राटेदार अंग्रेज़ी बोलना ही होगया है। व्यावहारिक ज्ञान की कमी, अत्मीयता का लोप, एक दूसरे को सम्मान देना जैसी बातों को हटाकर एक प्रकार की प्रतिस्पर्धात्मक पद्धति को अपनाया जा रहा है। मोहनदास अपनी पत्नी से कहते हैं कि- "तुम यह क्यों नहीं समझतीं, दो-चार अंग्रेज़ी के शब्द जान लेना पढ़ाई नहीं है.. असली

---

1. पुरुषोत्तम अग्रवाल - नाकोहस, पृ. 122
2. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 450

पढ़ाई चरित्र है, संयम है.. त्याग है, सन्तोष...लिप्सा से मुक्ति है।"[1] आज इस सोच को अपनाने की सख्त ज़रूरत है। तभी नयी पीढ़ी नैतिक रूप से सबल, कौशलपूर्ण, आत्मनिर्भर, चेतन से युक्त होगी।

3.12 लोकतंत्र से स्वराज्य तक

गाँधी जी ने कहा था कि यदि भारत में जनतंत्र का विकास करना है तो हिंसा और असत्य से किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जा सकता। आज हिंसा का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा है। ग्राम स्वराज्य से गाँधी जी का तात्पर्य पूर्ण प्रजातंत्र से था। उजड़े हुए देहात के पुनरुद्धार के साथ देश का सर्वांगीण विकास ही उनका लक्ष्य रहा। सतही विकास के लिए ज़रूरी है समाज की वास्तविक समझ। विकासशील भारत में आज भी ऐसे वर्ग हैं जिनके लिए रोज़मर्रा का जीवन जीना मुश्किल हो रहा है। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में सदाशयव्रत अपने भाषण के दौरान बलिया की जनता को समझाता है कि - "स्वावलंबन, स्वदेशी, एकता के ये मूल्य छूटने न पाएँ, नष्ट न हों, हमारी स्वतंत्रता और उन्नति के लिए ये अत्यन्त आवश्यक हैं।"[2] किन्तु देश ने इन सारी बातों को भुला दिया। पाश्चात्य रुपरेखा के अनुसार उसने देश का संपूर्ण विकास चाहा। देश को अन्य विदेशी कंपनियों के लिए खोल दिया गया है। अपना स्वावलंबन करने के बजाए दूसरों को आत्मनिर्भर करते गए। नतीजा यह हुआ कि भारत विदेशों के लिए ग्राहक बन गया। सरकार को भी इन विदेशियों ने खरीद लिया। विदेशी तंत्र ने गाँधी जी के

---

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 482
2. अमरकान्त - इन्हीं हथियारों से, पृ. 536

स्वराज्य की परिकल्पना का ध्वंस कर दिया। सब कुछ सरकार के चाहने से होता है। 'फाँस' उपन्यास में एक प्रकार का प्रतिशोधी व प्रतिरोध का स्वर गूँज उठा है। उपन्यास में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार ग्राम सभा ने अपना हक हासिल कर लिया है। वहाँ की जनता ने अपनी ताकत समझ ली है। तोपा ने कहा कि- "आज का हाल यह है कि पुणे से अधिकारी आते हैं माल खरीदने लेकिन हम तय करते हैं कि तेंदू -पत्ते का रेट क्या होगा, चारोड़ी का रेट क्या होगा? मावा का रेट क्या होगा। रेट जनता तय करेगी। कोइ 2 बोरा अनाज उगाये तो 4 किलो ग्रामसभा का। सारी संपत्ति ग्राम समाज की।"[1] आगे तोपा कहता है कि "बाँस का बेड़ा बनाकर सीमा बना दी गई है - 118 हेक्टेयर जंगल। हमारी ग्राम सभा, बन सुरक्षा समिति के परमिशन के बिना इस 118 हेक्टेयर में सरकार का पत्ता भी नहीं खडक सकता। दण्ड तक देने का अधिकार भी हमारा।"[2] यही हैं असल में अपनी ताकत की समझ। यही समझ सब में होनी चाहिए। अपने उद्धार के लिए अब सरकार का नहीं बल्कि अपने आप को ही इस ओर कदम उठाने होंगे। तभी ऐसा विकास संभव होगा जिसमें निम्न से निम्न, गरीब से गरीब व्यक्ति को भी लाभ पहुँचेगा। इसी ओर चलने के लिए गाँधी जी ने बहुत पहले कहा था। मनुष्य को केन्द्र में रखकर होनेवाला बुनियादी विकास को लाना होगा।

3.13 निष्कर्ष

सामाजिक विकास को अगर सही अर्थों में हासिल करना है तो

---

1. संजीव - फाँस, पृ. 240
2. वही - पृ. 240

भारत को गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित उस चिंतन को अपनाना होगा जिसका मूलाधार भारतीय संस्कृति ही है। इस ओर विचार करना भारतीय जनता के लिए अधिक लाभकारी सिद्ध होगा। छल-छद्म प्रधान इस लोकतान्त्रिक समाज में इतनी विकृतियों ने अपनी जगह बना ली है कि उसकी तोड़ गाँधी जी द्वारा दिखाये गये विचारों को अपनाने से ही संभव है। आज वक्त ऐसा आ गया है कि महानगरीय संस्कृति ने एक ओर मानव को स्वार्थी बना दिया है, दूसरी ओर इस संस्कृति ने उसको लगभग मृत बना दिया है। मृत बनती जा रही जनता का समाज न केवल बौद्धिक रूप से अचेत है बल्कि राजनीतिक रूप से भी वह दास हो चुका है। इस प्रकार की मूर्च्छा का प्रमुख कारण है जनता की विचार शक्ति का नष्ट हो जाना। यदि सच्चे लोकतान्त्रिक तत्वों को समाज कल्याण हेतु अपनाया जाना है तो धनतंत्र की ओर अग्रसर हो रहे भारतीय लोकतंत्र को अपने सही अर्थों से पहचान करवाना होगा। यह जो स्थिति उत्पन्न हुई है ये सिर्फ राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं है, खाली नेता लोग ही इसका शिकार नहीं है बल्कि हर एक आम जनता किसी न किसी रूप में धन और पद की मोह में संकीर्ण एवं स्वार्थ प्रेरित बनती जा रही है। इसीलिए "एक भविष्यद्रष्टा की भांति गाँधी जी ने ये भविष्यसूचक चेतावनी-भरे शब्द कहे थे कि भ्रष्टाचार व्यापक पैमाने पर हो रहा है, जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में हिंसा का विस्फोट हो रहा है और जिन मूल्यों को हमने अपने दिलों में संजोया था उनका चिन्ताजनक रूप से ह्रास हो रहा है।"[1] नैतिक मूल्यों की ह्रास की स्थिति ने भारतीय समाज को झकझोर कर रखा है। समय

---

1. नरेन्द्र मोहन - आज की राजनीति और भ्रष्टाचार, पृ. 22

रहते अगर उस नष्ट की पहचान कर लिया जाए तो अभी भी बहुत कुछ हो सकता है। बस इतना जान लेना ज़रूरी हो गया है कि अब बैठ के तमाशा देखने का समय चला गया है। ये जो समय है वह कुछ कर दिखाने का समय है, कुछ ऐसा कर दिखाने का जिसको देश हमेशा याद रखेगा। जिस देश को वापस हासिल करने के लिए जितनों ने अपना बलिदान दिया था, नयी पीढ़ी के लिए अपनी संस्कृति बचाकर रखा था, उनके बलिदान का मूल्य चुकाने का समय आ गया है। जिस तरह 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में रूबी दी वर्तमान देश की दुर्दशा पर आहत होकर कहती है - "जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़िया करती है बसेरा, वो भारत देश है मेरा। क्या यही वह सोने की चिड़िया है, जो किसी समय में भारत में डाल-डाल पर उस तरह रहती थी, जैसे कि अब कौए रहते हैं?"[1] जिस देश की समृद्धि सात समुन्दर पार तक पहुँच गया था आज उस भारत के खोये हुए सम्मान को पुनःप्राप्त करना है तो गाँधी जी के विचारों में डुबकियाँ लगाना मौजूदा समय की माँग है।

❖ ❖ ❖

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 123

चौथा अध्याय

भूमंडलीकरण के अर्थतंत्र एवं विकासवाद के प्रतिरोध में गाँधी चिंतन

भूमंडलीकरण के अर्थतंत्र एवं विकासवाद के प्रतिरोध में गाँधी चिंतन

भूमंडलीकरण वास्तव में एक ऐसा सिद्धान्त है जिसका सीधा संबन्ध संपूर्ण विश्व से है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो भूमंडलीकरण का अर्थ सीमाओं के आर पार जाने से है। संपूर्ण विश्व को एक सूत्र में देखना, राज्यों की सीमाओं को लाँघना, विश्व मानवता की स्थापना जैसे तत्व भी भूमंडलीकरण शब्द के पीछे छिपे हुए हैं। विश्व को एक ग्राम में बदलने की सोच से उभरा हुआ यह सिद्धान्त आज सिर्फ बाज़ार और बाज़ारवाद से जुड़ गया है। वर्तमान द्वन्द्वात्मक समय में जहाँ एक ओर पूरे विश्व को एक सूत्र में बाँधने की कोशिश चल रही है वही दूसरी ओर निहित स्वार्थों एवं बढ़ती प्रतिस्पर्धा के चलते तनाव बढ़ते जा रहे हैं। संपूर्ण दुनिया में 'मानव कल्याण' की सोच को लक्ष्य बनाकर एक ऐसी संस्कृति का विकास जिसमें विश्वग्राम की संकल्पना को जीवन्त रूप प्रदान करने वाली अवधारणा से हटकर आज भूमंडलीकरण अर्थ सत्ता के कारण 'वसुधैव कुटुम्बकम' की सोच से प्रायः स्वयं सिद्धि में विलीन हो गयी है।

भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण का सीधा संबन्ध अर्थ तंत्र से है। संपूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था का समेकन ही इसका लक्ष्य है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी की मदद से वस्तुओं, सेवाओं आदि का स्वतंत्र या मुक्त रूप से राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार करना ही वैश्वीकरण कहलाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इसका प्रत्यक्ष संबन्ध 'अर्थ' पक्ष से है। अर्थ से तात्पर्य है

'मूल्य'। मूल्य ही इस संसार का चलती फिरती वस्तु है, जिसके चलने से ही संसार चलता है। इस मूल्य का निवास स्थान 'बाज़ार' है। अर्थात् भूमंडलीकरण का मुख्य कार्य क्षेत्र बाज़ार है। वैश्वीकरण मुक्त बाज़ार के स्वतंत्र विनिमयन से जुड़ा हुआ है। आज बाज़ार की शक्तियाँ संपूर्ण विश्व में स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगी है। विश्व व्यापार का तीव्र गति से विस्तार हो रहा है। विश्व भर में पारस्परिक सहयोग एवं समन्वय की सोच से उभरा भूमंडलीकरण आज इस सोच से काफी दूर जा चुका है। यह केवल कुछ सीमित राष्ट्रों का होकर रह गया है।

भारत में भूमंडलीकरण का प्रभाव काफी सशक्त होता जा रहा है। जिसके फलस्वरूप एक नए भारत का उदय हुआ है। नवीन आर्थिक नीतियों के चलते भारत विश्व के लिए एक ऐसा बाज़ार बन गया है जहाँ निवेश करना अर्थिक रूप से काफी लाभदायक है। इस नवीन संस्कृति ने भारत में कुछ ऐसे लोगों को पैदा किया है जो यहाँ की आम जनता की तुलना में अपने आप को पश्चिम में निवास कर रहे लोगों से ज़्यादा निकट महसूस करते हैं। यह दौर भूमंडलीकरण का है। जीवन प्रक्रिया में काफी बदलाव आ चुका है। संचार तथा सूचना के साधनों का अपरिमित फैलाव हुआ है। आज देश ग्लोबल बन गया है। आज का परिदृश्य यह है कि देशवासी अपनी संस्कृति को भुलाकर पैसे कमाने की होड में लगे हैं। संवेदनहीन मानव ग्लोबल इण्डिया में जन्म ले चुका है।

आज समय ऐसा आ गया है कि राज्य पर देशवासियों का अधिकार नहीं बल्कि राज्येतर शक्तियाँ हावी हैं। भूमंडलीकृत दुनिया पर कुछ तथाकथित

वर्ग का हस्तक्षेप है। इण्डिया नव उपनिवेश बन गया है। जिस रीति को पुराने समय में ब्रिटेन ने अपनी कंपनी के द्वारा चलाया था आज उस रीति को पुनःनवीन पद्धतियों के रूप में अमेरिका द्वारा विश्व भर में किया जा रहा है। भारत जैसा विकासशील देश इस विश्व शक्ति के आगे नगण्य एवं शक्तिहीन है।

भारत में भूमंडलीकरण नब्बे के दशक में शुरु हुआ। नयी आर्थिक नीति भारतीय अर्थव्यवस्था में निरन्तर सुधार लायी। भूमंडलीकरण से भारतीय परिवेश में कई प्रकार के बदलाव नज़र आने लगा। विदेशी पूँजी के आगमन से भारतीय अर्थव्यवस्था निखर उठी। आधारभूत संरचनाओं का विकास, रोज़गार में वृद्धि आदि से विकासशील भारत में एक नवीन आर्थिक सुधार ने दस्तक दी। आधुनिक तकनीकों का नया द्वार खुल गया, इतना ही नहीं इनका उपयोग अधिकतम लोगों तक पहुँचा। एक सेकण्ड में ही जानकारी प्राप्त करने की सुविधा इन्टरनेट के माध्यम से हुई। प्रत्येक क्षेत्र में इस बदलाव का सकारात्मक प्रभाव देखा जा सकता है। किन्तु इन उपलब्धियों के साथ साथ वैश्वीकरण का नकारात्मक प्रभाव भी समाज पर पड़ा रहा है। भारत के कुटीर एवं लघु उद्योगों का मार्ग अवरुद्ध हो रहा है। विदेशी कंपनियों के आने से भारतीय कंपनियों के लिए बना रहना मुश्किल होता जा रहा है, जिससे इन भारतीय कंपनियों का विदेशी कंपनियों में अधिग्रहण हो रहा है। विदेशी ब्रान्डेड वस्तुओं का प्रयोग इतना बढ़ गया है कि आज इसी

के शोरुम खुलते जा रहे हैं। इलक्ट्रॉनिक वस्तुओं का चीन से इण्डिया के बाज़ारों में भर दिया जा रहा है। कृषि क्षेत्र में भी भूमंडलीकरण नकारात्मक प्रभाव दिख रहे हैं। बी.टी कॉटन, ट्रान्सजनिक खेती जैसे नवीन प्रयोगों को अपनाने के लिए किसानों को मज़बूर किया जा रहा है। ये बेचारे आसानी से विदेशी कंपनियों के जाल में फँसते जा रहे हैं।

भूमंडलीकरण और उससे उत्पन्न विकास के नकारात्मक प्रभावों को गाँधी चिंतन के माध्यम से कम किया जा सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात नव आधुनिक भारत ने गाँधी जी और उनके आदर्शों को नकारा। भारतीय परिप्रेक्ष्य के लिए अनुकूल गाँधी जी के चिंतन प्रक्रिया द्वारा आज के इस संकट से राहत प्राप्त किया जा सकता है। गाँधी जी ने स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर ज़ोर दिया था। विदेशी वस्तुओं को त्यागने, उसके बहिष्कार पर बल दिया था। औद्योगिकरण के विरुद्ध खड़े होकर उन्होंने लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास करने के लिए कहा। यदि हमने पहले ही इस चिंतन प्रक्रिया को अपनाया होता तो आज भारत अपने पैरों पर खड़ा होता, न किसी नवउपनिवेश का शिकार बनता। वर्तमान परिस्थिति में सर्व-साधारण को बचाने, देश को एक बार फिर से जागृत करने के लिए गाँधी जी और उनके स्वदेशी नीति का ही एकमात्र सहारा है।

4.1 वैश्वीकरण बनाम नव उपनिवेशवाद

नवउपनिवेशवाद एक व्यवस्था है जिसमें शक्तिशाली, विकसित राष्ट्र अपना नियंत्रण विकासशील देशों पर परोक्ष रूप से रखता है। पूर्व के

उपनिवेशी ताकतों ने अपना आधिपत्य, अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए एक नया मुखौटा धारण कर लिया है। बहुराष्ट्रीय निगम इसका प्रमुख साधन है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें नव साम्राज्यवादी ताकत आर्थिक रूप से पिछड़े देशों को अपने नियंत्रण में रखती है। 'कलि कथाःवाया बाइपास' उपन्यास भूमंडलीकरण के इस युग में किस प्रकार व्यक्ति और समाज में बदलाव आ गया है, का पर्दाफाश करता है। वह उस चीज़ से बेखबर रहता है कि उसने असल में क्या खोया है और क्या पाया है। किशोर बाबू जो समाज से कटा हुआ हैं कि एक बाइपास सर्जरी क्या हुई उनका देखने का नज़रिया ही बदल जाता है। आधुनिक बनता मध्यवर्ग का एक सशक्त उदाहरण है किशोर बाबू - "किशोर बाबू की एक ज़िन्दगी में तीन ज़िन्दगियाँ जी गई हैं। देश की आज़ादी तक यानी बाइस साल की उम्र तक उनकी एक ज़िन्दगी थी। उसके बाद उनकी दूसरी ज़िन्दगी शुरु होती है - पूरे पचास साल की ज़िन्दगी। इस दूसरी ज़िन्दगी में पहली जिन्दगी की कोई छाया तक नहीं थी। इसलिए किशोर बाबू उसे एक नए जन्म की तरह ही अब देख पाते हैं। यह भला कौन कह सकता है कि किशोर बाबू की ज़िन्दगी के ये पचास साल भारतवर्ष के 'लोकतंत्र' के पचास सालों की तरह रहे हैं, जिनमें आज़ादी की लड़ाई के आदर्शों की खुरचन तक नहीं रही।"[1] आज़ादी से पहले जो किशोर था, वह अंग्रेज़ों से घृणा करता था किन्तु आज़ादी के तुरन्त बाद ही उसने आधुनिकता को अपनाया। नये समय के अनुसार उसने सब कुछ बदल दिया, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार देश में परिवर्तन दिखाई पडा। आज़ादी

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथाः वाया बाइपास, पृ. 109

तक गाँधी जी की विचारधारा से प्रभावित भारत के लोगों ने आज़ादी के पश्चात नेहरु की नवीन पश्चिमी रीति को अपनाया। तब से पश्चिम का अनुकरण शुरु किया गया। देश के लिए ज़रूरी है उसकी आत्मा को समझनेवाला विकास। पश्चिम की विकास नीति को अपनाकर भारत ने अपने को एक बार फिर से पराधीन कर दिया। इस युग का नाम पड़ा नवउपनिवेश का युग। यहाँ प्रत्यक्ष रूप से सब कुछ अपना दिखाई देता है किन्तु परोक्ष रूप से किसी और का चलता है। विश्व के शक्तिशाली राष्ट्र ने फिर से भारत पर अपना आधिपत्य जमाया है। पश्चिमी मॉडल को अपनाकर हमने एक बार फिर से नव साम्राज्यवादी ताकतों को अपने ऊपर बिठा दिया है। अमोलक की बातों को देखिए - "अपने देश को बाइपास का विदेशी फंड से तुम कुछ नहीं कर सकोगे। तुम्हें जो करना है, वह अपने बूते पर करना होगा।"[1] आज़ाद देश अपना सब कुछ भूल गया। अपनी परंपरा, संस्कृति, मूल्यों को छोड़कर किसी और के समर्थन का मुहताज बन गया। आखिरकार उसे नवउपनिवेश का शिकार बनना पड़ा। उपन्यास के अन्त में शांतनु कहता है - "हमने किसी समस्या के कारणों को मिटाने की कभी कोशिश नहीं की। हर समस्या को बाइपास करने के रास्ते ढूँढ़ते रहे।"[2] भारतीय कभी भी समस्या की गहराई तक जाकर उसका समाधान ढूँढ़ने वाला कार्य नहीं करते। वह हमेशा सामने दिखे शॉर्टकट रास्ते का प्रयोग करके आगे बढ़ते हैं। किन्तु हर समय एक जैसा नहीं रहता। सारे रास्ते बन्द होजाने पर एक स्थायी समाधान खोजना ही पड़ता है। आज़ादी के बाद वाली

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथाः वाया बाइपास, पृ. 216
2. वही - पृ. 215

सरकार ने भी यही काम किया नतीजा भूंडलीकरण के नव पूँजीवादी मॉडल के लिए देश को स्वतंत्र कर दिया गया। यदि हमने अपनी ज़रूरतों के मुताबिक स्वयं के मॉडल विकसित नहीं किए तो इस देश को बचाना मुश्किल होगा। इस के लिए पश्चिम की ओर नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति की ओर देखने की ज़रूरत है। गाँधी जी पर दृष्टि डालने की ज़रूरत हैं। आज भारत नवसाम्राज्यवाद अर्थात् नवउपनिवेशवाद की गिरफ्त में है।

कमलेश्वर के उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में वर्तमान नव पूँजीवादी सभ्यता पर प्रकाश डाला गया है। "हमारी नागरिकता अब अंतर्राष्ट्रीय हो गई है.. ये देश अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक से भीख माँगते हैं... तुम लोगों ने अपनी मुनाफा केन्द्रित स्पर्धा के चलते करुणा को एक बेकार मूल्य बना दिया है...करुणा में ही मानवीय न्याय का महामंत्र मौजूद है। जो सभ्यताएँ करुणा रहित हो गई, वे समाप्त हो गईं...।"[1] देश की वर्तमान स्थिति पर वार करते हुए उपन्यासकार ने अपनी संवेदना व्यक्त की है। देश में आज नव उपनिवेशवादी ताकतों ने अपना पैर जमा लिया है। जिससे भारत और यहाँ के लोगों में एक प्रकार का अंधाधुंध कायम हो गया है। संवेदनहीन होते जा रहे लोगों में स्नेह, प्रेम, करुणा जैसी भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। 'अपने तक सीमित' होनेवाली एक नवीन संस्कृति का जन्म हो गया है। जिसमें मानवीय मूल्यों को नहीं बल्कि धन को प्रधानता दी जा रही हैं।

देश को विदेशियों के समक्ष गिरवी रखकर उसके अस्तित्व को ही

1. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 283

मिटाने की प्रवृत्ति पर वर्तमान सरकार के खिलाफ घोर प्रतिशोध व्यक्त करते हुए 'डूब' उपन्यास का माते कहता है "बाँध बनायेंगे। अरे कर्जा तो पाट ले पहले। तुम्हें नींद कैसे आती है इतने कर्ज के रहते? तुम तो हम से भी गए-गुज़रे निकले! हम किसान तो ठहरे हज़ार-पाँच सौ के कर्जदार, वह भी अपने गाँव के बानिया के।... पर तुमने तो देश-का-देश कर्जे के बदले गिरवी रख छोड़ा है परदेशियों के पास। फिर भी फिक्रमंद नहीं।"[1] तत्कालीन नेहरू सरकार पर माते का घोर प्रतिरोध, आज भी उतना ही समीचीन है।

भूमंडलीकृत दुनिया में नव साम्राज्यवाद के तरीके भी नवीन है। ब्रिटिश राज में जनता का शोषण प्रत्यक्ष रूप से होता था। ये उपनिवेश के लोगों को अपना कूली बनाकर इन से काम करवाते थे। साम्राज्यवाद के समय में शारीरिक श्रम द्वारा लाभ कमाया जाता था, लेकिन नव साम्राज्यवाद बौद्धिक श्रम द्वारा अपना हित साधता है। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में एक अंग्रेज़ मालिक अपनी पत्नी से कहता है कि - "तुम जानती नहीं, एक हिन्दुस्तानी कुली मशीन की तरह होता है। जहाँ लगा दो, जब तक काम खत्म नहीं कर लेता हटता नहीं।"[2] उपन्यास की पृष्ठभूमि पुरानी होती हुई भी उसमें कही गई बातें वर्तमान सच्चाई पर भी प्रकाश डालती हैं। पहले भी भारतीयों का शोषण होता था, आज भी वह हो रहा है, अन्तर बस इतना है कि उसके तरीकें बदल गये हैं। आज शारीरिक श्रम से नहीं है तो बौद्धिक श्रम द्वारा हम नव उपनिवेशी ताकत अमेरिका के लिए काम कर रहे हैं।

---

1. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 182
2. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 46

मल्टीनेशनल कंपनियों में काम करता हर भारतीय उन विदेशियों के लिए कूली के समान ही है। आज भी भारत और भारत की जनता इस नये तरह के नवउपनिवेशी तंत्र का शिकार है। गाँधी जी ने बहुत पहले ही इस ओर हमारा ध्यान खींचा था कि पश्चिमी सभ्यता एक तरह का रोग है। उनकी बातों को अनसुना करके पाश्चात्य नीति के पीछे जाकर एक नवीन विकास का प्रतिमान तो हासिल किया गया। किन्तु अपनी बुनियादी ढाँचे को ही खोखला कर के यह नवीन पद्धति धीरे धीरे हमारे संपदा एवं संसाधनों पर अपना परोक्ष वर्चस्व स्थापित कर रहे हैं।

4.2 बाज़ारवाद की चुनौती

भारतीय समाज के सामने बाज़ारवाद एक गंभीर चुनौती के रूप में आ खड़ा हुआ है। बाज़ार की संस्कृति ने व्यक्ति को एक प्रकार की नयी भौतिकतवादी संस्कृति की ओर धकेल दिया है। इस बाज़ारवाद की व्यवस्था ने मनुष्य के मन में लालसा जगाकर एक प्रकार की नयी जीवन पद्धति विकसित की है जिसमें स्पर्धा भाव का चरम उत्कर्ष देखा जा सकता है। रवीन्द्र वर्मा के 'घास का पुल' उपन्यास का नन्दलाल अपने चारों ओर हो रहे बाज़ारीकरण की प्रवृत्ति को देखकर हैरान हो जाता है "अनजाने ही नन्दू के पैर खत्रयाने की सड़क पर मुड़ गये। उसने कुछ पुराने घरों को पहचाना जो दुकान बन गये थे: कोई कपड़े की दुकान, कोई बिजली की दुकान, कोई संगीत की दुकान। लेकिन घरों के लोग कहाँ गये?.... उसने अपने पुराने घर के सामने सड़क पर खड़े हुए सोचा। उसके घर का अब कोई नामोनिशान

नहीं था। घर की जगह छोटी-छोटी दुकानों का घेरा था जैसे घर बाज़ार हो गया हो।"[1] यह वर्तमान समाज की त्रासदी है। भूमंडलीकरण के आने से जीवन के प्रत्येक कोने का वस्तुकरण हो रहा है। बाज़ार में हर चीज़ की कीमत तय होती है। भारतीय समाज का हुलिया बदल रहा है या फिर यूँ कह सकते हैं कि बाज़ार ने आकर उसका चेहरा बदल दिया है।

'शेष कादम्बरी' उपन्यास की रूबी दी चिन्तित है वर्तमान समाज के लिए। समाज में हो रहे नित नये परिवर्तन, जीवन शैली तथा जीवन को सुख-सुविधा प्रदान करने हेतु आ रही नयी तकनीकों पर उनका विश्वास नहीं है। रूबी दी कहती है कि -"तर्करहित विश्वास पर आधारित प्रणालियों पर, जो इन दिनों धड़ल्ले से चारों तरफ फैली जा रही हैं - रेकी, प्राणिक हीलिंग और न जाने क्या-क्या। कई बार उन्हें लगता है कि विज्ञान जितनी नई ईजादें कर रहा है, आदमी उतना ही कमज़ोर, कायर और अन्धविश्वासी होता जा रहा है। कई बार लगता है कि यह सब लगों को मूर्ख बनाकर पैसा बनाने का बाज़ार का एक और तरीका ही है।"[2] इस बाज़ारवादी अपसंस्कृति का लक्ष्य पूंजी कमाना ही है। असल में बाज़ारवाद का आधार ही पूँजी है। इस सभ्यता ने मानव को अपने भ्रम में फँसाकर एक बाज़ारु माया प्रपंच रच दिया है। यह बाज़ार उन तमाम चीज़ों को, वस्तुओं का व्यापार कर अपना वर्चस्व स्थापित करके सबको उपभोक्ता बना रहा है। एक ऐसा उपभोक्ता जो बाज़ार का ही अंग बनता जाएगा।

---

1. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 31
2. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 84

'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में मोहनदास (गाँधी जी) कहते हैं कि "अंग्रेज़ व्यापार के लिए आये। जहाँ जाते हैं, व्यापार के लिए जाते हैं। उनके बने रहने में हम मदद करते हैं। वे सारी दुनिया को अपना बाज़ार बनाना चाहते हैं।"[1] बाज़ार अपने को व्यापार के द्वारा चलायमान रखता है। व्यापार करना, पूंजी इकट्ठा करना ही इसका मूल उद्देश्य है। यह पाश्चात्य नीति है। इनके इस उद्देश्य की पूर्ति के बीच में मानवता, मानवीय संवेदना, प्रेम जैसे तत्वों के लिए कोई स्थान नहीं है। इसी घातक सभ्यता के बारे में गाँधी जी ने कहा था कि धीरज धर कर बैठे रहने से सभ्यता की चपेट में आए हुए लोग खुद की जलायी हुई आग में जल मरेंगे। इसमें मानव को नहीं बल्कि पूँजी को देखा जाता है। वर्तमान परिवेश इससे कुछ भिन्न नहीं है। गाँधी जी सदियों पहले ही इस सच्चाई से रुबरू हो गये थे।

'निर्वासन' उपन्यास में सूर्यकान्त के चाचा इसी बाज़ारवादी संस्कृति के शिकार हैं। उन्होंने अपने जीवन में आधुनिकता को अपनाया था। किन्तु एक मोड़ पर आकर उनको इस सच्चाई का सामना करना पड़ता है कि इसमें कुछ नहीं रखा है। वे फिर से अपनी पुरातन संस्कृति की ओर लौट आते हैं। उपन्यास में सूर्यकान्त के चाचा स्वयं गाँधी जी का प्रतिरूप है। वे कहते हैं - "मैं एक भटका हुआ इन्सान था जो बाद में सुधर, संभल गया। पहले मैं बेवकूफ यह सोचता था कि साइंस के साथ-साथ चलूँ। नयी से नयी टेक्नोलॉजी वाली चीज़ों को मैं बड़े चाव से खरीद कर खुश होता कि मैं मार्डन ख्यालात का हूँ।"[2] जब सच्चाई से सामना होता है तो इनसान अपने

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 748
2. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 220

अहं को तोड़कर एक मामूली इनसान में तब्दील हो जाता है। अपने परिवार की सुख-सुविधा को महत्व देकर उन्होंने अपने को ही नहीं परिवार के लिए भी इस बाज़ारु चकाचौंध की दुनिया का रास्ता खोल दिया था। आधुनिक सभ्यता ने उनको अंधा कर दिया था- "फ़ैशन, मनोरंजन, खानपान, जीवनशैली सभी में मैं अपने परिवार के साथ नये ज़माने की राह पर टपटटपटप बढ़ते जाने का ख्वाहिशमंद था। मेरा दिल चाहता था कि तुम्हारी चाची, मेरे बच्चे दकियानूसी असभ्य और कुएं के मेंढक की तरह टर्र टर्र करनेवाले न हों। लेकिन एक दिन मैंने पाया कि अरे, मैं इनको जो नहीं बनाना चाहता था वही बना रहा हूँ।"[1] आज चाचा इस सच्चाई से अवगत हो गये है कि नवीन सभ्यता के ढोग करनेवाली इस दुनिया में कुछ भी नहीं रखा है। उनको एहसास हो जाता है कि वे गलत थे - "मुझे लगा मैं छला गया हूँ। मैं स्पष्ट नहीं हो पा रहा था कि किसने मेरे साथ छल किया? इस बाज़ार ने, मेरे परिवार ने अथवा मैंने खुद अपने को छला।"[2] उपभोक्तावाद सही अर्थों में उपभोक्ता को ही तवज्जो देता है। उसके सामने इनसान के लिए कोई स्थान नहीं, इसलिए इनसानियत भी अब एक दिखावा बन गयी है। व्यक्ति के जीवन में बाज़ार की दखलंदाज़ी बढ़ रही है जिसके परिणामस्वरूप वह अपना अस्तित्व और स्वत्व खो रहा है।

4.3 उपभोगवादी संस्कृति

भारतीय समाज के सभी आदर्श उपभोगवादी संस्कृति के बढ़ते सैलाब से एक-एक कर भरभराकर ढह रहे हैं। चहुँ ओर उपभोगी मानसिकता

1. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 220
2. वही - पृ. 221

पैर पसार रही है और इस मानसिकता का दोहन करने के लिए वर्तमान समाज में एक होड़ सी लगी हुई है। भूमंडलीकरण की प्रवृत्ति ने प्रत्येक वस्तु को उपभोग के दायरे में खडा कर दिया है।

'आवां' उपन्यास का कलेवर स्त्री की संघर्ष गाथा है। किस प्रकार सभ्य आधुनिक नगरीय संस्कृति में स्त्री केवल उपभोग की वस्तु बन कर रह जाती है, का मार्मिक चित्रण हुआ है। उपन्यास की नायिका 'नमिता' को अपने घर की जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए कई प्रकार की समस्याओं से गुज़रना पडता है। उपन्यास में एक स्त्री की इच्छाओं, आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए किस प्रकार उसको उपभोग का शिकार बनना पड़ता है, का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में खरीदारी व्यवस्था के तीव्र रूप का चित्रण किया गया है जहाँ स्त्री को भी वस्तु समझकर खरीदा जा रहा है। माँ, मातृत्व जैसे पवित्र शब्दों को भी मूल्य के आधार पर निर्धारित किया जा रहा है। पैसों से समाज की कोई भी वस्तु खरीदी जा सकती है- का एक सशक्त उदाहरण है संजय कनोई। वह अपने स्वार्थ लाभ के लिए स्त्री के अस्तित्व को नगण्य समझता है। नमिता को खरीदकर उससे अपने वंश को आगे बढ़ाना उसका लक्ष्य बन जाता है। इस प्रकार स्त्री केवल उपभोग की वस्तु मात्र रह जाती है। उसका काम है बच्चा देना जिसके पश्चात उसका कोई महत्व नही रहेगा। उपन्यास का पात्र पवार कहता है "सोचो, हमारे घर-समाज में स्त्री की जैसी प्रतिष्ठा रही, विश्व के किसी घर-समाज में है? बल्कि क्या तुम्हें लगता है कि अपनी आज़ादी की अगुवाई पीटते हुए वह किसी

सीमा तक भोग्या की परिभाषा से मुक्त हो पाई है? जाहिर है, जब तलक जवानी की उड़ान हैं, उफान है, वह उपभोग की वस्तु है।"[1] समाज में एक प्रकार की बिकाऊ संस्कृति का उदय हो गया है। कुछ भी खरीदा या बेचा जा सकता है यहाँ तक की स्त्री की छवि, उसका मातृत्व भी। भोग्या की तरह देखा जाना वर्तमान स्त्री की नियति है। समाज के बदलते परिवेश, व्यापारी संस्कृति की बढ़ते वर्चस्व ने स्त्री को भी वस्तु में परिवर्तित कर दिया है।

उपभोगवादी व्यवस्था में सब कुछ उपभोग की वस्तु बन गया है। सुख-सुविधापूर्ण जीवन के लिए, अपने को खुश रखने की मानसिकता वाली इस नवीन संस्कृति में आज भी कुछ लोग ऐसे हैं जो इस संस्कृति के मोह जाल में फँसे नहीं हैं। 'निन्यानवे' उपन्यास में रवीन्द्र वर्मा ने उपभोगी मानसिकता को व्यक्त किया है। उपन्यास का पात्र रामदयाल शुरु से लेकर अन्त तक उपभोगवाद का, उपभोगी संस्कृति के प्रतिरोध का प्रयास करता है। वह अपने परिवार को भी इससे दूर रखने का प्रयास करता है। वह अपने पुत्र हरिदयाल के रुपये से अपना उपचार करना नहीं चाहता, उसकी गाड़ी में बैठना नहीं चाहता क्योंकि यह सब उपभोक्ता सभ्यता से उभरा है। वह इसका अंग नहीं बनना चाहता। जब बल्लो राजकुमार श्रीवास्तव के संपर्क में आकर इस नयी सभ्यता का अनुकरण करके स्लीपिंग सूट की माँग करता है तो रामदयाल कहता है - "गाँधी ने देश की आज़ादी के लिए सूट फेंककर लंगोटी लगाई। तुम अब आज़ाद देश के अफ्सर बनने के लिए सूट पहिनकर सो ओगे।"[2] गाँधी जी ने अपना वेशभूषा त्यागकर अंग्रेज़ी सभ्यता का विरोध

1. चित्रा मुद्गल - आवां, पृ. 258
2. रवीन्द्र वर्मा - निन्यानवे - पृ. 63-64

किया था। आज उनके देश में बाज़ार की उपभोगी सभ्यता ने मनुष्य को बाज़ार के अनुरूप गढा है। वह भोग-लिप्सा में पड़कर नैतिक मूल्य खो चुका है। बाज़ार के तंत्र ने उसको, उसकी तर्क बुद्धि को जकड़ लिया है। अब वह तर्क से नहीं बल्कि आधुनिक सभ्यता से आयातित चश्मे से जीवन की सार्थकता को खोज रहा है।

4.4 बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व

अर्थ सत्ता पर कब्जा ही वैश्वीकरण का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति का एकमात्र साधन 'बाज़ार' है। उपभोक्ताओं को अपनी ओर खींचना, अपने उत्पाद को विश्व भर में प्रयोग हेतु लाना ही भूमंडलीकरण का उद्देश्य है। यह आर्थिक रूप से दुनिया भर के राष्ट्रों का एकीकरण की प्रक्रिया है जिसमें व्यापार, विदेशी निवेश, पूँजी प्रवाह और प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के साथ समेकित किया जाता है। इस नयी विश्व व्यवस्था में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का समस्त अर्थव्यवस्थाओं पर नियंत्रण रहता है। विश्व भर में इन्हीं कंपनियों का वर्चस्व बढ रहा है। 'कलिकथाः वाया बाइपास' उपन्यास में देश की वर्तमान स्थिति की ओर इशारा करते हुए किशोर बाबू पंडित जी को बताते हैं कि - "ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत को जितना लूटा था, उससे हज़ारों गुना लूट अब विदेशी कंपनियाँ हमारे देश में कर रही है। डॉलर की तुलना में रुपए का दाम इतना गिरा दिया है कि यहाँ से एक करोड़ का माल विदेश जाता है, तो उसकी कीमत मिलती है एक चौथाई यानी सिर्फ पच्चीस लाख। कहते हैं कि हम

आर्थिक रूप से फिर गुलाम हो गए हैं।"[1] बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी पूँजी के आधार पर स्वयं की सत्ता स्थापित करके अपनी अनुकूल संस्कृति फैला रही हैं। देश में इनको पूरी छूट मिली हुई है। यही नवसाम्राज्यवादी गुलामी है जहाँ हमें आर्थिक रूप से गुलाम बनाकर ये कंपनियाँ अपना वर्चस्व स्थापित कर रही हैं। पुरा देश, बडे नेता, नौकरशाह सभी इस परिदृश्य से अवगत होकर भी सत्ता का सुख भोग रही है। इस गुलामी को खुशी खुशी अपनाया जा रहा है।

'पूंजी' शब्द अपने में बहुत शक्तिशाली है। इसकी प्राप्ति के लिए देश की सरकार ने इन कंपनियों को अपने कारोबार चलाने का पूरा हक दे दिया है। इतिहास फिर खुद को दोहरा रहा है। सत्ता के लिए आपस में संघर्ष कर रहे नेता लोग इस सत्य से वाकिफ होते हुए भी इन कंपनियों को अपनी मंजूरी दे दी है। इन कंपनियों का वर्चस्व इतना बढ़ गया है कि महानगरों में ही नहीं बल्कि गाँवों के किसान वर्ग भी इनसे डरने लगे हैं। 'अकाल में उत्सव' उपन्यास का राकेश पांडे इस नवीन संस्कृति के पक्षधर हैं। वे कहते हैं - "मल्टीनेशनल यदि खेती करेंगी तो उसमें बुरा क्या है... किसान तो हर दम रो ही रहा है.... खेती में नुकसान हो रहा है। .....अच्छा पैसा मिल रहा है न ? तो बेचो अपनी खेती को और फ़ारिग़ हो लो सारे दुखों से, सारी परेशानियों से।"[2] यही विडंबना है। यहाँ उल्लेखनीय है कि किस प्रकार व्यक्ति की सोच बदल जाती है। राकेश पांडे जैसे व्यक्ति केलिए पूँजी ही सब

---

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 163
2. पंकज सुबीर - अकाल में उत्सव, पृ. 175

कुछ है। वह उन सरकारी नौकरशाही वर्ग का प्रतिनिधि है जिसका केवल पूँजी से मतलब है। इनके इस तरह की नीति के खिलाफ उपन्यास का ही एक दूसरा पात्र रमेश चौरसिया आक्रामक होते हुए कहते हैं - "किसान और मल्टीनेशनल? इन दोनों को आप एक ही तरह से मत देखिए। किसान जब तक खेती कर रहा है, तब तक हमको खाने के लिए मिल भी रहा है अनाज, एक बार मल्टीनेशनल कंपनियों ने खेती शुरु कर दी न, तो फिर देखियेगा क्या होते हैं अनाज के भाव? मल्टीनेशनल कंपनियाँ सारे काम अपनी शर्तो पर करती हैं। उनके लिए न तो खाद की कमी होनेवाली है, न बीज की और न बिजली की। सब तो यह लोग ही बना रहे हैं।.... आप उस दिन की भयावहता नहीं समझ पा रहे हैं, जब किसान नाम की प्रजाति हमारे देश के खत्म हो जाएगी और खेती का सारा काम मल्टीनेशनल करेंगी। हमने बहुत भयानक खेल की शुरुआत कर दी है सर।... हर बार जैसे ही फ़सल की बम्पर आवक शुरु होती है, वैसे ही सरकारी मंडी में, हम्मालों की, तुलावटियों की हड़ताल क्यों हो जाती है? इसलिए, ताकि वहाँ जो शहर के बाहर मल्टीनेशनल कंपनी ने अपनी खुद की अनाज मंडी और मॉल खोला हुआ है... सारा किसान वहाँ डायवर्ट हो जाए अपनी उपज लेकर। मल्टीनेशनल के इशारे पर यहाँ सरकारी मंडी में हड़ताल हो जाती है।"[1] कहने के लिए यह एक छोटी सी घटना है। लेकिन यह छोटी सी घटना एक संकेत है उस आनेवाली खतरनाक स्थिति का जो सब के लिए भारी पड़ेगा।

---

1. पंकज सुबीर - अकाल में उत्सव, पृ. 175-176

मुक्त बाज़ार के पक्षधर देश की सरकार भी आए दिन कार्पोरेट संस्कृति को बढ़ावा दे रही है। विकासशील देशों को बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी शिकार बना रही हैं। 'फाँस' उपन्यास में मन्त्री के आने पर मेंडालेखा गाँव के निवासी अपना आक्रोश व्यक्त करके कहते हैं - "पानी बेचा, नदी बेचा, पहाड़ बेचा, ज़मीन बेची, खनिज बेचा, पूरा देश बेच दिया तुमने कापोरेट बनियों को। तुम्हारी जगह जेल में है।"[1] सब कुछ विदेशी कंपनियों को बेचकर मुनाफा बटोरना ही नेता लोगों का एकमात्र लक्ष्य रह गया है। बड़े-बड़े कॉर्पोरेट लोगों से मिलकर रिश्वत खाकर देश को ही नीलाम कर रहे हैं। विकास के नाम पर इस धरती को सर्वनाश के कगार पर छोडकर सुखवादी, भोगवादी तथा एक प्रकार की लिप्सावादी संस्कृति का विकास कर रहे हैं जिसमें मानवतावाद को त्यागकर मुनाफावाद को दर्जा दिये जाने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। 'फाँस' उपन्यास में उपन्यासकार संजीव अपने पात्र के माध्यम से कहते हैं- "उदारीकरण के चलते सरकार का रवैया ही कारपोरेट वाला हो चुका है- बिल्कुल ठुस्स यान्त्रिक। कारपोरेट कल्चर या बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जाहिर तौर पर किसी बड़ी पूँजी की प्रसूत होती हैं, बड़ी पूँजी बाज़ार में लाभ कमाने के उद्देश्य से आती हैं। उसकी सामाजिक जिम्मेदारी सिर्फ इतनी होती है कि ग्राहक या उपभोक्ता जिन्दा रहे। इन्हें और इनके प्रतिनिधि नेताओं को ज़मीन की गुणवत्ता, सिंचाई की प्रकृति और पैदावार से कोई मतलब नहीं।"[2] इनका मतलब है सिर्फ पूंजी से।

---

1. संजीव - फाँस, पृ. 252
2. संजीव - फाँस, पृ. 111

इन विदेशी कंपनियों ने भारत जैसे तीसरी दुनिया के देश को अपने चंगुल में पूरी तरह फंसा दिया है। लोगों में भी विदेशी वस्तुओं के लिए ललक है। वे इनके इतने आदि हो गये हैं कि इनको छोड़ा जाना संभव नहीं है। 'कलि कथाः वाया बाइपास' में किशोर बाबू इस विदेशी प्रभुता का घोर विरोध करते हैं। गाँधी जी द्वारा अपनाये गये रास्ते में चलकर स्वदेशी चीज़ों का इस्तेमाल करने लगते हैं। उपन्यास में कहा है - "वे विदेशी कंपनियों में बनी हुई या उनकी साझेदारी में बनाई गई चीज़ों का इस्तेमाल नहीं करेंगे।... उनके लिए किसी भारतीय कंपनी का साबुन और मंजन जुगाड़ कर दिया जाता है, हालांकि ऐसी कंपनियाँ मुश्किल से एकाध ही हैं। बल्कि सच पूछा जाए तो मंजन की कंपनी तो एक ही है।"[1] इस प्रकार किशोर बाबू उपनिवेशी दौर में गाँधी जी द्वारा अपनाए गए रास्ते को नवउपनिवेशी दौर में अपना रहे हैं। इस विकल्प को अपनाते हुए नयी पीढ़ी को परतंत्रता से मुक्ति पाने का रास्ता दिखा देता है। पूँजी कमाकर, मुनाफा बटोरकर विश्व का शक्तिशाली राष्ट्र बनना सबसे श्रेयस्कर कार्य नहीं है अपितु इस सोच से ऊपर उठकर मानवता के रास्ते पर चलना ही सही प्रगति है, अधिक श्रेयस्कर है।

4.5 मूल्य ह्रास से मुनाफे तक

देखते देखते समाज का परिदृश्य बदल रहा है। जीवन मूल्यों से बढ़कर मुद्रा रूपी मूल्य को महत्व दिये जाने लगे हैं। समाज में जीवन मूल्यों का बिखराव हो रहा है। जीवन मूल्यों के स्थान पर अपने को आर्थिक रूप

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथाः वाया बाइपास, पृ. 211

से समृद्ध बनाने की नयी चाल इस बाज़ारवादी संस्कृति की देन है। अमीर और अधिक अमीर बनता जा रहा है तो गरीबों में उससे भी गरीब होने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। मुनाफा बटोरती बहु राष्ट्रीय कंपनियाँ देश की पूरी अर्थनीति को खोखला कर रही है। आज पैसे की भूख से विवश मनुष्य अपनी इस बाज़ारु संस्कृति को बनाए रखने की होड़ में है। 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में रूबी दी कहती है - "वह पहले अपने को ज़माने के साथ पाती थी, पर अब तरह तरह की नई चमचमाती गाडियों के बीच अपने को बहुत अकेला और पिछड़ा हुआ पाती हैं। देखते-देखते कितने लोगों के पास कितना पैसा बढ़ गया । पहले मारवाड़ियों में कहावत चलती थी कि फलाना पहले महायुद्ध का अमीर है कि फलाना दूसरे महायुद्ध का अमीर है। पर आज़ादी के बाद तो न जाने कितने नौदौलतिए बनते चले गए और सदी के अन्तिम दस सालों में तो अब समझना नामुमकिन है कि किसके पास कितना पैसा कहाँ से आ रहा है।"[1] ये पैसे, दौलत और कुछ नहीं बल्कि अपने देश को, उसकी संस्कृति को बाहरी शक्तियों को बेचने से प्राप्त कमीशन है। ये नये अमीर वर्ग बाज़ारीकरण से ही बने हैं।

वर्तमान समाज में बेचने और खरीदने की लत पडती जा रही है। आज एकल व्यक्तिवाद का समय है। समाज से भिन्न होकर वैयक्तिक सोच, व्यक्तिगत सुख सुविधा पर ज़्यादा बल दिया जा रहा है। मनुष्य मूलतः एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 25

को डालकर ही वह इस स्थिति तक पहुँचा है। इसलिए समाज से भिन्न होकर उसका कोई अस्तित्व नहीं है। किन्तु आज इसी व्यक्तिवाद का समय है। वह वन्य पशुओं की जैसी नीति को अपना रहा है। गाँधी जी ने मनुष्य को, समाज को मानवीयता का पाठ पढाया था। किन्तु आज जिस सभ्यता को उन्होंने नाशवान कहा था नयी पीढ़ी उसी के पीछे दुम हिलाता भाग रहा है। सब कुछ का आधार खरीद-फरोख्त बन गया है। व्यापार, मुनाफा यह सब कुछ पाश्चात्यों की देन है। 'आवाँ' उपन्यास में 'पर्णकुटी रेस्तरां' का ज़िक्र किया गया है। इस रेस्तरां को बिल्कुल पुरातन भारतीय शैली में मिट्टी के दीवारों और छप्परों के साथ ठेठ देहाती घर के रूप में सजाया गया है। जिससे लोगों को आकृष्ठ किया जा सकें और पैसे कमाया जा सकें। संजय कनोई द्वारा नमिता से कहें गए वाक्य देखिए - "तुम गाड़ियाँ देखकर हैरान हो रही हो न! खंडाला, कोल्हापुर जाने वाले पर्यटक और यात्रियों के लिए मुंबई से निकलते ही या मुंबई में दाखिल होने से पूर्व इससे बढ़िया कोई अन्य रेस्तरां नहीं, जहां उसे घर जैसा विश्राम और खाने-पीने की सुविधा उपलब्ध हो। महंगा होने के बावजूद। मैं तो समझता हूँ कि चाय के पैसे ये दुगने भी कर दें तो उन्हें वसूल समझो। नैसर्गिक सौन्दर्य की भी कोई कीमत होती है। आत्मीय व्यवहार की भी। सड़क पर से गुजरने वाला व्यक्ति पहाड़ी के इस अनछुए कोने का सौन्दर्य यहाँ आए बिना, बैठे बिना नहीं अनुभव कर सकता। वंचित निकल जाएगा वह। मालूम पड़ते ही पछताएगा।"[1] अपनी खुशी के लिए पैसा खर्च करना-आज का यथार्थ है। वैसे तो यह कहा जाता

1. चित्रा मुद्‌गल - आवां, पृ. 275

है कि पैसों से हर चीज़ खरीदी नहीं जा सकती। किन्तु इसमें यह बात छुपी हुई है कि जो चीज़ पैसों से नहीं खरीदी जाती उनको भी पैसा कहीं न कही प्रभावित करता ही है। वर्तमान समय में आत्मीय व्यवहार को पैसों से खरीदा जा रहा है। यही नहीं उपन्यास में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार भारतीय समाज ने पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण कर अपने आप को उसमें डाल दिया है जहाँ दिखावटी जीवन ही सब कुछ है। इस दुनिया की नयी रीत यह है कि पैसा है तो आप पूर्ण रूप से सक्षम है। यहाँ अपनी संस्कृति को भी पैसे की लालच में बेचा जा रहा है।

नैतिक मूल्यों को नष्ट कर संपूर्ण रूप से भ्रष्ट समाज ने वैश्वीकरण को इस प्रकार अपना लिया है कि समाज में मानवता को छोड बाकि सब कुछ मिल जाएगा। मानव और मानव के बीच की दूरियाँ बढ़ गयी हैं। भूमंडलीकृत दुनिया में सब कुछ वस्तु (Commodity) बन गया है। व्यापार के सामने मानवीय संवेदनाओं के लिए कोई जगह नहीं है। इस बदलती दुनिया के बारे में 'नाकोहस' उपन्यास का पात्र रघु का कहना है कि - "हमारे देखते-देखते चीजें पूरी तरह बदल गई... वह देश अब नहीं रहा, वह वक्त अब नहीं रहा, जिसकी हमें आदत पड़ गई थी....।"[1] आगे कहता है - "वो कहते हैं न, दुनिया छोटी होती जा रही है, ग्लोबल विलेज... वगैरह... सुकेन ने कहा, वाकई छोटी होती जा रही है... सँकरी होती जा रही है, भीतर से सिकुड़ती जा रही है।"[2] सही अर्थों में देश दुनिया का रुख खतरनाक होता

1. पुरुषोत्तम अग्रवाल - नाकोहस, पृ. 21
2. वही - पृ. 21

जा रहा है। इस खतरनाक स्थिति से, इस ग्लोबल तरीकों से उपन्यास के रघु, सुकेत जैसे विवेकशील पात्र भी चिन्तित हैं। इस विषम स्थिति से बचने का रास्ता तलाशना होगा। बल्कि यह तलाश गाँधीजी के अमूर्त सिद्धान्तों में जाकर खत्म होता है जिसमें मानव कल्याण निहित है।मनुष्य का नैतिक विकास जिसमें संभव है उसी पद्धति को ही अपानाना अनिवार्य है।

4.6 मॉल संस्कृति

भारत में मॉल संस्कृति बढ़ रही है जिसके कारण जीवन शैली में बदलाव हो रहा है। मॉल के आने से हाटों, साप्ताहिक बाज़ारों का चलन ही जैसे खत्म होता जा रहा है। इन बाज़ारों की तुलना में पॉश एवं परिष्कृत शॉपिंग माल ज़्यादा सभ्य है। मतलब सभ्य समाज के लिए बाज़ार से ज़्यादा यही मॉल अधिक लुभावना लगता है। मॉल में घूमना, विंडो शॉपिंग आदि सभ्य समाज की आदत बन चुकी है। 'घास का पुल' उपन्यास में इस उपभोक्तावादी संस्कृति की ओर इशारा किया है - "अब हज़रतगंज के पीछे भी एक मॉल बन गया है जहाँ लोग चीज़ें खरीदने घुसते हैं और खा पीकर सिनेमा देखते हैं। मॉल के बाज़ार में भिखारी नहीं घुसते।"[1] एक ऐसा समाज उत्पन्न हो चुका है। जिस के लिए मॉल के माध्यम से खरीदारी करना उसके जीवन का अटूट हिस्सा बन गया है।

देश के हर हिस्से में मॉल का बनना, उस विकट स्थिति की ओर इशारा है जहां अमीर से लेकर सामान्य मध्यवर्ग भी अपने जीवन को

1. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 185

सुविधापूर्ण रखना चाहता है। लोगों की माँग बढ़ती जा रही है। इसके अनुसार कई प्रकार के सुविधा युक्त मॉल बनते जा रहे हैं - "केसरबाग और लाल बाग अब सब बाज़ार हो गये हैं जहाँ सिर्फ खरीद-फ़रोख्त बची है। हजरतगंज का तो पूछना ही क्या! यह तो बाज़ारों का बाज़ार है। यहाँ अवध की शाम अब अपनी ही चमक से आँखें मिचमिचाने लगी है। पिछले कुछ बरसों में एक और कमाल हुआ: पूरा हजरतगंज जैसे सिर के बल खड़ा हो, ऐसे नए मॉल बने! शहर में चार मॉल हैं। और भी बनेंगे।"[1] 'मॉल' प्रतीक है भारतीय संस्कृति पर अमेरिकी प्रभाव का। गाँधी जी ने एक बार कहा था कि हिन्दुस्तान जब अंग्रेज़ों का अनुकरण करेगा तब वह हिन्दुस्तान नहीं बल्कि सच्चा इंग्लिस्तान कहा जाएगा। आज भारत की राह सही अर्थों में अनुकरण पर आधारित है। यह गाँधी जी द्वारा देखे गये सपनों का स्वराज्य नहीं है। मॉल संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है जहाँ चारों ओर चमचमाती हुई रोशनी होती है। मॉल की दुनिया में कभी रात नहीं होती, वह हमेशा जगमगाती रहती है। यह जगमगाहट वास्तव में बाज़ार की चाल है जिसको समाज द्वारा अनदेखा किया जा रहा है।

4.7 ब्रांड संस्कृति का उदय

बाज़ार में ब्रांड संस्कृति का उदय हो चुका है। विदेशी कंपनियों ने अपने उत्पादों को ब्रांड नाम देकर एक नई संस्कृति को जन्म दिया है। इसका सीधा संबन्ध जीवन शैली में आए बदलाव से है। नयी पीढ़ी फैशन के पीछे

---

1. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 69

है। 'कलि-कथाः वाया बाइपास' के किशोर बाबू की पत्नी के वाक्य इस प्रकार है - "बच्चे लोग कोई देशी चीज़ इस्तेमाल करना ही नहीं चाहते। गनीमत है कि अब कलकत्ते में थियेटर रोड़ पर लाकौस्टे, एरो, पियरे कार्डिन-सबकी शर्टों की दूकानें खुल गई हैं, वरना पहले बच्चों को पहनने लायक कपड़े खोजने की इतनी सहूलियत कहां थी? यें किशोर बाबू की पत्नी को तो समझ में नहीं आता कि इन शर्टों में ऐसा क्या रखा है कि इनके इतने रुपए दिए जाएं, पर बच्चे बिना नामी 'ब्रांड' के कोई चीज़ खरीदते नहीं।"[1] बाज़ार के ब्रांड रूपी तंत्र को अपनाकर मानव को ही ब्रान्ड में बदल दिया है। ब्रांड उसके लिए जीवन का आधार बन चुका है। आज कपड़े केवल शरीर ढकने के लिए ही नहीं पहनता बल्कि अब यह हमारे स्टेट्स का सिंबल बन चुका है।

'आवां' उपन्यास की नमिता भी इस नये सभ्य समाज का अंग बन जाती है। जब नमिता का 'बाबा ज्वेलर्स' में नौकरी लगती है तो वह अपने आपको नयी लाइफस्टाइल में डालना चाहती है। आधुनिक समाज के हिसाब से अपने आप को डालने के लिए अपनी माँ की पसंद न होने के बावजूद वह यह तय करती है कि - "अगले महीने तनख्वाह के कुछ पैसे बचाकर वह अपने लिए जींस और टॉप ज़रूर खरीदेगी।"[2] वह यह मानती है कि "अच्छे दफ्तर में चुस्त-दुरुस्त पोशाकें पहने बिना काम नहीं चलने का।"[3] यह आज की दुनिया की सच्चाई है। फैशन ने सामान्य जीवन जी रहे व्यक्ति को भी इस बाज़ारु दुनिया की तरफ खींच लिया है। 'कलि कथाः वाया

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 211
2. चित्रा मुद्गल - आवां, पृ. 189
3. वही - पृ. 189

बाइपास' उपन्यास में किशोर की पत्नी उनसे कहती है कि "आप तो सारा अखबार पढ़ते हैं। देखते नहीं कितने लोग कैसे-कैसे किसलिए आत्महत्या कर रहे हैं - कोई लड़की इसलिए जहर खा लेती है क्योंकि उसका बाप उसे माधुरी दीक्षितवाली घाघरा-चोली नहीं ला देता।"[1] उपभोग संस्कृति ने व्यक्ति को बाज़ार का मोहरा बनाकर रख दिया है। हर व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए बाज़ार में भागते हुए नज़र आता है। ब्रान्ड संस्कृति उसकी उन इच्छाओं की पूर्ति में से एक घटक ही है। दुनिया के बदलते परिवेश ने छोटे से कस्बे को भी अपने घेरे में ले लिया है। आज कल छोटे छोटे प्रदेशों में भी ब्रांडेड कंपनियों ने अपने आऊटलेट खोल दिए हैं। इसी आकर्षण फंडे का इस्तेमाल कर जन साधारण को अपनी इच्छा पूर्ति के लिए विवश करा रहा है। आपसी स्पर्धा ने 'तू बड़ा या मैं बड़ा' की संस्कृति को पैदा कर दिया है। जिसमें 'स्टेटस', 'लाइफस्टाइल' आदि का व्यक्ति के जीवन में बहुत बड़ी हिस्सेदारी रहती है।

4.8 विज्ञापन की मायावी दुनिया

बाज़ारवाद ने अपनी मायावी दुनिया को पल्लवित एवं प्रसारित करने के लिए विज्ञापन को चुना है। लोगों में खरीददारी के सपने जगाने में इन विज्ञापनों का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। लोगों में आवश्यकता की ललक बढ़ाने का काम इन्हीं विज्ञापनों का है। अन्तर्राष्ट्रीय कंपनियाँ अपने अपने उपनिवेशों में स्वयं के उत्पादों का दबदबा बनाए रखने के लिए

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 199

विज्ञापनों के माध्यम से उपभोक्ताओं के मन में कमोडिटी को जीवन की अपरिहार्य वस्तु के रूप में चित्रित करके उसकी मांग बढ़ाती हैं। इस पूरे तंत्र का साथ देनेवाली एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में टी.वी. का योगदान बहुत अधिक है। इसी ओर 'कलि कथाः वाया बाइपास' में किशोर बाबू इशारा करते हैं कि - "आज नहीं रह सकता। पहले इतनी चीज़ें कहां थीं? टी.वी. कहाँ था जो इतनी चीज़ों का पता चलता?"[1] ज़माना बदल गया है, टी.वी. आज सबके घर का एक पारिवारिक सदस्य का स्थान ले चुका है। विज्ञापनों की आड में खरीदारी करने के लिए मज़बूर किया जाना ही इनका लक्ष्य है।

प्रचार-प्रसार माध्यम उपभोक्ताओं के मन में एक ऐसे मायावी संसार की रचना कर देते हैं जिसमें उनको उत्पाद के माध्यम से मोहित कर दिया जाता है। इस मोहमाया में पड़कर मनुष्य सच्चाई से कोसों दूर चला जाता है। विज्ञापन की दुनिया व्यवसाय की दुनिया है जिसमें पूँजी कमाना ही एकमात्र लक्ष्य रह जाता है। बाकि सब कुछ दिखावटी हो जाता है। गाँधी जी ने कहा था कि "मेरा आग्रह है कि विज्ञापनों में सत्य का यथेष्ट ध्यान रखा जाना चाहिए। हमारे लोगों की एक आदत यह है कि वे पुस्तक या अखबार में छपे हुए शब्दों को शास्त्र-वचनों की तरह सत्य मान लेता है। इसलिए विज्ञापनों की सामग्री तैयार करने में अत्यंत सावधानी बरतने की ज़रूरत है। झूठी बातें बहुत खतरनाक होती हैं।"[2] बिकाऊ दुनिया में इन बातों पर कभी ध्यान नहीं दिया गया । आज ठीक इसका उलटा चित्रण हो रहा है। अलका

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 199
2. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 299

सरावगी इस सच्चाई का उद्‌घाटन अपने उपन्यास 'कलि कथाः वाया बाइपास' में करती है - "आलम यह है कि सारे अखबार इस आसन्न उत्सव पर इतिहास और वर्तमान को सही परिप्रेक्ष्य में देख सकने की अपनी काबिलियत को एक दूसरे से बढ़-चढ़कर साबित करने में या ज़्यादा से ज़्यादा चटपटा बनाकर पेश करने की होड़ में एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे हैं। टी.वी के सब चैनलों पर आज़ादीवाले कार्यक्रमों के बिकाऊपन को पहले से भांप कर उसकी तैयारी करनेवालों की चांदी कट रही है। राष्ट्रीय ध्वज, चक्र तथा 'वंदेमातरम' ने अखबारों और दूरदर्शन के विज्ञापनों में बिककर स्वतंत्रता को करोड़ों रुपये का कारोबार बना दिया है। जूतों, मोजों, टी-शर्टों से लेकर गाड़ी बनानेवाली कंपनी तक ने आज़ादी की पचासवीं वर्षगांठ के झंडे के तीन उड़ते रंगों के बीच 'पचास' लिखे हुए नमूने को हर जगह छाप दिया है। यहाँ तक की सारी मल्टीनेशनल कंपनियाँ भारत की आज़ादी की वर्षगांठ को इस तरह मनाने पर तुली हूई हैं मानो यह उनकी आज़ादी का ही जश्न हो।"[1] विज्ञापन और टी.वी के द्वारा हमारे जीवन, जीवनशैली तथा मूल्यों में काफी परिवर्तन आए हैं। आज बाज़ार, बिक्री, मुनाफा आदि शब्दों को स्थान मिला हुआ है। सच्चाई कहीं खो चुकी है। सब कुछ हमने उन पाश्चात्य नव साम्राज्यवादी शक्तियों को बेच दिया है। वही अपना माल बेचता है वही मुनाफा बटोरता है। हम केवल खरीददार बनकर रह गये हैं, वह भी ऐसे खरीददार जिनको ये ताकतें नकली वस्तुओं का मोह देकर दिन दहाडे लूटते जा रहे हैं।

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 138

बाज़ारवाद के नए तंत्र का नाम है विज्ञापन। इनके द्वारा लोगों के मन के अन्दर तक जाने का रास्ता प्राप्त होता है। 'घास का पुल' उपन्यास में खन्ना जी कहते हैं कि "जब से क्रिकेट के मैंचों में कंपनी के विज्ञापन दिये गये है, कंपनी की सेल बढ़ी है। कंपनी का ब्रांड एम्बेसेडर तेंदुलकर था जो कंपनी के उत्पादों की ओर संकेत करता हुआ एक ही नारा देता था: यह कल था, आज है, कल भी रहेगा - मेरी तरह!"[1] दुनिया में अपना स्थान बनाए रखने हेतु कंपनियों के बीच स्पर्धा है। इनकी इस दौड़ में मध्यवर्ग शिकार बन जाता है। क्योंकि इस मोहक दुनिया की बातों में वही फँसता है। हर मनुष्य अपने बेहतर जीवन की इच्छा करता है। इसी का फायदा उठाकर विज्ञापन उसको अपने चंगुल में फँसाकर उससे अपने उत्पाद की खरीद करवाते हैं।

4.9 मीडिया का झूठा चेहरा

वर्तमान दौर में प्रिन्ट और इलक्ट्रॉनिक मीडिया के क्षेत्र में सच्चाई के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। पैसों के ऊपर चलने वाले मीडिया को केवल सनसनी चाहिए। वर्तमान समाज में मीडिया का काफी ज़्यादा प्रभाव है। इनका ज़ोर समाज के हर क्षेत्र में चलता है। मीडिया को अपने वश में करने से काम बन जाता है नहीं तो मीडिया काम को बिगाड देता है। 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में रामप्रसाद एक किसान है। दो एकड़ का छोटा किसान। ओले पडने के कारण खेती में उसका नुकसान हो जाता है। रामप्रसाद के नाम पर किसी ने फर्ज़ी किसान क्रेडिट कार्ड बनवा लिया था।

---

1. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 60

कलेक्टर के पास तक जाकर गिडगिडाने पर भी रामप्रसाद का काम नहीं हो पाता है। सी. एम साहब के क्षेत्र का किसान होने के बावजूद उसको किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं होती है। आखिरकार वह आत्महत्या कर लेता है। मीडिया पर बार बार 'मुख्यमंत्री के क्षेत्र में किसान ने की आत्महत्या' की खबर आने से परेशान सी.एम साहब कलेक्टर को डाँट कर समस्या का हल करने के लिए कहते हैं ताकि उनकी छवि खराब न हो। अधिकारी वर्ग मिलकर रामप्रसाद के परिवार वालों को यह कहने के लिए मज़बूर कर देते हैं कि रामप्रसाद की दिमागी हालत ठीक न होने के कारण तनाव में आकर उसने आत्महत्या कर ली थी। मीडिया का धर्म सच्चाई की खोज न होकर केवल सनसनी पैदा करना है। "जैसे ही मीडिया के लोग पहुँचे वैसे ही राहुल ने उनको बढ़कर रिसीव कर लिया । बता दिया कि रात भर से परेशान है परिवार। अभी अंतिम संस्कार के बाद बड़ी मुश्किल से कुछ खाने-पीने को तैयार हुए हैं यह लोग। मीडिया के लोग अपने-अपने कैमरे फिट करने लगे और कुछ लाँग शॉट, कुछ गाँव के विज़ुअलस लेने लगे। कुछ लोग सरंपच की बाइट, राकेश पांडे की बाइट, डी एस पी की बाइट लेने लगे। एक दो मीडिया वाले रामप्रसाद के खेत की ओर चले गए कुँए के शॉट लेने। मामला कुछ ठंडा हो गया था मीडिया के हिसाब से। असल में मीडिया को सनसनी चाहिए होती है हर खबर में। कुछ ऐसा जो गरम हो। जो ब्रेकिंग हो।"[1] सच्चाई से दूर होकर बस सनसनी पैदा करना इनका धर्म हो गया है। टी.आर.पी रेटिंग को बढाना, चैनल को सबसे आगे पहुँचाने की दौड़ में ये लोग मानवता से बहुत दूर हो चुके हैं।

---

1. पंकज सुबीर - अकाल में उत्सव, पृ. 222

आज की दुनिया में कुछ भी, किसी को भी पैसों से खरीदा जा सकता है। किसी व्यक्ति को ऊँचे स्थान में पहुँचाने के लिए मीडिया एवं अखबारों का स्थान बहुत अधिक है। 'आवां' उपन्यास में संजय कनोई द्वारा अपनी पत्नी निर्मला के बारे में इस प्रकार कहा गया है कि "परफेक्ट रिलेशंस... पी आर. एजेंसी को उसने आत्मप्रचार के लिए लाखों रुपये दिए हैं। इधर तुमने अखबारों के रविवारीय परिशिष्टों को अगर ध्यान से देखा होगा तो यह ज़रूर देखा होगा कि हर अखबार में निर्मला कनोई जैसी अप्रतिम महिला उद्यमी के विषय में विस्तृत लेख, साक्षात्कार आदि प्रकाशित हो रहे। जिनमें लगातार यह साबित किया जा रहा है कि उनकी जैसी बहुमुखी प्रतिभा की धनी, मिसाल महिला हस्ती इस देश में कोई अन्य नहीं। उनकी कारोबारी दक्षता ही श्लाघनीय नहीं, सामाजिक कार्यों में गहरी अभिरुचि भी वंदनीय है।"[1] इस प्रकार झूठी बातों के आधार पर किसी व्यक्ति को भी मीडिया वाले, अखबार वाले उस स्थान तक पहुँचा सकते हैं जिसकी कल्पना करना ही असंभव है। सब कुछ खरीदे-बेचे जा रहे इस दुनिया में व्यक्ति के पास केवल पैसा होना चाहिए, बाकि सब कुछ अपने आप ही खरीदा जा सकता है।

4.10 पश्चिमी नीति

भारतीय संस्कृति अनोखी है। विश्व भर में भारत अपनी इसी संस्कृति के लिए जाना जाता है। किन्तु इस समय भारत में विश्वव्यापी पूँजीवादी व्यवस्था अर्थात् वैश्वीकरण का वर्चस्व है। यह फिर दूसरे शब्दों में कहा जाए

1. चित्रा मुद्गल - आवां, पृ. 282

तो इस विश्वव्यापी बाज़ारवाद के बीच भारतीयता संकट में है। भूमंडलीकरण से अभिप्राय था समूचे विश्व का एक वैश्विक ग्राम में तब्दील होना। किन्तु आज यह कुछ और बनकर खडा हो गया है। आज भूमंडलीकरण एक बहुस्तरीय प्रक्रिया न होकर प्रभुत्वशाली केन्द्र का घटक बन गया है। इसका डोर कुछ खास लोगों के पास है। भारत नहीं बल्कि इण्डिया में इसका प्रभाव प्रचुर मात्रा में देखा जा सकता हैं। भारत जो कि कई दर्जन गरीबों, किसानों, आदिवासियों से गिरा पड़ा है आज भी गाँवों में बसा हुआ है। जब कि इंडिया अपने मध्यवर्ग तथा अमीरों से भरकर महानगरों एवं बड़े बड़े शहरों में बसा हुआ है। यही वह वर्ग है जो पश्चिमीकरण का शिकार हुआ है। अपने आपको सभ्य बनाने की दौड में इन्होंने अपनी संस्कृति, अपनी आत्मा को खो दिया है। भारत और इंडिया के बीच की दूरियाँ बहुत बढ गयी हैं। ऐसे में भारत इंडिया के लिए लज्जित एवं दुःखी है। भारत का पिछडने और इंडिया के चमकने के पीछे यही नयी पश्चिमी विकास नीति है जिसने हमारे देश को दो तरफा बना दिया है। गाँधी जी ने एक बार कहा था कि - "जब भारत स्वावलंबी और स्वाश्रयी बन जायेगा और इस तरह न तो खुद किसी की संपत्ति का लोभ करेगा और न अपनी संपत्ति का शोषण होने देगा, तब वह पश्चिम या पूर्व के किसी भी देश के लिए उसकी शक्ति कितनी भी प्रबल क्यों न हो- लालच का विषय नहीं रह जायेगा और तब वह खर्चीले शास्त्रास्त्रों का बोझ उठाये बिना ही अपने को सुरक्षित अनुभव करेगा। उसकी यह भीतरी स्वाश्रयी अर्थव्यवस्था बाहरी आक्रमण के खिलाफ सुदृढ़तम ढाल

होगी।"[1] समय आ गया है कि गाँधी द्वारा उद्धृत इन महत्वपूर्ण वचनों पर ध्यान देने का। आज हम दो प्रकार के असमंजस से उलझे हुए हैं। 'निन्यानवे' उपन्यास का हरि स्वाधीनता एवं राष्ट्रीय संस्कृति के प्रतीक रूपी झाँसी के किले को बेचने का हकदार समझता है। उसका यह दावा इसलिए है कि उसके दादा इस किले के लिए लड़े थे और उसके पिता इसी किले के चक्कर में जेल के सलाखों के पीछे चले गए थे। इस प्रकार वह हकदार बन जाता है। बाप-दादा द्वारा दिलायी गयी स्वाधीनता को हरि द्वारा बेचा जाना, वर्तमान स्थिति को उजागर करता है। हरि द्वारा जब यह स्वाधीनता देशी पूँजीपतियों के हाथों नहीं बेच पाया तो अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में बेचने के लिए तैयार हो जाता है। हरि बल्लो से इस प्रकार कहता है कि - "नहीं, दादा अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में सौदा पट जाएगा। पश्चिम के कुछ तोप दौलतिए इस व्यवसाय में माहिर है उनके पास अकूत पैसा है और अनहोनी बुद्धि। वे नेपोलियन की कमीज़ और हिटलर की पैंट लाखों में खरीदकर करोडों में बेच सकते हैं। वे सौदे को पकाना जानते हैं जैसे किला स्काच विस्की की बोतल हो।"[2] बल्लो जैसे पुराने वर्ग इस प्रकार के है जो अपनी संस्कृति, अपने मूल्यों तथा अपने देश को इस पश्चिमीकरण से बचाना चाहते हैं तो हरि जैसे दूसरे वर्ग ने पैसे के चक्कर में आकर अपनी संस्कृति को ही बिक्री की वस्तु बना दिया है। इन दोनों के बीच अर्थात् भारत और इण्डिया के बीच अब सामंजस्य स्थापित करने हेतु देश को स्वावलंबी बनना पड़ेगा, तभी यह संभव हो सकेगा। इसी को साकार होते देखने का सपना गाँधी जी के मन में भी था।

---

1. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, पृ. 317
2. रवीन्द्र वर्मा - निन्यानवे. पृ. 149

भारत जैसा कृषि प्रधान देश भी आज भूमंडलीकरण की खामियाँ भुगत रहा है। किसान वर्ग इनसे परेशान है। जो तरीका भारत के लिए सही है, वह पाश्चात्य नीति में नहीं है। इसकी पहचान जितनी जल्दी हो उतना देश के लिए सही रहेगा। इसी उपन्यास में आगे वे कहते हैं कि - "भारत जैसे कृषि प्रधान देश में गाँव, किसान और किसानी की अवस्था लगातार एक उपनिवेश के अन्तर्गत रहने वाली जनता की हो गयी तो आखिर क्यों?"[1] इस संकटग्रस्त स्थिति से बचने का रास्ता बहुत पहले ही गाँधी जी ने दिया था। किसी ने भी उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। आज स्थिति विकराल है। वक्त रहते इसको सुधारने में ही हमारा विजय है।

एक वर्ग ऐसा है जिनका मन अपनी धरती पर दूसरों का वर्चस्व होने पर व्याकुल हो उठता है। तो दूसरी तरफ ऐसे वर्ग है जिन के लिए भारत पिछडा हुआ देश है, जिसमें तरक्की की गुजाइश नहीं है। 'निर्वासन' उपन्यास का दृष्टांत देखिए चाचा जी पांडे जी के लिए सूर्यकान्त द्वारा लिखा हुआ पत्र पढ़कर सुनाते हैं। उसमें पांडे जी अपना कुटुम्ब ढूँढ़ने के लिए गोसाइंगज आए हुए हैं। किन्तु स्थिति ऐसी होगयी कि अमेरिकावासी पांडे जी से रिश्ता जोड़ने के लिए सभी तैयार है। इसका कारण सूर्यकान्त बताता है कि - "इन्हें आप में कोई दिलचस्पी नहीं है - इनके लिए आकर्षण है आपका अमेरिकावासी होना। गाँव के ये लोग नहीं यदि रायशुमारी की जाये तो हिन्दुस्तान के अधिसंख्यक लोग या यूं कहूँ कि नगण्य लोगों को छोड़कर सभी आज अमेरिका से रिश्ता जोड़ना चाहेंगे।"[2] उनके अनुसार भारत पिछड़ा हुआ है,

---

1. संजीव - फाँस, पृ. 111
2. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 304

सभ्य नहीं है। हमारे देश में यह विचार एक संक्रामक बिमारी की तरह फैल रही है। पश्चिमी मोह का एक ठोस कारण यह भी है कि वहाँ अधिक पैसे कमाया जा सकता है। सूर्यकान्त का भाई भी अमेरिका का सपना देखता है। वह कहता है - "भइया आप पांडे जी से कहो, वापसी में मुझे भी अमेरिका ले चलें।

'यहीं रहो शिबु अपना देश सबसे बढ़िया।' उसने टालने के लिए कहा।

ये देश नहीं नरक है। भ्रष्टाचार यहाँ की राष्ट्रीय पहचान है, खुद मुझको पाँच लाख देने के बाद ये नौकरी मिली। जबकि मुझसे कई गुना ज़्यादा अमेरिका में धोबी, नाई, प्लम्बर कमाते हैं।"[1] मध्यवर्ग की सोच को उद्घाटित करने वाले उपरोक्त प्रसंग से यह ज्ञात हो चलता है कि देश के मध्य वर्ग अमेरिका तथा डॉलर के पीछे कितने उतावले होते जा रहे हैं। ये लोग इस बात पर विचार क्यों नहीं करते कि भारत को आगे बढने, अपनी शक्ति दिखाने पर इन्हीं लोगों ने अंकुश लगा रखा है।

दो वर्ग या फिर दो पीढियाँ कुछ भी कह लो आज भारत में इन दोनों के बीच संघर्ष चल रहा है। सूर्यकान्त का चाचा (निर्वासन), किशोर बाबू (कलि कथाः वाया बाइपास), बल्लो (निन्यानवे), आदिवासी लोग (फाँस), नगारा (अन्तिम सत्याग्रही) आदि ऐसे वर्ग हैं जो इस भयानक परिवर्तन से पूरी तरह अवगत है जो इसके खिलाफ है। निर्वासन उपन्यास के चाचा जी सही अर्थों में गाँधी जी का प्रतिरूप है। वे कहते हैं - "पुराने की तरफ

---

1. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 309

लौटना, पुराने से लगाव, मेरा एक तरह से इस आधुनिक सभ्यता का नकार है। मुझे इसका पूरा अंदाज़ा है कि नकार की कार्रवाई पर आधारित मेरा मौजूदा सादगी भरा जीवन कोई यथार्थ नहीं है। मैं निश्चय ही एक आभासी दुनिया बना कर उसमें रह रहा हूँ और सुखी हूँ या दुखी हूँ। खुश हूँ या उदास हूँ। परंतु वास्तविकता से कौन इनकार करेगा कि मौजूदा सभ्यता तो अपने आप में एक आभासी संसार है जिसमें बाशिन्दों के साथ एक कपटलीला हो रही है। वे समझते हैं कि पा रहे हैं लेकिन दरअसल वे खो रहे हैं। .... 'आगे बढ़ो', 'अमीर बनो' वैश्विक नारे हैं तो मैं पीछे चलो और मामूली बनो के रास्ते पर हूँ।"[1] इस द्वन्द्वात्मक समाज में व्यक्ति-व्यक्ति परेशान है तथा वे मजबूर हैं। इस पाश्चात्य नीति का रास्ता सर्वनाश का है। अब इस सर्वनाश नीति के बदले नव निर्माण के रास्ते को चुना जाना होगा। मॉल संस्कृति, फैशन, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, बाज़ार आदि ने मिलकर इण्डिया को तो चमका दिया है किन्तु भारत आज भी पिछड़े हुए गावों में, उन किसानों, आदिवासियों के बीच मुक्ति का रास्ता खोज रहा है।

4.11 विकास की भयानक त्रासदी

वर्तमान परिस्थिति को देखा जाए तो विकास एक तत्कालीन मुद्दा है। विकास एक बहुआयामी परिवर्तन का नाम है। इसका उद्देश्य संपूर्ण मानव समाज के लिए उच्च गुणवत्ताप्रद जीवन की प्राप्ति है। विकास एक सतत प्रक्रिया का नाम है जिसमें सामाजिक विकास एवं पर्यावरणीय संरक्षण

---

1. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 312-313

अन्योन्याश्रित है। आज के सन्दर्भ में ये सब सैद्धान्तिक बातें हो गयी हैं। स्वाधीनता आन्दोलन के समय सामाजिक न्याय के आधार पर देश के निर्माण पर बल दिया गया था। किन्तु स्वतंत्र देश ने गाँधी जी के मूल्यों की उपेक्षा कर पाश्चात्य तरीके को अपनाया। जिसके चलते देश फिर से परतंत्र बनता गया। भूमंडलीकृत समय तक पहुँचते विकास की गति तीव्र बनती गयी और उसमें नैतिक मान्यताओं का स्खलन होता गया। गाँधी जी ने मनुष्य को सामने रखकर ही अपने विचारों को रूपायित किया था। विकास का वास्तविक अर्थ भी मनुष्य की उन्नति है। किन्तु आज इसका ठीक उल्टा हो रहा है- "कैसा फरेब है ये? कितना बड़ा झूठ है ये? कैसी खुशहाली है ये? कैसा बाँध है ये? नरबलि लेगा ये? पशुबलि लेगा? धरती माता की बलि लेगा? धोखा है ये! जो हमें लीलेगा वह औरों को भी लीलेगा। वह फिर किसी को खुशहाल नहीं करेगा।"[1] विदेशी पूँजी से बाँध के बनने से गरीब गाँववालों को उजाड़ दिया जाता है। देश का विकास सरकार के हाथ में है। जब वही हाथ देश के विकास से उठकर कुछ नव पूँजीवादी कंपनियों, विदेशी संस्थाओं के समर्थन के लिए चला जाता है तो देश और उसकी जनता मिट्टी में समा जायेंगे।

भूमंडलीकरण से ज़्यादा फायदा मध्यवर्ग का हुआ है। अमीर और गरीब के बीच की बढ़ती खाई ने आज देश में एक बहिष्कृत भारत को जन्म दिया है। इसी बहिष्कृत भारत में समाज के पिछडे लोग भरे पड़े हैं। वर्तमान विकास नीति ने इन्हीं बहिष्कृत भारत पर अपना निशाना लगाया है। नव

1. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 108

उपनिवेशवाद की दिशा में आगे बढ़ रही विकास नीति के शिकार आदिवासी, दलित तथा अन्य पिछडे समूह बनते जा रहे हैं। 'डूब' उपन्यास में आदिवासी समाज को विकास के नाम पर उजाडने की कोशिश को व्यक्त किया गया है। 'डूब' का पात्र माते कहता है कि "उस विकास से क्या फायदा जो मनुष्यों को उखाड़ दे, बेघरवार कर दे, उन्हें गलत जगह रोप दे, उनका सहजात इच्छाओं को रौंद दे।"[1] उपन्यासकार ने 'माते' नामक पात्र के माध्यम से उस विकास का विरोध किया है जो विनाश का रास्ता खोल देता है। माते असल में गाँधी जी का ही प्रतिरूप है।

विकास वास्तव में मानव तथा मानवेतर प्राणियों को दृष्टि में रखकर किया जाना चाहिए। किन्तु जितने विकास के नारे बुलन्द होते जा रहे हैं उतना ही देश को उजाड दिया जा रहा है। 'निर्वासन' उपन्यास में चाचा जी का कहना है कि - "विकास विकास विकास....। आजकल विकास अपने आप में साध्य हो गया है। मैं कहता हूँ कि साध्य है मनुष्य की बेहतरी और विकास इसका उपाय है लेकिन इन दिनों पहिया उल्टा घूम रहा है। मनुष्य की बेहतरी जाये चूल्हे भाड़ में किंतु विकास ज़रूर हो। इनसान का भीतर चाहे जितना बरबाद हो पर बाहर खूब चमक हो। ये विकास दरअसल लूट खसोट है। इसे फिक्र नहीं कि भविष्य में दुनिया कितनी तबाह होगी, धरती विनाश के कगार पर खड़ी होगी। रोशनी, अन्न, पानी, हवा सबके लाले पड़ जायेंगे। तब इस विकास को लेकर आदमी चाटेगा?"[2] भविष्य की परवाह किए बिना

---

1. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 59
2. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 26

इन विकासशील प्रणालियों को रोकना ज़रूरी हो गया है। इसका यह मतलब नहीं है कि विकास को ही रोक दे। विकास अत्यन्त ज़रूरी है। विकास ऐसा करो जिससे मानव समाज की उन्नति हो अवनति नहीं।

'अंतिम सत्याग्रही' उपन्यास का पात्र नगारा गाँधी जी का प्रतीक है, प्रतिरूप है। वह इस देश में होनेवाले परिवर्तन से संतुष्ट नहीं बल्कि चिन्तित है। "नगारा को पहली बार लगा कि वह जगह रहने के लिए उपयुक्त नहीं है। पास से गंदा नाला बदबू देता बह रहा था। चारों ओर गंदगी फैली हुई थी। महानगरपालिका की गाड़ी शहर-भर का कचरा वहीं आकर डालती थी। जैसे ही यह जगह कचरा डालते रहने से ऊँची व समतल हो जाएगी वैसे ही उनकी इस बस्ती पर क़हर टूटने लगेंगे। सरकार इस स्थान को लाखों में नीलाम कर देगी। कोई बिल्डिंग मास्टर इसे खरीद लेगा। फिर उनकी बस्ती को यहाँ से हटाने की कार्यवाही शुरू होगी। राज़ी या बिना राज़ी उन लोगों को हटना पडेगा। पैसा बँटेगा। बस्ती के गुंडों की टोली चढ़ आएगी। बुलडोज़र चला दिया जाएगा। गरीबों को अहसास करा दिया जाएगा कि वे कितने बेबस, कमज़ोर, उपेक्षित और असहाय है।"[1] यही भूमंडलीकृत भारत का भयावह चित्र है। गरीब निस्सहाय होकर खडे हैं तथा पूंजी अपना ताडंव नृत्य कर रहा है। गरीब लोगों से सब कुछ छीनकर देश का विकास करना कहाँ की नीति है। "विकास की जिस विचारधारा का प्रचार अमीर, मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी और पूंजीपति वर्ग के व्यक्ति तथा निगम कर रहे हैं उसका लक्ष्य है गरीबों से

1. राजेन्द्र मोहन भटनागर - अंतिम सत्याग्रही, पृ. 53

सब कुछ छीनना, उनको गुलाम बनाना और उनके मानस का उपनिवेशीकरण करना है।"[1] गाँधी जी ने विकास को ज़मीनी स्तर से जोड़ा था। उनका ग्राम स्वराज का सपना इसी का आधार है। आज नदी उल्टी बह रही है। विकास के नाम पर शहरों को सुख सुविधा पहुचाने हेतु गरीबों का गला घोटा जा रहा है।

विकास का एकमात्र उद्देश्य मानव कल्याण की परिभाषा को बदलकर अमीरों को समृद्ध बनाना हो गया है। गरीबों को भीषण स्थिति का सामना करना पड रहा है। इस पश्चिम केन्द्रित व्यवस्था को बदलकर भारतीय प्रणाली के अपनाने के पश्चात ही भारत का असली विकास संभव हो पाएगा। विकास से उत्पन्न समस्याओं का सशक्त चित्रण रवीन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यास 'घास का पुल' में किया है। रमेश बताता है कि "पिछले चार साल में बुन्देलखंड के सात जिलों में लगभग दो सौ लोग आत्महत्या कर चुके हैं। आत्महत्या की कहानी काफी कुछ एक जैसी थी। पहले साल फसली ऋण। फसल का सूख जाना। ऋण न चुका पाना। फिर साहूकार से सवाया गेहूँ..... कहानी का निश्चित अन्तः आत्महत्या। डेढ सदी बाद ऐसा अकाल फिर पड़ा था। एक फर्क ज़रूर था। अंग्रेज़ों की प्रतिशोधी नीति के चलते पचीसा (1868-69) अकाल में भी किसान ने आत्महत्या नहीं की थी। किसान की बलि लेते मौजूदा अकाल के पीछे आज़ाद देश का सठियाता विकास था जो भूमंडलीकरण के कुएँ में डूब गया था।"[2] इस भीषण विकास ने व्यवस्था को

---

1. मैनेजर पांडेय - भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा, पृ. 193
2. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 29

ही तोड़ मरोडकर रख दिया है। इससे ग्रामीण जनता एवं उनके जीवन का जो कायापलट हो रहा है उससे देश के बडे हिस्से का सामना भीषण स्थिति से हो रहा है। 'फाँस' उपन्यास में मौजूदा स्थिति पर प्रकाश डाला गया है- "नागपुर और वर्धा के बीच मिहान प्रोजेक्ट बना रहा है - भविष्य का सुपर मेगासिटी। न्यूयार्क सिटी से बड़ा! प्रत्येक किसान परिवार को दो-दो नौकरियाँ देने का आश्वासन दे कर ले ली ज़मीन। न नौकरी दी, न ज़मीन, न पैसा। आशा-निराशा के बीच कुत्ता बने दौड़ रहे हैं किसान पीछे-पीछे । क्या पता, दिन बदल ही जाएँ! फिर धीरे-धीरे आशा को ढकते निराशा के बादल!"[1] विकास अमीर का नहीं बल्कि गरीबों का गला घोंटने पर आतुर है। इस तरह के विकास से क्या फायदा जिसमें आदमी की व्यथा को महसूस करने की शक्ति नहीं हो। आखिरकार यह विकास मनुष्य की उन्नति के लिए नहीं बल्कि अवनति का कारण बन रहा है।

4.12 सरकारी कल्याणकारी योजनाओं की विफलता

भूमंडलीकरण और वैश्विक अर्थ व्यवस्था के साथ देश की अर्थ नीति के समेकन की आड़ में चल रही सरकारी नीतियाँ कहाँ तक सफल हुई है, का जवाब देश की वर्तमान स्थिति की ओर दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है। सरकार का होना एक बेहतर राज व्यवस्था के लिए अनिवार्य है। सरकार का उत्तरदायित्व होता है कि वह अपनी जनता के सर्वांगीण विकास हेतु कार्य करें। विकास ऐसा हो जिससे संपूर्ण समाज की उन्नति संभव हो। आज देश

1. संजीव - फाँस, पृ. 159

का अपना सरकार तो है साथ ही साथ यह सरकार देश की समृद्धि हेतु प्रत्येक क्षेत्र के लिए नित नई योजनाओं का भी आविष्कार कर रही हैं। जिसके लिए लाखों करोडों में पद्धतियों का एलान किया जाता है। इसके बावजूद क्या इनका लाभ ज़मीनी स्तर तक पहुंच रहा है? क्या इस प्रकार की योजनाएँ कामयाब हो रही है? ये प्रश्न केवल प्रश्न ही रह जाते हैं। क्योंकि विदेशी नीति को अपनाते हुए देश के कुछ वर्ग के हाथ में पूँजी आ गई है किन्तु इस पूँजी का लाभ केवल उन नव पूँजीपतियों को ही प्राप्त हुआ है जिनके लिए ये सारी योजनाएँ बनाई गईं हैं। आज इनके होने से देश का होना संभव हो पाया है, ऐसा दिख पड़ रहा है। ये इस नवीन व्यवस्था के साझेदार है। देश के विकास के नारे लगाने वाले नेतागण वास्तव में देश का विकास नहीं बल्कि देश को कौड़ियों के भाव बेच रहे हैं। अमेरीकी मॉडल व्यवस्था को अपनाने का मतलब है संपूर्ण विश्व के संसाधनों का उपयोग अपने हित में करके दूसरों को खाई में धकेलने वाली नीति को गले लगाना। भारत की सरकार ने अपने देश का भविष्य विदेशी कंपनियों के हाथों में थमा दिया है।

'फाँस' उपन्यास के माध्यम से सरकारी योजनाओं के बारे में कहा गया है जिसका प्रयोजन आम जनता के लिए नहीं बल्कि बड़े से बड़े कंपनियों के लिए है - "कोयला, स्टील का भाव सरकार उत्पादक से पूछकर तय करती है, कापूस से लेकर अन्य कृषक उत्पादों का भाव तय करते समय हमसे नहीं पूछा जाता। जावादिया जी ने कहा, मूल्य तय करते समय 50 प्रतिशत अतिरिक्त लागत मूल्य पर करे, उन्होंने किया 15 प्रतिशत

लागत मूल्य पर। उन्होंने कृषि मूल्य आयोग से कहा, पी.एम. से कहा, पीएम. ने माना भी मगर इम्पलीमेंट नहीं हुआ। ढपोरशंखी आश्वासन बिजली माफ! कर्ज माफ! ये माफ! वो माफ! कुछ भी माफ नहीं हुआ।"[1] फिर यह सब कुछ आखिर किसके लिए? सरकार की नीति दोगली है। वह किसानों के पक्ष में नहीं है क्योंकि इनका पक्ष लेने का मतलब है मुनाफे से हाथ धो बैठना। इस प्रकार सरकार योजनाओं का एलान तो करती है मगर उसका सही कार्यान्वयन करने में चूक जाती है या फिर जान बूझकर अपना हाथ उठा लेते हैं।

'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल जी ने सरकार तथा सरकारी विकास पर व्यंग्य किया है - "कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह ने पहले भी देखा था, विनय वाटिका का ज़िक्र आते ही मंत्री जी कवि बन जाते हैं, महाकाव्य सुनाने लगते हैं। उन्होंने टोका, यह विनय वाटिका का नाम... इसे विकास वाटिका होना चाहिए था। यही, मंत्रीजी बोले..... पर हमारे सान्याल भाई कहने लगे कि विकास शब्द से सरकारी धंधे की बू आती है। तब सरकारी ग्राम विकास का नाम चल निकला था, सामुदायिक विकास की योजना आ गयी थी, उसमें काम भी हो रहा था और वह बदनाम भी हो रही थी।"[2] अब विकास वगैरह सरकारी धंधा हो गया। पैसे की भूख ने नेताओं को दलाल बना दिया। विदेशी दासता का दलाल।

'फाँस' उपन्यास में सरकारी योजनाओं के शिथिल होने तथा किसानों की व्यथा का बयान किया गया है - "दिल्ली में ही बैठकर क्यों बना ली

1. संजीव - फाँस, पृ. 159
2. श्रीलाल शुक्ल - बिस्रामपुर का संत, पृ. 122

सरकारों ने हमारे गाँवों के कायाकल्प की योजना? क्यों जगाये सपने बी टी बीज की तरह बाँझ सपने? मर गये लोग। हमसे पूछते, हम बताते - बड़े नहीं, छोटे-छोटे सपने चाहिए हमारे गाँव को। हवाई नहीं, धरती के!"[1] विकास एक निरन्तर प्रक्रिया है। विकास को चलाने वालों के साथ साथ विकास भी चलता रहा, गाँव उजड़ते रहे, लोग दमन एवं शोषण का शिकार होते गए तब भी सरकार की नीति चलती रही। सरकार आती रही, एक के बाद एक नई योजनाएँ बनाई गई। जिसका नतीजा यह हुआ कि इनसे जिन लोगों को लाभ पहुँचना था वे तो अछूते रह गये। इस प्रकार की योजनाओं का क्या फायदा जो गरीब को और गरीब कर दें।

'डूब' उपन्यास में लोग सरकारी नीति के खिलाफ खडे होते दिखाई देते हैं। 'डूब' में सरकार उनके विकास के लिए बाँध बनवाने की बात कर रही थी। किन्तु आज वही सरकार उनको अपने बसेरे से, अपने ज़मीन से उनकी जड़ों को काट रही है। सरकार की इस अंधेर नीति पर आवाज़ उठाकर लेखक कहते हैं कि - "कैसा फरेब है ये? कितना बड़ा झूठ है ये? कैसी खुशहाली है ये? कैसा बाँध है ये? नरबलि लेगा ये? पशुबलि लेगा? धरती माता की बलि लेगा? धोखा है ये? जो हमें लीलेगा वह औरों को भी लीलेगा। वह फिर किसी को खुशहाल नहीं करेगा... हमसे बिना पूछे हमरी तबाही का फैसला ले लिया? ऐसा तो डाकू भी नहीं करते। वे धन ज़रूर लूटते हैं पर घर से बेघर नहीं करते। वे तो अमीरों को सताते हैं। हाँ, उन्हें सताते हैं जो दीनों को सताते हैं दिन-रात। और यह सरकार! यह गरीबों को

1. संजीव - फाँस, पृ. 72

सताएगी ! उन्हें सताएगी जिन्हें भाग्य, भगवान, धनवान सभी पहले ही सताने पर आमादा हैं।"[1] जिन्हें रक्षक बनना चाहिए वही भक्षक बन जाए तो कहाँ से विकास का सच्चा अर्थ प्राप्त होगा। विकास की अनिवार्यता है किन्तु उसका जो मॉडल देश में अपनाया जा रहा है उसमें परिवर्तन की ज़रूरत है। बराबरी का विकास हेतु भारत की आत्मा को पहचानने वाला, भारतीय तत्वों को समाहित करने वाला विकासात्मक मॉडल को अपनाया जाना है।

हमारे देश में अपनाई जा रही विकास योजनाओं की विसंगतियों का ही नतीजा है कि महानगरों का विकास किया जा रहा है तो दूसरी ओर गाँवों को विकास के नाम पर उजाड दिया जा रहा है- "बीच की अवधि में देश का विकास इस तरह हुआः वह संसार की दूसरी सबसे तेज़ उभरती अर्थव्यवस्था बन गया जिसके पास महान उपभोक्ता बाज़ार है लेकिन वरुणा एक्सप्रेस और उन छोटे छोटे स्टेशनों की सूरत में कोई तब्दीली नहीं हुई थी।"[2] विकास नीति में जब असमानता स्थान ले लेता है, विकास का पैमाना ही बदल जाता है। महानगरों जो पहले से ही समृद्ध है, को और अधिक सुविधाजनक बनाना तथा गाँव जो पहले से ही पिछडा हुआ है और अधिक हाशिये पर धकेलने वाली सरकारी विकास नीति को खत्म करने का समय बीत चुका है।

4.13 प्राकृतिक संसाधनों का दोहन

मानव और प्रकृति का एक अटूट रिश्ता है। मनुष्य के लिए प्रकृति माता है। मानव का संपूर्ण जीवन प्रकृति पर निर्भर करता है। प्रकृति वास्तव

1. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 108
2. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 336

में संपूर्ण विश्व का पोषण करती है। मनुष्य ने जन्म लेते ही अपने को प्रकृति की गोद में पाया और अपने पोषण के लिए उसने जल, वायु, जीव, वनस्पति और खनिज आदि प्राकृतिक संसाधनों में अपनी जीवनी शक्ति की खोज की और फिर भौतिक जीवन-निर्माण की प्रक्रिया को शुरु किया। मानव के अस्तित्व के लिए प्रकृति का होना बहुत ज़रूरी है। 'आवां' उपन्यास में नमिता प्रकृति की अथाह सौन्दर्य में मुग्ध हो जाती है। "सह्याद्री पर्वत-श्रृंखला की एक के भीतर एक जन्मती ऊचाईयों और हरी-भरी धुंध में डूबी सुरमई घाटियों की हौक-भरी अतल गहराइयों की सुषमा उसे जैसे किसी अलौकिक जगत में खींच ले गईं।"[1] प्रकृति के साथ निकटता मनुष्य को आत्मान्वेषी बना देता है। गाँधी जी भी हमेशा प्रकृति के निकट रहते थे। उनके लिए प्राकृतिक इलाज ही सब कुछ था। उन्होंने लिखा "जिसके पास मन और आत्मा है, ऐसे प्राणी के लिए सबसे सच्चा प्राकृतिक इलाज है।"[2] प्रकृति ने हमेशा मनुष्य को दिया है। आदिम काल से ही मानव का रहन सहन प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल रहा। विकास के लिए मानव के द्वारा प्रकृति का उपयोग किया गया। मानव ने जो प्रकृति से प्राप्त किया, उसको उसने पेड़, पौधे, गेहूँ, अन्न आदि उगाकर प्रकृति को पुष्टित किया। प्रकृति ने एक माँ की भाँति अपना कर्तव्य निभाया तो मानव ने पुत्र का भी कर्तव्य निभाया। किन्तु विकास इतना होता गया कि वह प्रकृति पर घोर प्रहार करने लगा। पर्यावरण की क्षमता और संपदा की एक सीमा होती है। सीमाएँ टूटने लगी, मानव ने प्रकृति को लूटना शुरु किया। मानव की लालसाएँ बढने लगीं

1. चित्रा मुद्गल - आवां, पृ. 280
2. महात्मा गाँधी - हरिजन 3 मार्च 1946 अंक 1

साथ ही उसमें स्वार्थ मोह उभरने लगा। विकास से मानव जीवन सुख सुविधा पूर्ण हो गया है लेकिन पर्यावरण में संतुलन बिगड़ रहा है। आज मानवीय क्रिया-कलापों, नगरीकरण, औद्योगिकरण, भूमंडलीकरण और रासायनिक प्रयोगों से जो असंतुलन प्रकृति में हो गया है, उसको वश में करना नामुमकिन सा हो गया है। सीमेंट एवं कॉंकरीट की दुनिया से हरापन नष्ट होता जा रहा है। उपयोगिता के नशे में मानव ने नैसर्गिकता को अपने हाथों से नष्ट कर दिया है। 'इदन्नमम' उपन्यास प्रकृति की इसी भीषण स्थिति का परिचय दे रहा है - "पहाड़, वन, नदियाँ, महुआ, बेर, करैंदी, चिरौंदी, हल्दी, अदरक-अरे तमाम संपदा है। पर दुरभाग्य है हमारा कि हम नहीं बरत पाते। दलालों के सुपुर्द हो जाती है हमारी संपत्ति। पहाड़ों की नीलामी, वनों की बोली तहस-नहस कर देती है मनोरम वातावरण को। पहाड़ टूट रहे हैं, वन कट रहे हैं। सुनसान, सपाट मैदानों में फड़फडाते डोल रहे हैं पंछी-परेवा।"[1] भूमंडलीकृत विश्व में पूंजी समाहन के लिए प्राकृतिक संसाधनों को भी बेचा जा रहा है। मानव अकलमंद नहीं बल्कि पैसे के जुनून ने उसको राक्षस बन दिया है। प्रकृति रूपी माँ का सर्वनाश करते हुए मानव इस बात पर ध्यान नहीं दे रहा है कि वह खुद अपने पैरों के नीचे ही कुल्हाडी मार रहा है।

प्रकृति अन्नदाता है। वह समस्त जीव जन्तुओं का पालन पोषण करती है। मानव शरीर भी प्राकृतिक तत्वों से ही बना हुआ है। उपभोग की संस्कृति ने भूमि को जड़ सा बना दिया है। औद्योगिकरण के फलस्वरूप प्राकृतिक संतुलन बिगड गया तथा पृथ्वी का समूल विनाश अब दूर नहीं है।

---

1. मैत्रेयी पुष्पा - इदन्नमम, पृ. 310

'कलि कथाः वाया बाइपास' में इसी ओर इशारा किया है - "अब तक लोग डरते आए थे कि तीसरा विश्वयुद्ध छिडा, तो पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाएगी, पर वैसा नहीं घटा। जो घटा, वह बिल्कुल अकल्पनीय था। एकदम जिसे अनहोनी कहते हैं। अचानक संसार में प्रकृति के पाचों तत्व-मिट्टी, जल, आग, आकाश और हवा-गड़बडा गए। और इसका प्रभाव सबसे पहले दुनिया के सबसे ताकतवर देश में दिखाई पड़ा। अब तक वैज्ञानिक यह कहते आए थे कि संसार का तापमान बढ़ रहा है और पृथ्वी के ऊपर जो एक खास हवा की छतरी है, उसमें छेद होने का डर है।"[1] प्रकृति के साथ मनुष्य द्वारा किया गया खिलवाड़ का नतीजा आज सबके सामने है। 'ग्लोबल वार्मिंग' इसी का नतीजा है। पृथ्वी का तापमान लगातार बढ रहा है। मानव द्वारा की गई अप्राकृतिक गतिविधियों ने प्रकृति का विनाश कर दिया है तथा उसको असंतुलित कर दिया है। पृथ्वी का तापमान ऐसे ही बढ़ता गया तो वह दिन दूर नहीं जब पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाएगी।

'निर्वासन' उपन्यास में प्रकृति पर होनेवाले मानवीय संहार के बारे में ज़िक्र यों किया गया है -"दरअसल देखो तो दुनिया की सुन्दरता इसी में है कि मौसम को, नदी को, जंगल को, दिन और रात को मिटाओं नहीं और बरबाद मत करो, बस उसमें इंसान के लिए थोड़ी गुंजायश और हिफाज़त का रास्ता निकाल लो। लेकिन हो क्या रहा है, लोग मौसम, नदी, जानवर, वृक्ष सभी को तबाह कर रहे हैं। इस दुस्साहस ने इतनी नाबरदाश्तगी और हिंसा पैदा कर दी है कि जो बेजुबान और कमज़ोर है उनका क़त्ल करने में लोगों

---

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 214

का दिल नहीं काँपता है।"[1] प्रकृति, प्राकृतिक संसाधन, पर्यावरण आदि के संरक्षण का मतलब है संपूर्ण मानव जाति का संरक्षण। इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि प्रकृति का संरक्षण किया जाए। इसी में हम सब का अस्तित्व है। इसके लिए सही कदम उठाना होगा। अतः दूसरे शब्दों में कहा जाए तो प्रकृति के प्राकृतिक तत्वों का सीमित उपयोग ही वह महत्वपूर्ण कदम होगा जिससे प्रकृति को नष्ट होने से बचाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में गाँधी जी द्वारा कहे गए वाक्य इस प्रकार है - "वनवासियों द्वारा अधिक लाभ के लिए हरे-भरे पहाडों को गंजा, श्रीहीन तथा उजड़ा हुआ देखकर उन्होंने कहा काश कि! इन पहाड़ों की सुन्दरता को फिर से लौटाया जा सकता तो यह स्थान ऐसा भयानक न लगता!"[2] किसी चीज़ को नष्ट कर देना बहुत ही आसान कार्य है किन्तु उसको पुनःवापस उसी तरह ले आना असंभव। प्रकृति को बचाये रखना मानव की आवश्यकता है जिसका मूल्य आँका नहीं जा सकता।

मनुष्य द्वारा प्रकृति का विनाश केवल पेड काटने, पहाड़ तोड़ने, पानी को नष्ट कर देने से ही नहीं है। प्रकृति के विनाश का एक और भीषण कार्य कीटनाशकों का प्रयोग है। इनका प्रयोग केवल मानव जाति के लिए ही नहीं संपूर्ण जीव जन्तु, हवा, पानी, मिट्टी के लिए भी घातक होता जा रहा है। "कीटनाशक या मनुष्य नाशक? यह सत्र बीज सत्र के साथ टकराता रहा। पंजाब की रिपोर्ट पेश हुई, फसलों में कीड़े न लगें अतः कीटनाशकों का

---

1. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 340
2. महात्मा गाँधी - विचार वीथिका, पृ. 92

छिड़काव ज़रूरी है। सबसे पहले प्रचलित केमिकल कीटनाशकों के साथ यह दिक्कत है कि वे मिट्टी, पानी, बीज में मिलकर हमारे संहारक सिद्ध हो रहे हैं। पंजाब और गुजरात के कितने ही किसान कैंसर और दूसरी बिमारियों से ग्रस्त हो चुके हैं। एक ट्रेन का नाम ही पड़ गया कैंसर एक्सप्रेस। मिट्टी, पानी, हवा यानी सबको हो गया है... ज़्यादा मुनाफा के चक्कर में।"[1] यह वास्तविकता है। वह सच्चाई जो दर्दनाक है, किसी के द्वारा बोए गये विकास के बीज से उत्पन्न खतरनाक वर्तमान सच्चाई। इसे बोया किसी और ने था तो भुगत कोई और रहा है। कोई और नहीं बल्कि निस्सहाय, निर्धन, गरीब किसान या फिर वे लोग जो रोजमर्रा की ज़िन्दगी जीने के लिए लड़ रहे हैं। लोग अब इन से त्रस्त, पीड़ित होकर यहाँ से निकलने का विकल्प खोज रहे हैं। यह रास्ता है पृथ्वी की ओर लौटने का, विदेशी प्रौद्योगिकी आधारित तकनीकों को छोड़कर शुद्ध देशी तरीकों को अपनाने की। "विजयेन्द्र ने सभी का परिचय देते हुए बताया-परिचय के साथ-साथ मैं यह भी जोड़ना चाहूँगा कि कृषि वैज्ञानिक मल्टीनेशनल कीटनाशक कंपनियों की अपनी नौकरी छोड़-छोड़कर आये हैं। ये गाँव-गाँव जाकर शेतकरी लोगों को जैविक तरीके से कीटनाशक बनाने का प्रशिक्षण दे रहे हैं।....हम सिर्फ कीटनाशक ही नहीं, खाद भी बनाते हैं। गोबर, गोमूत्र, मानव मूत्र, हल्दी, लहसुन, नीम की खली... हम गाँव-गाँव जाकर लोगों को इस जैविक कीटनाशक बनाने की ट्रेनिंग देते हैं। ऑर्गेनिक पद्धति से पैदा की गयी फसलें, अन्न, सब्जियाँ, शहरी लोगों की पहली पसन्द और पूरे देश की

1. संजीव - फाँस, पृ. 190

ज़रूरत है। कोई भी इसे सीख सकता है, बना सकता है, मोटी कमाई कर सकता है और खुद को तथा देश को बचा सकता है।"[1] यही असल में गाँधी जी द्वारा प्रशस्त मार्ग है जिसे भारतीयों ने बहुत पहले ही छोड़ दिया था। इसी राह में चलने से ही सच्चा विकास संभव होगा-इस तथ्य को बहुत पहले से ही जान लेना आवश्यक था, देर से ही सही यह जो नयी क्रान्ति हुई है वह किसी विदेशी पद्धति का परिणाम नहीं है बल्कि भारत की अपनी संस्कृति से ही निकला है। इसे अपनाओ और आगे बढ़ो।

'बा' उपन्यास में गाँधी जी द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा पर उनके आत्मविश्वास का चित्रण मिलता है - "मोहनदास ने कहा, मैंने पानी के इलाज का अध्ययन किया है। मेरा उसमें विश्वास है। मैं मणि का उस पद्धति से इलाज करना चाहता हूँ।"[2] गाँधी जी का प्रकृति पर पूरा भरोसा था। इस देशी उपचार में उतनी शक्ति है जिससे मानवता लाभान्वित हो सकती है। सिर्फ और सिर्फ उसकी पहचान करने की ज़रूरत है।

'पार' उपन्यास में सरकार द्वारा लड़ैई को अभयारण्य बनाने की योजना बनायी जाती है। "सरकार कहती है हम नए वन लगाएँगे। पुराने वनों और वनवासियों की जिसे कोई फिक्र नहीं, वह नए वनों का डंका पीटते नहीं थकती। यह बाँध पूरा होने तक हमारी वन-संपदा, वनस्पति और वन्य प्राणियों की जो हानि हो चुकेगी उसकी पूर्ति कब, कैसे, किससे हो सकेगी? प्राकृतिक वनों की संरचना एक जटिल प्रक्रिया है। हज़ारों वर्ष का विकास

---

1. संजीव - फाँस, पृ.191
2. गिरिराज किशोर - बा, पृ. 10

उन्हें वनस्पति-वैभिन्न देता है। यह बहुमूल्य वन और जैविक संपदा होती है। कृत्रिम रूप से रोपित वनों में वह बात आ ही नहीं सकती। जब बाँध के लिए ही पैसा नहीं है तो पर्यावरण सुधार क्या हवा से करेंगे?"[1] यह सवाल आज बहुत अधिक प्रासंगिक है। विकास के लिए समूचे वन संपदा को उजाडा जाता है। इस प्रकार प्रकृति अपना संतुलन खो बैठती है। थोडे से मुनाफे के चक्कर में सरकार की इस प्रकार की स्वार्थी चाल देश को ले डूबेगा। गाँधी जी ने इसकी चेतावनी बहुत पहले ही दिया था। उनकी बातों को अनसुना करने का नतीजा आज हमारे सामने है।

4.14 शहर केन्द्रित विकास नीति

शहर केन्द्रित विकास मॉडल को अपनाते हुए स्वतंत्र भारत में पश्चिमीकरण की प्रवृत्ति की शुरुआत हो गयी थी। गाँधी जी के उसूलों को त्यागकर देश की सरकार ने औद्योगिक क्रान्ति रूपी विकास को चुना। गाँव आधारित विकास के बदले शहर केन्द्रित विकास की योजनाएँ बनने लगीं। "आज़ादी के बाद जिस सरकार ने अपने ऊपर यह जिम्मेदारी ली थी वह तो अपने पंडितजी के भोर में देखे सपने को हकीकत में बदलने में मशगूल हो गई। उस सपने की खातिर हमें केवल सपने में याद रखने की आदी हो गई।"[2] माते का वाक्य वास्तविक सच्चाई का उद्घाटन करने वाला वाक्य है। लड़ैई गाँव में बाँध बनाने की योजना नेहरु के समय तैयार की गई थी। बाद में इसका शिलान्यास इंदिरा गाँधी की सरकार के समय हुआ। इतना ही

1. वीरेन्द्र जैन - पार, पृ. 127
2. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 241

नहीं राजीव गाँधी के समय तक आते आते लड़ैई को डूब क्षेत्र घोषित कर दिया गया। शहर में बिजली, पानी के खातिर एक ओर गाँवों को शहर के लिए कुर्बान होने केलिए मज़बूर किया गया तथा दूसरी ओर गाँव वालों को पूरी तरह उजाड दिया गया है- "सरकार कहती है हम अभयारण्य बनाएँगे। लड़ैई को, जीरोन को वापस गुरीला पर बसाएँगे। पुराने ज़माने के ढंग का रहना-सहना रखेंगे ताकि भविष्य में पर्यटक आकर देख सकें की प्राचीन काल में यहाँ लोग किस तरह रहते थे। यानी वहाँ विकास की किरण नहीं पहुँचने दी जाएगी। लोगों को संग्रहालय की, अजायबघर की वस्तु बनाया जाएगा। जैसे खजुराहो में किया गया है। जैसा भोपाल में भारत भवन में किए जाने के प्रयास चल रहे हैं। यानी अब संस्कृति चलायमान नहीं, कहीं-कहीं विद्यमान रहेगी। स्थापत्य की वस्तुओं की तरह स्थिर, स्थापित। वे इक्कीसवीं सदी में नहीं संभवतः ईसा पूर्व की किसी सदी में रहेंगे।"[1] शहर को विकसित कर गाँवों को अनदेखा करने वाली इस विकास प्रक्रिया ने सामान्य जनता के मन में निराशा जगायी। सरकार की चालाक नीति ने लड़ैई गाँव को पूरी तरह से उजाड दिया। अर्थात् गाँव में बाँध बनने से असल में गाँववालों की भलाई नहीं बल्कि शहर के बड़े-बड़े कारखानों की भलाई होती है। आम एवं गरीब आदमी हमेशा पिछड जाता है।

शहरी विकास नीति की शुरुआत वास्तव में पण्डित नेहरू की नीतिगत योजना के आधार पर हुआ था। शहर से शुरु होकर गाँवों तक के विकास पर उन्होंने बल दिया। 'निन्यानवे' उपन्यास में दूसरी पंचवर्षीय

---

1. वीरेन्द्र जैन - पार, पृ. 127

योजना के समय नेहरू बल्लो के विश्वविद्यालय में आते हैं। यूरोपीय औद्योगिक क्रान्ति से प्रभावित नेहरू "अपनी आँखों के सम्मुख मानव और मशीन का चमत्कार देख रहे हो और आँखों देखा हाल सुना रहे हो। .... अतीत को वर्तमान की तरह देख रहे थे: एक सामन्ती समाज सृजन की पीडा और प्रफुल्लता से आधुनिक समाज में बदल रहा था। भांप के इंजन से हवाई जहाज तक की उडान थी। बीच में कृषि का मशीनीकरण और उद्योगों का चहँमुखी विकास था। .... बल्लो को लगा था कि नेहरू जी के स्वर में कोयल सी-सहजता और रवानी है। वे यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति का इतिहास नहीं बयान कर रहे थे, कोई गीत गा रहे थे मानो उसी गीत को भारत की धरती पर सरसराता देख रहे थे। जब किसी छात्र ने टिप्पणी की कि बर्तानिया की औद्योगिक क्रान्ति के पीछे भारत का पैसा और कपास और कपड़े के उद्योग थे तो नेहरूजी ने कहा कि वह सवाल अलग है। फिर जब एक और छात्र ने भारत के छोटे किसान और उसकी छोटी खेती की बात की और गाँधी जी को याद किया तो नेहरूजी मुस्कुरा दिए। उन्होंने कहा कि बडी खेती का रास्ता भी छोटे किसान की ओर ही जाएगा।"[1] गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित गाँव केन्द्रित विकास से नेहरु जी का विचार मेल नहीं खा पाया और वे उनसे फिसलते गए। गाँधी जी ने छोटे-छोटे उद्योगों पर आधारित आर्थिक विकास नीति का समर्थन किया था। बड़े बड़े उद्योगों का रास्ता बड़े-बड़े उद्योगपतियों तक ही पहुँच पाएगा, उसका रास्ता निचले स्तर के लिए कभी नहीं खुलता। शहर केन्द्रित बड़ी बड़ी विकास योजनाओं का रास्ता छोटे लोगों की ओर

---

1. रवीन्द्र वर्मा - निन्यानवे, पृ. 64-65

नहीं जाते हैं। इस प्रकार शहर अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए गाँवों के संसाधनों को लूटने आ जाते हैं। 'डूब' उपन्यास में रानी साहिबा का आश्वासन सुनकर ऐसा लगता है कि वास्तव में गाँवों का विकास संभव हो जाएगा-"...देश में भखड़ा-नंगल जैसा बडा बांध बनाने की योजना बनी, जिससे बिजली बन सके, कारखाने चल सकें, घर रौशन हो सकें, तभी से मेरे मन के यह इच्छा पला रही है कि आप लोगों के विकास के लिए भी ऐसी ही योजना मंजूर करवाई जाए।... जब बाँध बनकर तैयार हो जाएगा तो हमारे इलाके में भरपूर बिजली मिलेगी नए ढंग से खेती हो सकेगी, जैसे विलायत में होती है।"[1] गाँव वालों को झूठा भरोसा देकर शहर को उजागर करने हेतु बाँध बनाने का प्रस्ताव रखती है। जितना खोना पडा उन सब को गाँव वालों के नसीब में चढा दिया गया। संपूर्ण राष्ट्र का विकास सपना मात्र रह गया, कुछ गिने चुने शहरों का विकास हो गया। गाँधी जी के गाँवों के विकास से भिन्न होकर पश्चिमी रीति के अनुसार शहर केन्द्रित विकास योजनाओं को संभव बना दिया गया। गाँवों का पुनर्गठन नहीं बल्कि उसके अस्तित्व को ही मिटा दिया गया।

4.15 निष्कर्ष

संपूर्ण दुनिया को एक रंग में रंगने की पद्धति का नाम है भूमंडलीकरण। जिसके माध्यम से कुछ ताकतवर देश अपनी संस्कृति, अपना माल सब कुछ दूसरों पर थोपकर मुनाफा कमाती है। हम वास्तव में भूमंडलीकरण के कैदी हैं। भारत आज परोक्ष रूप से अमेरिका का नव उपनिवेश है। भारतीय आर्थिक नीति ने अमेरिकी अर्थ नीति के सामने अपना सब कुछ दाव पर

1. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 61

रखा दिया है। हमारी राजनीति, समाज, अर्थ, संस्कृति सब कुछ इस बाज़ारू, नीजीकृत एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यवसाय के लिए खुली नीतिगत व्यवस्था में लीन हो गया है। आज हम स्वतंत्र होते हुए भी स्वतंत्र नहीं हैं। स्वतंत्रता, वैचारिकता, स्वच्छंदता, चयन शक्ति सब कुछ भूमण्डलीकृत दुनिया से कोसों दूर है। स्वार्थों पर आधारित यह विचारधारा मानव जाति के विकास के लिए लाभकारी नहीं है। यह कुछ शीर्षस्थ तबकों के हितों की रक्षा करने के लिए बनाई गई रणनीति है। इसके माया प्रपंच में नयी पीढ़ी फँसती जा रही है। समाज में सब कुछ बाज़ार तय करता है। बाज़ारीकरण का नतीजा यह हुआ है कि बाज़ार अब गली, मोहल्ले को पार कर घर के अन्दर तक घुस आया है। तकनीकी विकास संपूर्ण जगत को हाई-टेक बना रहा है। किन्तु इसका नतीजा यह हुआ कि आज पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ रहा है तथा प्रदूषण का स्तर बढ़ रहा है। भूमंडलीकरण जिस तेज़ी से फैलता जा रहा है। उतना ही आनेवाली पीढ़ियों का जीवन दाँव पर लगा है।

मुनाफा बटोरती बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए भारत एक ऐसा बाज़ार बन गया है कि वह चाहे कुछ भी यहाँ बेच सकता है। उसे ग्राहकों की कमी कभी नहीं खलेगी। नव पूँजीवाद का दूसरा चेहरा बनता जा रहा इस वैश्विक प्रक्रिया में जितना विकास का दावा किया गया था उससे दो गुना सर्वनाश ही संभव हो पाया है। किसानों की आत्महत्या, आदिवासियों को विस्थापित कर देना, नव पीढ़ी को एक खर्चीली सभ्यता में धकेलना, महानगरों में गगनचुम्बी अट्टालिकाओं का बनना आदि सब कुछ इसी विश्वव्यापी पद्धति की देन है।

किसी और के हाथों की कठपुतली होते जा रहे देश के नेता गण अपने राष्ट्र निर्माण करने और राष्ट्र की समृद्धि को बढाने के बदले वह अपनी राष्ट्रीय प्रभुता और अस्मिता का ही बिक्री करने पर तुले हैं। उपभोक्ता बनता जा रहा मानव इस बात से अनभिज्ञ है कि वह खुद उपभोग की वस्तु बनता जा रहा है। बाज़ार की इस बिकाऊ संस्कृति ने पुराने को नष्ट कर दिया है। भारत अब भारत न होकर अमेरिका बनता चला जा रहा है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में स्थानीयता अपनी अस्मिता, अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। आधुनिक वैश्विक नीति के तीन वैश्विक मूल्य हैं जिन पर ये कार्यरत हैं। ये हैं - विज्ञान, बाज़ार एवं विकास। यहीं नहीं विश्व भर की व्यवस्थाओं ने और सरकार ने भी इसे सशक्त मान लिया है। पश्चिमीकरण की नीति को अपनाते हुए इसने देश को बदलकर रख दिया। इसके सकारात्मक प्रभाव कम और नकारात्मक प्रभाव ज़्यादा है। इनसे बचने का एक मात्र विकल्प है भारतीयता को एक बार फिर से पुनःजीवित करना। भारत की आत्मा को पहचानने वाली पद्धति को अपनाकर ही भारत का सच्चा विकास संभव होगा। यह सब संभव है गाँधी जी द्वारा प्रशस्त रास्ते को अपनाते हुए। गाँधी जी ने बहुत पहले ही इस आनेवाले संकट को पहचान लिया था। उन्होंने भारत को अपने अनमोल चिन्तन से ओतप्रोत किया था ताकि भविष्य की पीढ़ी इससे लाभ उठा सकें। किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् गाँधी और उनके चिंतन केवल पाठ्यक्रम बनकर रह गये। उस पर प्रयोग नहीं हुआ। भारत का सच्चा विकास भारतीय संस्कृति के उदात्त तत्वों को अपनाकर ही संभव होगा। इस

तथ्य को पहचानने का समय हो चुका है। पश्‍चिमी सभ्यता को मारक बताते हुए गाँधी जी ने भारतीयों को पहले ही सचेत किया था। उनके अनुसार भारत का भविष्य पश्‍चिम के उस रक्तरंजित मार्ग पर नहीं है। उसका भविष्य सरल धार्मिक जीनव द्वारा प्राप्त शांति के अहिंसक रास्ते पर चलने में ही है। भारत अपनी आत्मा को खो चुका है। यह खतरे की घंटी है। वह अपनी आत्मा को खोकर जीवित नहीं रह सकेगा। गाँधीजी के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भारत अपनी ओर आनेवाली हर मुसीबत का डटकर मुकाबला कर सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इन्हीं शब्दों के बल पर वर्तमान पीढ़ी को प्रतिरोध का रास्ता अपनाना होगा।

❖ ❖ ❖

पाँचवाँ अध्याय

धर्मनिरपेक्ष संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में गाँधी चिंतन

धर्मनिरपेक्ष संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में गाँधी चिंतन

धर्मनिरपेक्षता अंग्रेज़ी शब्द 'सेकुलरिसम' का हिन्दी रूपान्तरण ज़रूर है किन्तु उसमें अर्थ की दृष्टि से बहुत अंतर है। 'सेकुलरिसम' का वास्तविक अर्थ राज्य कार्य से धर्म अथवा धार्मिक पद्धति की अस्वीकृति है। धर्म का भौतिक जीवन से राजनीति से निष्कासन ही यूरोप में सेकुलरिसम का अर्थ ठहरता है।

जब हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में 'धर्मनिरपेक्षता' को परिभाषित करते है तो इसका अर्थ पाश्चात्य अर्थ से बिल्कुल भिन्न हो जाता है। इसका कारण है भारतीय पृष्ठभूमि। भारत जैसे कि हम जानते हैं चिरंतनकाल से ही एक धर्म प्राण देश रहा है। इसने अपने निकट आए सभी धर्मों को अपने में समाहित किया है। भारत जैसे धार्मिक सहिष्णुता वाले देश में सभी धर्मों को फलने फूलने का समान अधिकार प्राप्त है। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत धर्म का संस्कार ग्रहण कर सकता है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था को कायम रखने का एक मात्र उपाय भी धर्मनिरपेक्ष होना ही है। इस प्रकार भारत में सभी धर्मों के लिए समान अधिकार प्राप्त है। 'सर्वधर्म समभाव' की मान्यता को सही अर्थों में भारत ने बहुत पहले से ही अपनाया है। विविधता में एकता ढूँढने वाला भारतवर्ष अनादिकाल से ही अपनी इस समन्वय भावना के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। इसका यह तात्पर्य है कि भारत में धर्म का विरोध नहीं बल्कि सभी धर्मों को समानता का हक दिया गया है।

किसी प्रत्येक धर्म के प्रति कोई लगाव नहीं है। यहाँ धर्म के प्रति निष्क्रिय, नकारात्मक अवधारणा नहीं बल्कि एक सकारात्मक संकल्पना है। राज्य का अपना कोई धर्म नहीं है, न ही उसने किसी धार्मिक परंपरा को राष्ट्रीय विरासत के रूप में अपनाया है। यहाँ की संस्कृति पुरातन काल से ही धर्मनिरपेक्ष रही है। 'वसुधैव कुटुंबकम', 'सर्वधर्म समभाव', 'विविधता में एकता', 'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु' आदि सोच हमारी सांस्कृतिक विरासत है।

भारत जैसे देश में धर्मनिरपेक्षता किसी व्यक्ति को धर्म में आस्था रखने से नहीं रोकती। इतना ही नहीं धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति न तो धर्म से रहित होता है और न ही नैतिक मूल्यों से परे। इसका सीधा संबन्ध धार्मिक असहिष्णुता, सांप्रदायिकता, कट्टरता एवं दुर्भावना से रहित होकर नैतिक आधार हासिल करने से है। धर्म वास्तव में अहिंसा, दया, न्याय आदि की कुंजी है जिसको सदाचार के नाम से अभिहित किया गया है। यही मनुष्य का वास्तवि व्यावहारिक धर्म है। यही धर्म उसे प्राणीमात्र के कल्याण के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति नैतिकता से पूर्ण एवं धर्म सहिष्णु होता है।

हमारी संस्कृति विभिन्न धर्मों का समन्वय है। यही हमारी धर्मनिरपेक्षता है जिसको गाँधी जी ने अपनाया था। उनके अनुसार मानव को अपनी सहनशीलता, त्याग एवं अहिंसा के साथ अपना समग्र विकास की ओर अग्रसर करने वाला पथ ही धर्मनिरपेक्षता का पथ है। इसी पर चलते एक

आदर्श समाज कायम हो सकता है। उनके लिए सभी धर्मों का सारांश एक ही है। विश्व भर के धर्म तंत्र को वे एक ही वृक्ष की भिन्न भिन्न प्रकार के आकार वाली शाखाओं के रूप में मानते थे। गाँधी जी ने समान अधिकार से युक्त सर्वधर्म समभाव की भावना से मण्डित एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का सपना देखा। उन्होंने धर्म को मनुष्य को सही मार्ग प्रशस्त करनेवाले घटक के रूप में देखा। उन्होंने सत्य एवं अहिंसा के आधार पर एक आदर्श रामराज्य की कल्पना की।

स्वाधीनता के पश्चात भारत में धर्मनिरपेक्ष नीति को अपनाया गया ताकि देश विभाजन, सांप्रदायिक दंगों जैसी विभीषिका से बच सकें। किन्तु कालान्तर में धर्म समभाव की भावना क्षीण पड़ती गयी। देश में धर्मनिरपेक्षता का भविष्य अंधकारमय हो गया है। वर्तमान देश की कल्पना शायद गाँधी जी ने भी नहीं किया होगा। देश में पुनः सांप्रदायिक दंगों की आग ने सबको अपने चपेट में ले लिया है। भारतीयता की भावना मिटकर एकल धर्मवादी पद्धति का जन्म हो गया है। धार्मिक तटस्थता, सहिष्णुता, सभी धर्मों के प्रति समान आदर जैसे शब्द आज खोखले साबित हो रहे हैं। हिंसा की तीव्र भावना से पूरा देश प्रताडित है। धर्म की गलत व्याख्या करके उसको नकारात्मक कर दिया गया है। एक दूसरे के प्रति घृणा की भावना, प्रत्येक के धर्म को नीचे दिखाने की प्रवृत्ति आम बात हो गई है।

आपसी वैमनस्य ने समय को पेचीदा कर दिया है। मार-काट, लड़ाई,

सांप्रदायिक दंगें, हिंसा, घृणा आदि हमारे देश के धर्मनिरपेक्ष ढाँचे को तोडने का निरन्तर प्रयास कर रहा है। इससे बचाव ज़रूरी होगया है। इनकी प्राप्ति के लिए एक तटस्थ सोच, एक ऐसी विचारधारा की ज़रूरत है जिसने भारतीय संस्कृति को अपनी आत्मा से छुआ हो। वह गाँधी जी के वैचारिक धरातल पर विकसित चिन्तन में ही मौजूद है। पुनः उस पर विचार केन्द्रित करना समय की माँग है। क्योंकि आज धर्म को आधार बनाकर देश भर में घिनौने कार्य चल रहे हैं। धर्म अपनी वास्तविकता से दूर हो गया है। धर्म एवं जाति को राजनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। धर्म निरपेक्ष नीति को धर्म सापेक्ष बनाने का गूढ़ तंत्र चल रहा है।

5.1 धर्म रूपी अफीम का फैलाव

धर्म शब्द अपने आप में इतना महान है कि इसका अर्थ भी व्यापक है। "सभी धर्मों के मूल में दया, करुणा, परोपकार और सौहार्द्र है।"[1] धर्म से मतलब सामाजिक सत्कार्य करने से था। दूसरे शब्दों में इसको 'सदाचार' के अर्थ में भी लिया जाता है। किन्तु कालान्तर में धर्म शब्द का अर्थ रुढ़ एवं संकीर्ण हो गया। जिस शब्द का प्रयोग अन्याय, अनाचार जैसी प्रवृत्तियों के विरुद्ध प्रयोग किया जाता था आज इसका दुरुपयोग किया जा रहा है। इस प्रकार धर्म का दुरुपयोग समस्त विश्व के लिए खतरनाक साबित हो रहा है।

धर्म के नाम पर भारत में आज पाखण्ड इतना बढ़ गया है कि उसको रोक पाना असंभव सा हो गया है। हर गली-मुहल्ले में आज इसी का

1. किशन कालजयी (संपादक, प्रकाशक व मुद्रक) -सबलोग, पृ. 46

बोलबाला है। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में पात्र बने खुद गाँधी जी को भी इस पाखण्ड का शिकार होना पडता है। इस घटना को देखिए- "एक पूजारी अपने संपूर्ण पुजारीपन के साथ वहाँ विराजमान था। एक क्षण तक वे (मोहनदास) सोचते रहे उसे दक्षिणा दें या न दें। ईश्वर के नाम पर जहाँ सफाई तक न हो वहाँ दक्षिणा का क्या मतलब? फिर भी उन्होंने एक पाई निकाली और उसकी तरफ बढ़ा दी। इससे ज़्यादा दक्षिणा देना निष्क्रियता को सम्मानित करना होगा।....

पुजारी ने पाई उठाकर फेंक दी, 'अपमान करता है, नरक में जाएगा।' मोहनदास को उसकी बात में मजा आया। वे गंभीरता बनाये रखते हुए बोले, 'महाराज, आप उसकी चिन्ता न करें। भाग्य में नरक होगा तो नरक मिलेगा, स्वर्ग होगा तो स्वर्ग मिलेगा। आप जैसे ज्ञानी को इस चक्कर में पड़ना ही नहीं चाहिए...। जहाँ तक पाई का सवाल है। पाई मेरे लिए बिलकुल भारी नहीं! आप लेना चाहें तो ले लें वरना मैं इसे अपने साथ ले जाऊँगा।'

'भाग यहाँ से, मुझे नहीं चाहिए तेरी पाई। पापी, दुष्ट... ' एक साथ कई गालियाँ दे डालीं।

मोहनदास ने पाई उठायी और हँसकर बोले, 'महाराज, आपने पाई खोयी और मैंने वापस पायी।'

मोहनदास चलने लगे तो पुजारी बोला, 'ला दे, मैं तेरी तरह अधर्मी नहीं। मैं पाई स्वीकार नहीं करुँगा तो तेरा अहित हो जाएगा।' मोहनदास ने बिना कुछ बोले पाई उसके हाथ पर रख दी । फिर लंबी-सी साँस छोड़कर

बोले, 'वाह रे धर्म...'।"[1] हमारे देश में आज की स्थिति यह है कि धर्म, आस्था आदि के नाम का धंधा काफी हद तक फलफूल रहा है। इसको रोकने के लिए कोई भी कदम सरकार की तरफ से उठाया नहीं जा रहा है। दिन पर दिन ये पाखण्डी लोग जनता को अपने वश में करते जा रहे हैं। धार्मिक आस्था रखनेवाली भारतीय जनता भी इनके कुचक्र को समझे बिना इनके चंगुल में फंसते जा रहे हैं। आखिर इनको रोका जाए तो कैसे। यह इस देश के प्रत्येक नागरिक को सोचने के लिए मज़बूर करता है। इससे बचने के लिए अब प्रत्येक को इसके विरुद्ध कदम उठाना पड़ेगा। तभी यह देश धार्मिक पाखण्ड से अपने आप को निकाल सकता है।

धर्म एक ऐसा अफीम बन गया है जो सबको इसकी जाल में ले रहा है। मानव को मानव ही रहने देने के बजाय उसको धर्म का पट्टा पहनाकर धर्म का आदमी बना देता है। संकीर्ण सोच वाले ऐसे लोग विभिन्न धर्मों के बीच में अपना धर्म ही सर्वोच्च मानते हैं। इस खतरनाक स्थिति ने आदमी को आदमी के नज़रिए से नहीं बल्कि धर्म के धरातल पर देखना शुरु कर दिया। 'घास का पुल' उपन्यास में रवीन्द्र वर्मा ने इसी ओर इशारा किया है। प्रसंग में नन्दलाल और कर्नल राठौर के बीच बातचीत के दौरान कुछ धर्मावलंबियों का प्रवेश होता है। कर्नल राठौर के बेटे कैप्टन राठौर की कश्मीर की एक मुठभेड में मृत्यु हो जाती है। इस दुःख की घड़ी में कर्नल अपने मन की बातों को नन्दलल से कहते समय कुछ लोगों का आगमन होता है - "आप लोग कौन हैं? कर्नल ने पूछा।

---

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 532

रामसैनिक', एक बोला।

तब नन्दलाल ने गौर किया कि तीनों सफेद कुर्ता-पाजामा पहने थे और उनके गले में भगवा दुपट्टा था।

'रामसैनिक'! कर्नल ने भवें ऊपर उठाईं, रामसैनिक तो बन्दर थे। क़िब्ला, आपकी पूँछें तो नज़र नहीं आतीं।

'हम इक्कीसवीं सदी के रामसैनिक हैं', एक ने गर्वीली आवाज़ में कहा, हमें पूँछ की ज़रूरत नहीं।

फरमाइए, कर्नल ने कहा।

हम आपका अभिनन्दन करना चाहते हैं।

क्यों?

आपके बेटे ने आतंकवादियों से अमरनाथ धाम की रक्षा करते हुए अपनी जान दे दी ।

'बर्ख़ुरदार', कर्नल ने सपाट स्वर में कहा, 'वह अपनी ड्यूटी बजा रहा था। सरकार ने बताया कि उसने देश के लिए अपनी जान कुर्बान की।'

'अपना धर्म ही अपना देश है', एक दाढ़ीधारी युवक गंभीर स्वर में बोला जो अभी तक चुप था।

'मैं देश को भूगोल का मामला समझता था', कर्नल मुस्कराए।"[1]

इस प्रकार उपन्यास में धर्म के नकारात्मक पक्ष का चित्रण किया गया है। एक ज़माना ऐसा भी था जब धर्म आध्यात्मिकता का प्रवर्तन करता था। ईश्वर की आराधना इसके मूल में थी। इसलिए इसको स्वैच्छिक कहा जाता

---

1. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 128

रहा। किसी को अगर कोई धर्म अच्छा लगा तो वह उस धर्म को अपनाकर उसका संस्कार स्वीकार करता था। किन्तु आज धर्म को संप्रदाय विशेष या संस्थाबद्ध कर दिया गया है। इसके डोल पीटने के लिए बहुत से चमचे भी बन गये हैं। जिसका नतीजा यह हुआ कि समाज में एक ऐसा समूह या संघ उभरने लगा जिसने समाज में तनाव की सृष्टि की। इससे यह परिणाम निकलता है कि अन्य धर्मावलंबियों में भी प्रतिस्पर्धा पैदा होता है जो समाज के लिए खतरनाक हो जाता है।

वास्तव में दुनिया का जो वर्तमान चित्र हमारे सामने उभरकर आ रहा है उसमें इस बात की ज़रूरत जान पडती है कि उसे धर्म रूपी आतंक का नहीं बल्कि प्रेम रूपी सुकून की आवश्यकता है। गाँधी जी भी इसी के पक्ष में थे। उन्होंने हमेशा व्यक्ति अथवा मानव के बारे में सोचा। गाँधी जी के लिए मानव में नैतिकता होना आवश्यक था। और यह तभी संभव है जब वह अध्यात्म या ईश्वर की तरफ रुख करें। धर्म वास्तव में इस ओर जाने का रास्ता था। इसलिए उनका कहना था कि "धर्म परहेज का कारण कैसे हो सकता है? वह तो ईश्वर को पाने का रास्ता है।"[1] उनके लिए मनुष्य का मनुष्य के साथ सही व्यवहार, प्रेम भरा बर्ताव ही इनसानियत का निशान रहा। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में इसी सोच को वाणी दी गई है। अदीब कहता है - "सलमा! यह मीठी और शर्बती थकान कितना सुकून देती है... इतना सुकून तो किसी मज़हब में नहीं है....

- आओ, अदीब... फिर अपने सुकून के लिए एक बार और मज़हब

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 70

बदलकर देखें! सलमा ने उसकी थकी साँसों को पीते हुए कहा।

-सलमा!.... किसी धर्म के पास इतनी ठोस शांति, इतना पुख़्ता सुकून नहीं है जो हमें आखिरत के दिन तक संभाल सके... हमें तो वहीं तक जीना है। अदीब ने कहा।"[1] दिये गये वाक्यों के अनुसार समाज में शान्ति की ज़रूरत है। धर्मावलंबियों द्वारा चलाये जा रहे कट्टर, संकीर्ण धार्मिक विद्रूपताओं का अस्त हो जाना चाहिए। समाज में शान्ति किसी प्रकार के धर्म के अनुकरण से नहीं बल्कि प्रेम से प्राप्त होती है। जिस संप्रदाय में नफरत का तांडव हो रहा हो उससे समाज का विकास नहीं बल्कि विनाश ही होगा। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति एवं समाज को आपसी सौहार्द्र से रहने की सीख हासिल करनी होगी।

महात्मा गाँधी जैसे महान व्यक्ति का नाम इसलिए लोगों के मन में आज भी है क्योंकि उन्होंने जीवन भर अपने धर्म का पालन किया है। जन्म से सनातन हिन्दू होना, वैष्णव धर्म का अनुपालन जीवन भर करने का यह मतलब नहीं था कि उन्होंने केवल हिन्दुओं एवं हिन्दू धर्म के लिए अपनी आहुति दी। उन्होंने हमेशा मानव समाज के कल्याण हेतु कार्य किया। वे धार्मिक थे। उन्होंने सभी धर्मों को अपने जीवन में स्थान दिया। जिसका उदाहरण सुप्रसिद्ध गाँधीवादी काका कालेलकर जी के शब्दों से ज्ञात होता है - "हम आश्रम में सुबह-शाम प्रार्थना करते हैं। इसमें वेद-काल के मंत्रों से लेकर रवीन्द्र नाथ के भजनों तक सबका स्थान है। लेकिन कुरान शरीफ की आयतें, ईसाइयों के भजन और बोद्धों की गाथाएं भी हम गाते हैं।"[2] उनके

1. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 132
2. कनक तिवारी(संपादन एवं संयोजन), गाँधी का निरपेक्ष धर्म, पृ. 15

अनुसार सभी धर्म लगभग समान सिद्धान्तों पर आधारित हैं। उनके लिए धर्म का मतलब 'सेवा' भावना है। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में सेवाधर्मी मोहनदास करम चंद गाँधी जी का चित्रण किया गया है। मोहनदास द्वारा नेटाल के भारतीयों को उनका हक दिलवाया गया। आगे एक जगह पर पात्र मोहनदास कहते हैं कि - "सब धर्म-परंपराएँ एक हैं, बस रंग का अन्तर है। आपने (मि. बेकर) स्वयं कहा कि मुझमें भी एक क्राइस्ट है। जिसमें क्राइस्ट होता है उसे सूली पर चढ़ना पड़ता है। चाहे वह उसकी अपनी बनायी हुई हो या बाहर से दी गयी हो।"[1] सत्य के रास्ते पर चलकर उन्होंने अपने धर्म का पालन किया और साथ ही साथ सभी धर्मों को समान दर्जा दिया।

धर्म रूपी अफीम संपूर्ण देश में पैल गया है। इनसे संघीय खज़ाना भर दिया जा रहा है। हमारे देश में स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गयी है कि धर्म के नाम पर पैसों का धंधा भी खूब ज़ोर शोर से चल रहा है। लोग इनके बहकावे में बहुत जल्दी आ जाते हैं। 'घास का पुल' उपन्यास में इसी प्रकार धर्म के नाम पर चंदा इकट्ठा करने के लक्ष्य से बेमतलब का कारण बताकर पैसे ले जाते हैं, जब अम्मा ने पूछा कि - "क्या काम है?

हम एक अभियान चला रहे हैं, अम्मा, दूसरा बोला, उसमें आपकी मदद और आशीर्वाद चाहिए।....

कैसा अभियान ?.....

राम-सेतु को बचाने के लिए।

---

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 202

क्या हुआ रामसेतु को? अम्मा को अपना पिछली रात का सपना याद आया, क्या रावण फिर से पैदा हो गया?

हाँ अम्मा, तीसरा बोला... सरकारी रावण कहता है कि राम तो कभी पैदा नहीं हुए। रामायण गप्प है। रामसेतु तोड़कर समुद्र में जहाज चलाएँगे।

अम्मा सन्न थी।

पहले ने रसीद-बुक उनकी आँखों के आगे बढ़ा दी, जिस पर मोटे अक्षरों में लिखा था: रामसेतु बचाओ अभियान समिति।

अम्मा ने अपनी धोती के छोर की गाँठ खोलकर पचास का नोट निकाला और रसीद-बुक पर रख दिया।"[1] धर्म पैसे कमाने का आसान साधन बन गया है। इसका यह मतलब निकलता है कि इतने आधुनिक बनने के बाद भी धर्म सत्ता की पकड़ लोगों में आज भी इतना दृढ़ है जितना पहले था। धर्म के खिलाफ कोई सोच भी नहीं सकता। धर्म का जो पाखंडी रूप सामने आया है उसकी सच्चाई की परख कोई करना ही नहीं चाहता। धर्म आज भी उतना ही प्रभावी एवं शक्तिशाली बनकर भारतीय जनमानस में विद्यमान है।

5.2 धर्म में राजनीति की मिलावट

गाँधी जी ने धर्म और राजनीति को साथ साथ देखा है। उनके अनुसार सिद्धान्त रहित राजनीति मौत के फंदे के समान है जो देश की आत्मा को ही नष्ट कर देती है। साथ में उन्होंने यह भी कहा कि राजनीति ने हमारे जीवन

---

1. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 23

को साँप की तरह जकड़ लिया है, इससे निकलना बहुत ही मुश्किल भरा काम है। इससे लड़ने के लिए उन्होंने यह तरकीब निकाला कि वास्तविक धर्म के उच्चतम आदर्शों को विकसित किया जाए।

वर्तमान में धर्म और राजनीति का इतना तालमेल होगया है कि नैतिकता मानो खत्म ही हो गया है। जो धर्म मानवीय गुणों के विकास में, मानव को जोडने की प्रेरणा देता था आज वही इनसानों के अलगाव का कारण बन गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले जिन लोगों ने एकता का मिसाल कायम किया था। स्वतंत्रता के पश्चात इन्हीं के बीच धर्म के नाम पर संघर्ष शुरु हो गया है। तब से लेकर वर्तमान समाज में चल रहे संघर्षों का मुख्य केन्द्र धर्म ही है। धर्म का राजनीतिकरण का एक प्रमुख उदाहरण भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यास 'काला पहाड़' में दिया है - "दरअसल है क्या कि इस इलाके के लोग न सिर्फ सीधे हैं बल्कि बेहद इमोशनल और सेंटिमेंटल भी हैं... आपको एक मज़े की बात बताऊँ शफ़ी साहब, ये लोग जितने इमोशनल हैं उतने ही अपने कौल के पक्के भी हैं, हम शियाओं से कहीं ज़्यादा... अगर इन्हें यह पता चल जाए कि इलेक्शन में खड़ा होने वाला केंडीडेट उनके गोत्र का है तो मजाल है इनका एक भी वोट इधर से उधर हो जाए... चाहे वह केंडीडेट फिर किसी भी पार्टी का क्यों न हो....।"[1] यही नीति है वर्तमान राजनीति की। धर्म के नाम पर अपने अपने लोगों को धर्म की पट्टी पढा के सत्ता हासिल करना। लोगों के बीच फूट डाल के सत्ता

1. भगवानदास मोरवाल - काला पहाड़, पृ. 81

रूपी सुख सुविधा हासिल करना ही इनका लक्ष्य है। 'काला पहाड़' उपन्यास में इसका सशक्त चित्रण किया गया है। हिन्दू-मुस्लिम को भिन्न भिन्न करके एक दूसरा पाकिस्तान बनाने की होड में है वहाँ के नेतागण। इस बात पर अपना घोर प्रतिशोध व्यक्त करते हुए सलेमी कहता है - "मनीराम, एक बात कहूँ चाहे तो ऊ करीम होए या मुरसीद.. इन लीडरन्ने तो अपणी रोटी सेकना सू मतलब है... ये तो चाहवे हैं के या इलाका में ऐसी बात होती रहें.... अरे, जब कोई बुरो बखत आएगो न तो ई करीम और मुरसीद ना आंगा हमारे पै.... हमीं एक-दूसरन् के काम आँगा..."[1] लीडर लोगों को क्या है, उनको बस अपनी सीट की लालच है। वे जनता को दो वर्गों में विभाजित करके अपनी नीति चलाते हैं। वे लोगों को धर्म के नाम पर अंधा करके अपने लक्ष्य की प्राप्ति करते हैं।

हमारे देश में धर्म एवं राजनीति से संबन्धित जितनी भी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं वे सब राजनीति के पैंतरे है। जनता ने कभी भी किसी भी प्रकार का विध्वंस नहीं चाहा। उन्होंने हमेशा आपसी सहभाव के साथ जीवन जीने का रास्ता दिखाया। किन्तु राजनीति अर्थात् सत्ता इस बात के लिए कभी तैयार नहीं हुई। उनके लिए समाज में धर्म के नाम पर भेद भाव रचने से ही उनके स्वार्थ की पूर्ति होती है- "जनता क्या चाहती है... यह खबर हमें नेता देते हैं। असल में जब वे कहते हैं कि जनता मन्दिर चाहती है, तो उसका मतलब होता है कि नेता मंदिर चाहते हैं यह राजनीति है।"[2] राजनीतिज्ञ लोगों

1. भगवानदास मोरवाल - काला पहाड़, पृ. 281
2. रवीन्द्र वर्मा - निन्यानवे, पृ. 185

का चाल सर्वत्र चलता है। वे जनता को उनके हाथ की कठपुतली बनाकर नचाते हैं। अपना लक्ष्य पाने के लिए ये लोग किसी भी हद तक जा सकते हैं। इसी का नतीजा है कि आज गाँधी जी मात्र केवल चित्र बनकर कोर्ट रूम, थाना, संसद में बैठे तो हैं, किन्तु वास्तव में उनकी सीख को हाशिये पर कर दिया गया है। आज धर्म एवं राजनीति का वर्चस्व इतना भीषण हो गया है कि इसके खिलाफ ऊँगली उठाने वाले को मिटाया जाता है। राजनीतिज्ञ लोग ही धरती के देवता हैं, जिनके पास धन, अधिकार एवं सत्ता है।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में धर्म को सत्ता द्वारा उपयोग करने पर प्रकाश डाला गया है- "आप बिलकुल ठीक फरमा रहे हैं हुजूर ! सबसे पहले ये पूर्वजों की परछाइयों को क़त्ल करते हैं... संस्कृतियों का विनाश करते हैं, फिर पुरानी और पुख़्ता सभ्यताओं को बदलते हैं !... योरुप के सारे देश- स्पेन, पुर्तगाल, हालैण्ड, इंग्लैण्ड, फ्रांस सत्ता लोलुपता, भौतिक सुख और मुनाफे की तलाश में हिंसक धर्मयुद्दों को जन्म देते रहे हैं... धर्म को इन्होंने सत्ता का हथियार बनाया है।"[1] इसके बल पर वे कुछ भी करवा सकते हैं। समय समय पर रंग बदलने वाले इन्हीं लोगों के हाथ में आज समाज का लगाम है। जिस धर्म ने मानव मूल्यों की रक्षा का पाठ पढ़ाने का जिम्मा उठाया था आज उसी के हाथों मानवता का नाश होता जा रहा है।

5.3 सांप्रदायिक आंधी की भीषण लहर

स्वतंत्रता पूर्व परिदृश्य में जो एकता हिन्दू-मुस्लिम में देखने को मिला

---

1. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 294

विभाजन के पश्चात इसका लोप होता गया। अंग्रेज़ों की 'फूट डालो राज करो' की नीति को स्वतंत्रता के पश्चात अपने लोगों ने ही अपना लिया। इसका एक सच्चा उदाहरण 'कलि-कथाः वाया बाइपास' में दिया गया है - "सारा शहर लाशों से भरा पड़ा है। क्या हिन्दू क्या मुसलमान - सब पर शैतान सवार हो गया है। न जाने अब क्या होगा?"[1] इन दंगों के दौरान लोगों में हैवानियत इतनी बढ़ जाती है कि वे इन्सानियत को भूल जाते हैं। बदले की भावना से उसका विवेक नष्ट हो जाता है। पागलपन की स्थिति में मनुष्य का पशु समान क्रोध सब कुछ नष्ट कर देता है। सांप्रदायिकता को बढाने के काम में धार्मिक संस्थाओं का भी हाथ कुछ कम नहीं है। किशोर, अमोलक के गाँधी विचारों से प्रभावित होता है। किन्तु हिन्दू महासभा की बातें किशोर के मन को झकझोर कर रख देती है। वह खुद अपने से कहता है -"वे लोग गलत हैं जो यह सोचते हैं कि हिंदू और मुसलमान एक साथ मिल-जुल कर रह सकते हैं। बकवास है यह बिलकुल-भुलावा जो वे अपने आप को दे रहे हैं...। हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघवाले क्या गलत कहते हैं? जब हज़ार सालों में भी हिन्दू और मुसलमानों को साथ रहना नहीं आया, तो अब आगे कैसे आ जाएगा? इससे तो अच्छा है कि देश के दो टुकड़े हों और पाकिस्तान बने।"[2] किस प्रकार ये धार्मिक संस्थाएँ लोगों को धर्म का अंधा पाठ पढ़ाकर एक दूसरे के प्रति हीनता की भावना को जन्म देती हैं-"हम आज ही दिल्ली होकर आए हैं... अपनी विश्व हिन्दू परिषद् के लोगों ने पूरी

---

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 170
2 वही - पृ. 171

गारंटी दी है कि मेवात के हिन्दुओं की रक्षा करना उनका काम है... पूरी परिषद् हमारे साथ है।"[1] लाला अभयचंद आर्य की ये बातें उस तथ्य का पर्दाफाश करता है कि किस प्रकार आम जनता को धर्म के ठेकेदार कहने वाले लोग बहला फुसलाकर दूसरों के खिलाफ खडा कर देते हैं। सांप्रदायिकता को जन्म देने वाली इस प्रकार की संस्थाएँ अपने आपको गैर-राजनीतिक कहते ज़रूर है। किन्तु इनका असली उद्देश्य राजनीति में घुसकर जनता में पूट डालना ही है।

वैसे कहने के लिए सभी लोग धर्म और सांप्रदायिकता को एक दूसरे के पूरक समझते हैं। कट्टरता, धर्मान्धता, धार्मिक दुराग्रह आदि का इसके पीछे होने के बावजूद भी सोचने पर यह ज्ञात हो जाता है कि इसका संबन्ध धर्म से नहीं बल्कि मनुष्य की मूढ़ता एवं गलत समझदारी से है। यदि कोई व्यक्ति इसकी अनुपयुक्तता को अपनी विवेक बुद्धि से समझ जाए तो इस समस्या को उखाड़ देना बहुत ही आसान सिद्ध होगा। किसी के बहकावे में आकर एक-दूसरे के क़त्ल करने के लिए मज़बूर जन स्वार्थी लोगों के हाथों की कठपुतली बनकर दंगे-फसाद करते रहेंगे। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास से एक उदाहरण देखिए- "आज गीता का वही मुरली मनोहर भारत के हर हिन्दू को पुकार रहा है कि उठो और गंगा जमुना के पवित्र तट से इन म्लेच्छ मुसलमानों को हटा दो....

-हियाँ से हट के हमनी कहाँ जाए के पड़ी? पंडितजी का ऐलान सुनने के

1. भगवानदास मोरवाल - काला पहाड़, पृ. 403

बाद एक अधेड़ मुसलमान बफाती ने अपने हिन्दू लंगोटिया यार से पूछा।.... तब उसके बचपन के दोस्त कन्हैया ने कहा-अब जहाँ आराम मिले, चले जाओ। और फिर किशन भगवान का हुकुम है कि तुमको गंगा-जमुना के किनारे से हटाय दिया जाए, तो हटाना तो पड़ेगा... औ' जिन्ना साहब का पाकिस्तान तो बन ही रहा है... आराम की ज़िन्दगी काटे की खातिर उधर ही चला जा...।"[1] यही है सांप्रदायिकता। किस प्रकार अपने बचपन के दोस्त से इसका व्यवहार एकदम से बदल जाता है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा जाना ही सबसे बडी बात है। किन्तु जब अंधी धार्मिकता संसार के लोगों में छा जाती है तो इस प्रकार के नतीजे सामने आते हैं।

आज भी सांप्रदायिकता की लौ बुझे बिना तीव्र गति पा रही है। धर्म के नाम पर बँटते जा रहे देश को आज व्यवस्थित रखने के लिए एक स्वस्थ सोच की ज़रूरत है। जिस नीति को अंग्रेज़ों ने चलाया था, उसको नियंत्रित करने का समय बीत गया है। देश का हित अगर चाहते हैं तो हमें तत्काल ही इसको रोकने का कदम उठाना चाहिए। इसके लिए ज़रूरी है जनता को जागरूक करना। तभी भारत का चहुँमुखी विकास संभव होगा। सांप्रदायिक संकीर्णता से मुक्त भारत की कल्पना गाँधी जी ने की थी। उसको कर दिखाने का समय अब आगया है। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास का नायक नीलेश गोपालराम को गाँधी जी के खिलाफ कहते हुए सुनकर वह अपने आप को रोक नहीं पाता और कहता है - "हिन्दुस्तान में अनेक भेद-विभेद, जाति,

---

1. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 57

संप्रदाय आदि हैं। इस देश में वही विचार उपयोगी हो सकता है जो सबके दिलों को एकता के सूत्र में बाँधे।.... गुलामी, नकलचीपन, आरामतलबी, स्वार्थ, आलस्य, अस्पृश्यता, अहंकारपूर्ण शान-शौकत, दोमुँहे शहरीपन, अन्धविश्वास को छोडकर, हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि सभी धर्मो एवं जातियों के लोग मज़दूर, किसान, हरिजन, दलित, गरीब तथा अन्य सभी परिश्रम, परस्पर प्यार और सहयोग, समानता, इन्सानियत, स्वावलंबन के रास्ते पर चलकर उन्नति करें।"[1] यहीं है वह रास्ता जिसमें चलकर हमें एक नये भारत का सृजन करना है जिसमें कट्टर धार्मिकता या सांप्रदायिकता को नहीं बल्कि प्यार, भाईचारे की भावना को जागृत करना होगा। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में मोहनदास के विचार इस प्रकार है - "अपनी आज़ादी के लिए दूसरों की हत्या बर्बरता है। पहले यह बर्बरता आदमी-आदमी और जानवरों-जानवरों के बीच थी अब नस्लों-नस्लों के बीच है। समुदायों-समुदायों के बीच है। बर्बरता वहीं पनपती है जहाँ अन्ध-शक्ति और अमानवीय हृदय हो।"[2] बर्बरता पशु समान प्रकृति है। मानव को अपनी तर्क-बुद्धि का प्रयोग कर अहिंसात्मक रास्ते को अपनाने से ही सही विकास का पथ प्राप्त हो पाएगा।

5.4 राष्ट्रवाद बनाम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता जैसे शब्द आए दिन बहुत चर्चा में हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीयता की तीव्र भावना रखता है। 'राष्ट्र के

---

1. अमरकान्त - इन्हीं हथियारों से, पृ. 91
2. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 662

प्रति लगाव' का अर्थ देने वाला राष्ट्रीयता शब्द सकारात्मक दृष्टिकोण लेकर चलता है। 'हम' और 'हमारे' की भावना को जगाकर संपूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने का काम राष्ट्रीयता का है।

भारत देश संवैधानिक तौर पर धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। यहाँ की संस्कृति विविध जातियों, धर्मों तथा भाषाओं को समान अधिकार देने की पक्षधर है। किन्तु वर्तमान समय कट्टरता की भावना से ग्रस्त हो चुका है। भारत को केवल हिन्दुओं का राष्ट्र बनाने की नीति को चलायमान रखने के लिए आज कुछ तथाकथित वर्ग कोशिश कर रहे हैं। हिन्दुत्व पर आधारित राष्ट्रीयता का निर्माण इनका लक्ष्य है। आज देश सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की समस्या का सामना कर रहा है।

गाँधी जी के लिए देश प्रेम और मानव प्रेम में कोई अन्तर नहीं है। उन्होंने कहा है कि 'मैं देशप्रेमी हूँ क्योंकि मैं मानव प्रेमी हूँ।' असल में देशप्रेम को मानव प्रेम के रूप में संबोधित करते हुए गाँधी जी ने अपनी राष्ट्रीय सोच को अर्थ दिया है। हिन्दू व मुसलमानों को गाँधी ने धर्म के आधार पर नहीं बल्कि मनुष्य के नज़रिए से देखा। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में जब गाँधी जी से यह पूछा गया कि मुसलमानों के आगमन के पश्चात भारत एक राष्ट्र रहा या नहीं? इस पर जवाब देते हुए उन्होंने कहा कि - "बाहर से आनेवाले लोग राष्ट्रीयता को नहीं मिटाते वे राष्ट्र में घुलमिल जाते हैं। जब ऐसा होता है तभी कोई राष्ट्र कहलाता है। यदि हिन्दू ऐसा मानें कि सारे भारत में हिन्दू

ही हिन्दू रहें तो स्वप्न होगा। मुसलमान ऐसा सोचेंगे तो वह निरर्थक सपने के अलावा कुछ नहीं। एक राष्ट्र का अर्थ एक धर्म नहीं।"[1] सर्वधर्म समभाव की भावना से गाँधी जी ने असल में हिन्दू-मुसलमानों की एकता ही चाही। "हिन्दू मुस्लिम एकता की जैसी पक्षधरता महात्मा गाँधी द्वारा की गयी, उसकी दूसरी मिसाल भारतीय राजनीति में नहीं मिलती, लेकिन गाँधी की बात का कोई भी असर न तो ब्रिटिश सत्ता पर हुआ और न ही मुस्लिम समाज पर। मुस्लिम समाज के बहुमत ने गाँधी द्वारा प्रतिपादित एकात्मवाद व 'सर्वधर्म समभाव' को एक तरह से ठुकरा दिया। गाँधी कहते रहे कि देश का विभाजन न हो, लेकिन मोहम्मद अली जिन्ना ने मजहबी आधार पर देश का विभाजन करवा दिया।"[2] दो सन्दर्भों में गाँधी जी की इस एकता वाली बात को लिया जा सकता है। पहला सन्दर्भ विभाजन का है, जहाँ इनकी बातों का निषेध कर के पाकिस्तान बनाया गया, वह भी शुद्ध रूप से धर्म के आधार पर। इस प्रकार मुसलमानों ने अपना मज़हबी रंग दिखा दिया कि उनके लिए मज़हब ही सब कुछ है। दूसरा सन्दर्भ है गाँधी की हत्या से संबन्धित। गाँधी जी ने हिन्दू व मुसलमान को 'चिडिया के दो पंख' के रूप में बताया था। उनमें एकता लाने के लिए बहुत से प्रयास किए थे। अन्त में हिन्दू संघ ने मुसलमानों की तरफदारी करने के जुर्म में गाँधीजी को मिटा दिया। 'ज़मीन' उपन्यास में गाँधी की हत्या की खबर सुनकर संघवाले पूरे गाँव में मिठायी बाँटते हैं। उपन्यास का पात्र पीपन के शब्द यों है - "बन्धुओं, आज का दिन हमारे लिए परम सौभाग्य का दिन है। आप को जानकर हर्ष होगा कि कल

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 749
2. नरेन्द्र मोहन - आज की राजनीति और भ्रष्टाचार, पृ. 75

शाम एक वीर योद्धा-नाथूराम गोडसे ने हिन्दू जाति के सबसे बडे शत्रु गाँधी को उसके दुष्कर्मों का उचित दण्ड दे दिया। उसने देशद्रोही गाँधी को मारकर यमपुरी पहुँचा दिया है।"[1] राष्ट्रीयता जब धार्मिक राष्ट्रवाद में तब्दील हो जाती है तब व्यक्ति में मज़हब सब कुछ हो जाता है। आज राष्ट्र में जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं, देश के चारों ओर जो कटुता बढती चली जा रही है उसका समाधान ढूँढना ज़रूरी एवं आवश्यक होता जा रहा है। राष्ट्रीयता का होना कोई गलत बात नहीं है किन्तु जब यह राष्ट्रीयता धर्म, मज़हब के आधार संपूर्ण राष्ट्र को कुचलने की नीति रचती है तो यह संपूर्ण राष्ट्रीय अस्मिता के लिए खतरनाक साबित होती है। यह कलह वास्तव में उस राजनीतिक कूटनीति का फल है जिसने बहुमूल्य संस्कृति को मज़हब अथवा जिसको प्रत्येक की उपासन पद्धति के साथ जोड़ दिया। राष्ट्रीयता ने धर्म के साथ जुडकर समाज को इतना संकीर्ण एवं विकृत कर दिया कि इस विपत्ति से निकलना ज़रूरी हो गया है।

'कलिकथाः वाया बाइपास' में अमोलक और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में दीक्षित लक्ष्मीचंद का सन्दर्भ देखिए, जहाँ लक्ष्मीचन्द अमोलक से कहता है - "गाँधी तो असल में मुल्ला गाँधी है। तुम्हें पता है, उसका असली नाम मोहम्मद करीम गाँधी है - मोहनदास करम चंद नहीं। तभी तो वह हमेशा मुसलमानों के पक्ष की बात करता है...।"[2] इसके ज़रिए राष्ट्रीयता के संदर्भ में आनेवाले गलत इरादों को परखा जा सकता है। गाँधी ने हमेशा से ही

1. भीमसेन त्यागी - ज़मीन, पृ. 111
2. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 152-153

धर्मनिरपेक्ष भारत का ही समर्थन किया। किन्तु उनकी सोच को संघ वाले किस प्रकार परिवर्तित कर के लोगों में धार्मिक वैमनस्य पैदा करते हैं का उदाहरण है उपन्यास का पात्र लक्ष्मी चन्द। धर्म जब सिर पर चढ़ जाता है तो उन लोगों के लिए बाकि सब कुछ व्यर्थ हो जाते हैं। हिन्दू धर्म को राष्ट्र धर्म बनाकर कट्टर राष्ट्रवाद को कायम करने की सोच ने ही भारत को सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक रूप से दूषित कर दिया है।

राजनीति में मज़हबी सोच की शुरुआत अंग्रेज़ों ने की है। उनकी कूटनीति से विभिन्न धर्म संप्रदायों के बीच के लोगों में एकता का स्खलन हो गया। जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दू और मुसलमानों के बीच में मज़हबी कट्टरता ने जन्म लिया। इसी घटिया सोच का फल है पाकिस्तान। पाकिस्तान का बनना सदियों बाद भी मज़हबी सोच, सांप्रदायिकता आदि के मिलेजुले काले कारनामों का इतिहास व्यक्त करता रहेगा। 'कलि कथाः वाया बाइपास' उपन्यास में दो धर्मों के बीच के इसी मुठभेड़ का चित्रण किया गया है। जिसमें यह दिखाया गया है किस प्रकार प्रत्येक धर्म अपने अपने धर्म के लोगों को दूसरे के विरुद्ध लड़ने की सीख दे रहे हैं। उपन्यास बताता है कि "पिछले कुछ सालों से हिन्दूमहासभा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसी सांप्रदायिक संस्थाएँ लाठी बाँजना, अखाडे बाज़ी और लड़ने की शैलियों की शिक्षा को प्रोत्साहित कर रही थीं। गली-मुहल्लों-पाड़ों में 'तरुण व्यायाम समिति', 'आर्य वीर दल', 'हिन्दू शक्ति संघ' जैसी संस्थाएँ हिन्दुओं को तैयार कर रही थीं।"[1] यह शाक्तिकरण वास्तव में उनके विरुद्ध था जिनको ये

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ.165

म्लेच्छ मानते हैं। इन्हीं घटनाओं ने हिन्दू-मुसलमानों के बीच धार्मिक वैमनस्य को बढाया। दोनों ही एक दूसरे के खून के दुश्मन बन गये। स्थिति यह होगयी कि ये अपने अपने राष्ट्र की माँग करने लगे।

इन्सान को इन्सान के रूप में नहीं बल्कि जात के रूप में देखने की निम्न मनोवृत्ति का उदय हो गया। जिसने संपूर्ण मानव समाज को ही पतित कर दिया। 'कितने पाकिस्तान' में न्याय की अदालत में अदीब से जब शिबली नोमानी कहता है कि -"मैं मुसलमान हूँ!"[1] इसके चलते जब अदालत में शोर मच जाता है और लोगों को यह लगता है कि अदीब की भाषा उनके मज़हब की तौहीन कर रहे हैं, तब अदीब चीख कर कहता है - "खामोश! कोई मज़हब इन्सान से ऊपर नहीं है... पहले इंसान पैदा हुआ, फिर मज़हब!"[2] अदीब ने जो कहा सही कहा। यही सोच, इनसान का होना आज नष्ट हो गया है। हमारे समय में इनसान-इनसान बनकर नहीं बल्कि मज़हब का प्रतीक बनकर खडा है। सारे लोग अपने अपने राष्ट्र बनाने में मशगुल हैं। पाकिस्तान तो बन गया है मुसलमानों के लिए, अभी कुछ बचा है तो हिन्दू राष्ट्र। विशुद्ध हिन्दू राष्ट्र की परिकल्पना करने और उसको चरितार्थ करने में लगे है आज के हिन्दु नेता लोग। हिन्दू धर्म को राष्ट्र धर्म बनाने के लिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की भागीदारी को भीमसेन त्यागी के उपन्यास 'ज़मीन' में व्यक्त किया गया है। गाँव में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखा खोलने के उद्देश्य के संबन्ध में नारायण जी शिन्दे इस प्रकार अपना

---

1. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 171
2. वही

वक्तव्य देता है कि - "बन्धुओं, पवित्र भारतभूमि का विभाजन, धर्म के नाम पर हुआ है। पाकिस्तान मुसलमानों का देश है तो हिन्दुस्थान हिन्दुओं का क्यों नहीं? पाकिस्तान में आज भी हिन्दुओं पर अत्याचार किए जा रहे हैं। माँ-बहनों की इज्जत लूटी जा रही है लाखों हिन्दुओं को भेड़-बकरियों की तरह मारा जा रहा है या वहाँ से भागने के लिए विवश किया जा रहा है। पाकिस्तान से भारत आये लाखों शरणार्थी सड़कों पर मारे मारे फिर रहे हैं... यदि पाकिस्तान में हिन्दू नहीं रह सकते तो हिन्दुस्थान में मुसलमान भी नहीं रह सकते। इन सबको यहाँ से जाना होगा। और नहीं जाएँगे तो इसके साथ वही व्यवहार होगा, जो पाकिस्तान में हिन्दुओं के साथ हो रहा है!"[1] इस वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू संगठन कितने कट्टर हो गये हैं, किस प्रकार ये मासूम जनता को धर्म का अंधा पाठ पढाकर भारत को हिन्दू राष्ट्र के रूप में बदलने का प्रयास कर रहे हैं। 'निर्वासन' उपन्यास में हिन्दू धर्म को बिक्री का साधन बनाकर पर्यटकों को बेचने की नीति बनानेवाला सरकारी अधिकारी कहता है - "आखिर धर्म से ज़्यादा लोकलुभावन और शक्तिशाली दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता है। देशों की सीमाएँ, भाषाएँ, ध्वज, क़िले, कानून और सभ्यताएँ मिट सकती हैं किंतु धर्म इन्सानों के ख़त्म हो जाने के बाद भी बचा रहता है। स्वयं अपने देश में देखिए, कितनी विदेशी सत्ताएं अपने अपने धर्म लेकर यहाँ सत्ता पर क़ाबिज़ रहीं। उन्होंने राष्ट्रीय ध्वज, मुद्राएं, कानून, सेनाएँ, कलाएँ सब की सब बदल डालीं, लेकिन उनके न चाहने के बावजूद हिन्दू धर्म अडिग रहा है।"[2] भारत को हिन्दुत्ववादी

---

1. भीमसेन त्यागी - ज़मीन, पृ. 83
2. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 26

अंगोछा पहनाने की सरकारी कूटनीति का दर्शन प्रस्तुत वाक्यांश के माध्यम से देखा जा सकता है।

भारत को भगवा रंग देकर, उसको पूर्ण रूप से हिन्दुत्व का रंग चढाने की कोशिश हो रही है। इतना ही नहीं बल्कि वर्तमान में हिन्दुत्ववादी भारत में मौजूद बुद्ध, जैन, पारसी यहाँ तक की पुरातन संस्कृति के द्योतक वर्ग आदिवासियों को भी हिन्दू का दर्जा देकर अपने संख्या बल को और दोगुना करके हिन्दू राष्ट्र निर्माण का सपना लेकर बढ़ रहे हैं। यही नहीं इन लोगों ने उस महापुरुष महात्मा गाँधी को भी अपना संबन्धी बना लिया है जिसने धर्मरहित संपूर्ण मानव सामाज को एक सूत्र में बाँधने का जीवन भर प्रयास किया था। उनको शुद्ध आर्य धर्म, सनातनी धर्म के प्रचारक एवं समर्थक बनाकर हिन्दू पुनर्स्थापन के समर्थक का रूप दे दिया गया है। उन्होंने आदर्श राम राज्य को अपने राम और राम मन्दिर से जोड दिया है। 'निन्यानवे' उपन्यास के एक प्रसंग में हिन्दू राष्ट्र निर्माण के लिए प्रयासरत 'हरि' नाम के नेता की गाडी में "एक ओर ओम लिखा था, दूसरी और एक मारुती की तस्वीर बनी थी और बीच में विराट राम-मंदिर था। यह वही राम-मंदिर था जो अभी नहीं था, मगर जिसे होना था-जिसे बाबरी मस्जिद की जगह होना था जहाँ राम कौशल्या मैय्या की कोख से पैदा हुए थे! राम मंदिर के नए स्टिकर के नीचे पुराने इक्कीसवीं सदी का स्टिकर लगा था। क्या राम-मंदिर इक्कीसवीं सदी के रास्ते में था जहाँ हरि की गाड़ी दौड़ी जा रही थी?"[1] यह

1. रवीन्द्र वर्मा - निन्यानवे, पृ. 179

भारत को भगवा रंग देने का प्रयास, भारत से 'हिन्दु' स्थान बनाने की तरफ राष्ट्रवादियों की चाल भारत को धर्मनिरपेक्ष से धार्मिक राष्ट्र बनाने की साजिश है।

धर्म सापेक्ष संस्कृति के निर्माण के लिए 'राम' शब्द को भी हिन्दुत्व वादी भावबोध से देखा जाना शुरु कर दिया गया है। 'राम' राज्य का प्रयोग जितना गाँधी जी ने किया होगा शायद ही किसी और ने किया हो। 'राम' शब्द में बहुत ही गहराई छुपी हुई है। राम शब्द का प्रयोग 'राम राम' और 'जयराम जी की' आदि में भाईचारे और आदर व्यक्त करने के लिए किया जाता है। भारत में 'राम' को भगवान मानकर पूजा जाता है। 'कलि कथाः वाया बाइपास' उपन्यास में किशोर बाबू 16 अगस्त 1946 का दिन याद करता है जब सांप्रदायिक उन्माद फूट पड़ा था। 'अल्लाह-हो-अकबर', 'लड़कर लेंगे पाकिस्तान' के नारे गली गली में गूँज रहा था। "पूरा दिन औरतों का राम-राम करते.... गुज़रा।"[1] उन के लिए 'राम' शब्द उम्मीद है, आश्रय है। 'राम' शब्द वास्तव में खुदा, भगवान के लिए प्रयुक्त किया जाता है। किन्तु नब्बे के दशक तक आते आते इस शब्द का प्रयोग हिन्दू-मुसलमानों के बीच की दूरी को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त करने लगे। 'घास का पुल' उपन्यास में नन्दू अपनी अम्मा से कहता है कि किसी पहाड़ी मन्दिर में बम-विस्फोट की अफ़वाह फैली थी। लोग घबराकर एक-दूसरे को धक्का देकर रौंदते हुए भागे। लाशों का ढेर रास्ते पर पड़ा था। तब अम्मा ने कहा

---

1. अलका सरावगी - कलि कथाः वाया बाइपास, पृ. 168

"कलियुग है, बेटा, अम्मा ने आह भरी बस, रामजी का ही सहारा है।

'इसी सहारे का सहारा लेकर दिल्ली की गद्दी मिल जाती है', नन्दू बुदबुदाया।"[1] धार्मिक रूढ़िवादिता के प्रवर्तक आम जनता के मन में बसे राम को अपने स्वार्थपूर्ति के लिए धार्मिक एजन्डे के रूप में उपयोग करता है।

गाँधी जी के लिए राम-नाम सब कुछ था। किन्तु उन्होंने राम' को कभी भी राष्ट्रीय प्रतिमान का द्योतक नहीं समझा। उन के लिए 'राम' भगवान थे ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कबीर का राम। अर्थात् खुदा, अल्लाह, राम सब का आधार एक ही था। वही अनन्त सत्य का रास्ता है। किन्तु राष्ट्रवादियों ने राम को हिन्दू धर्म के राष्ट्रीय देवता के रूप में परिवर्तित कर दिया। 'निन्यानवे' उपन्यास में मुहल्ले की स्त्रियाँ उल्फत से इस प्रकार कहती हैं कि - "...मंदिर जरूर बनना चाहिए। भला अयोध्या में ही राम की जन्मभूमि पर मंदिर न बनेगा तो कहाँ बनेगा बहना बताओ! और अगर रामजन्म भूमि पर ही मंदिर नहीं बनेगा कहाँ बनेगा बहना बताओ! और अगर राम-जन्मभूमि पर ही मंदिर नहीं बना तो भारत भूमी पर बाकि मंदिरों का क्या मतलब?"[2] यह सब कुछ धार्मिक उन्माद के कारण है। जब राजनीति आम जनता के साथ अपनी कार्य सिद्धि हेतु धार्मिक आधार पर चाल चलाती है तब जनता उन्माद में आकर हिंसा का रास्ता चुन लेती है। यहाँ मन्दिर की अनिवार्यता हिन्दुओं के अस्तित्व का प्रश्न बन जाता है। 'राम' को राष्ट्रीय प्रतिमान के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। हिन्दू राष्ट्रवादी ताकतों के

1. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 102
2. रवीन्द्र वर्मा - निन्यानवे, पृ. 188

लिए 'राम' शब्द हथियार बन गया है जिसको वे कहीं भी किसी पर भी चला सकते हैं।

'घास का पुल' उपन्यास में जब नन्दू की बातचीत रमेश से होती है तब "रमेश ने आगमी लोक सभा चुनाव से बात शुरु की। उसने बताया कि चुनाव पास हैं, संघ परिवार अपने हथियार पैने कर रहा है। रैली का मुख्य नारा था, 'राम-मन्दिर बनाओ। रामसेतु बचाओ।' मंच से घोषणा हुई कि पहले राम-जन्मभूमि बचाई गई थी, अब राम कर्मभूमि बचाने का समय आ गया है। एक नेता ने कहा कि केन्द्र में जो सरकार है वह राम को राम नहीं मानती - वह राम को चुटकुला मानती है। इस बार 'जैश्रीराम' के खूब नारे लगे।"[1] संघ परिवार के लिए बाबरी मस्जिद के स्थान पर राम मन्दिर बनाना राष्ट्रीय गौरव का सवाल है। राम को राजनीति में एक मोहरे के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। हिन्दुओं की सार्वजनिक आवश्यकता के रूप में 'राम मन्दिर' को चित्रित करने की इस प्रवृत्ति में हिन्दुत्ववादी संगठनों का हाथ कुछ कम नहीं है। जिससे देश में एक प्रकार की विकराल स्थिति जन्म ले रही है। जन मानस की सामान्य चेतना में बसे राम को नया रूप देकर राष्ट्रवादियों ने अपना हथियार बना लिया। हिन्दुओं के रक्षक बनकर कट्टर हिन्दुत्ववादी बननेवाले संगठनों तथा धार्मिक राष्ट्रवादियों ने देश की धर्म निरपेक्षता को तहस नहस कर दिया है। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में कमलेश्वर ने रघुवीर अर्थात् राम को संस्कृति का प्रतिरूप बताया है - "धर्म परिवर्तन के कारण ज़रूरत पड़ी तो मन्दिर की दीवार के सहारे ही हमने

---

1. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 202

मस्जिद खड़ी कर ली है। आज भी मुसलमान बहन अपनी सन्तान की शादी के समय भइया को भात लाने के लिए बुलाने जाती है तो यही लोकगीत गाती है - 'भैया रघुवीर भात हमारो लइयो....।"[1] यही वास्तव में धर्मनिरपेक्षता है। मुसलमान बहन के लिए रघुवीर शब्द उसकी अपनी संस्कृति का शब्द है। किन्तु आज इस शब्द का दुरुपयोग विधर्मियों द्वारा किया जा रहा है। मन्दिर-मस्ज़िद को एक ही दीवार के सहारे खड़ा करने की सोच को आगे लाने की ज़रूरत है।

अपने-अपने धर्म को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए आज धर्म परिवर्तन कराने पर भी बल दिया जा रहा है। मानव को धर्म के आधार बाँटना, अपनी तादाद को आगे बढ़ाना आदि धार्मिक कट्टरता का ही भीषण तंत्र है। गाँधी जी धर्म परिवर्तन के सख्त खिलाफ थे। उनके अनुसार सारे धर्म मनुष्य को विकास एवं उद्धार की सीख प्रदान करते हैं। इसलिए जो जिसका धर्म है उसमें रहकर अपना कर्म करो-का उपदेश उन्होंने दिया था। किन्तु इस सीख को किसी ने अपनाया नहीं । वास्तव में सारे धर्मों में समान बातें कही गयी हैं। प्रत्येक के लिए अपना धर्म प्रिय है। फिर धर्म परिवर्तन का क्या फायदा, जब संसार के सभी धर्मों का निचोड एक हो। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में एक प्रसंग उल्लेखनीय है जब मि. बेकर द्वारा गाँधी जी को अपना धर्म परिवर्तन करने का सुझाव देता है। इस संबन्ध में गाँधी जी कहते हैं- "क्या हम धर्म किराये के घर की तरह बदल सकते हैं? एक घर पसन्द न आने पर ज़्यादा किराया देकर दूसरा मनपसन्द घर लेने जितना ही आसान धर्म

1. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 182

बदलना भी है? किसी भी व्यक्ति या समाज की जड़ उसकी आस्था में है, आस्था का संबन्ध धर्म से ज़्यादा होता है। धर्म कोई भी हो और कैसा भी हो, धर्म समाज और व्यक्ति की आस्थाओं के बीच निरन्तर होता प्रयोग और परिष्कार है।"[1] उनका धर्म परिवर्तन संबन्धी विचार से यह बात सिद्ध हो जाती है कि धर्म चाहे कोई भी हो लेकिन उसमें अपनी आस्था का होना ज़रूरी है। तभी मानव समाज पूर्ण रूप से विकसित होगा। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में अदीब और सलमा मज़हब बदलने की बात करते हैं तथा उनके वार्तालाप के बीच धर्म की सच्चाई का उद्‌घाटन होता है। सलमा अदीब से पूछती है कि - "आप तो फिलहाल मुसलमान हैं... आप मरने के बाद ज़िन्दगी को कैसे मंजूर कर सकते हैं, इसलिए आप वहीं तक जीने की बात करते हैं!

- लेकिन तुम तो अब हिन्दू हो, क्या तुम पुनर्जन्म में विश्वास कर सकती हो?
- विश्वास करुँ या न करूँ... पर पुनर्जन्म में विश्वास करना अच्छा लगता है!
- ओह!.... ओह सलमा.... तब तुम कुछ और हो! मज़हब से ऊपर... नश्वर मनुष्य की शाश्वतता में यकीन करनेवाली एक फर्द! एक शर्त!"[2]

मनुष्य की सच्चाई यही है कि वह मनुष्य है। सब कुछ चाहे वह धर्म ही क्यों न हो मानव के परिष्कार के लिए ही बनाया गया है। इसलिए किसी का धर्म चाहे कुछ भी हो बस उस व्यक्ति का उसमें निष्ठा होना चाहिए, उसको संकीर्ण न बनाकर उसको अपने उद्धार का पक्षपाती बनाना है। इसलिए सभी धर्मों के बीच मित्रता का भाव रचकर समभावना के साथ चलना होगा। अपने धर्म

---

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 195
2. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 132

को श्रेष्ठ और दूसरे के धर्म को नीच दिखाने की व्यर्थ कोशिश समाज में एकता नहीं बल्कि संघर्ष पैदा करती है। अतः परिवर्तन अपने दूषित चरित्र का करें। आत्मशुद्धि और आत्मसाक्षात्कार से समाज और उसके ज़रिए राष्ट्र का उन्नयन संभव हो पाएगा। यही सीख गाँधी जी ने हमें दी थी। जो एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के लिए अति आवश्यक है।

'आवां' उपन्यास में सुनंदा धर्म परिवर्तन के खिलाफ अपना सख्त विरोध व्यक्त करती है। विवाह से पूर्व सुनंदा गर्भवती बन जाती है। उसका प्रेमी सुहैल और उसके परिवारवाले सुनंदा का धर्म परिवर्तन करके हिन्दू से मुसलमान बनाना चाहते हैं। यही ब्याह के लिए उनका शर्त था। साहसी व्यक्तित्व की धनी सुनंदा अपना विरोध प्रकट करती हुई नमिता से प्रश्न करती है कि - "मैं औरों की सुख-संतुष्टि के लिए अपने सच को घोंट दूं या अपने स्व के संरक्षण के लिए उसके उगने को देह धरने दूं, उसे एक पूरी की पूरी काया ग्रहण करने दूं.... सुहैल ने प्रेम करने के समय तो कोई शर्त नहीं रखी? ब्याह करना होगा तो उससे नहीं, इस्लाम से करना होगा... या उसे हिन्दुत्व से?"[1] प्रेम करते वक्त दोनों प्रेमी जन अपने आप में खोये हुए रहते हैं, वह भावना उन के लिए वैयक्तिक रहती है। किन्तु ब्याह के वक्त मामला सामाजिक हो जाता है। जाति, धर्म, संपत्ति आदि के बारे में पूछा जाता है। धर्म परिवर्तन करके दूसरी जाति को अपनाने के लिए सुनंदा तैयार नहीं होती। प्रेम ही सब कुछ का आधार होना चाहिए। लेकिन समाज में प्रेम से ज़्यादा धर्म को मान्यता दी गई है। धर्म ने मनुष्य को अंधा बना दिया है। वह

---

1. चित्रा मुद्गल - आवां, पृ. 112

सांप्रदायिक वैमनस्य पैदा करके समाज में धार्मिक अस्थिरता कायम कर देता है। सुनंदा समाज के घिनौने सांप्रदायिक सोच के खिलाफ लड़नेवाली एक सशक्त एवं प्रभावशाली पात्र है, जो अपने होने की सच्चाई तथा अपने अस्तित्व केलिए लड़ती है।

अगली समस्या है धार्मिक आतंकवाद का। आतंकी हमलों ने पूरे विश्व को जकड़ लिया है। यहीं जो आतंक विश्व भर में फैला हुआ है उसका एक बड़ा हिस्सा धार्मिक आतंकवाद का है। समाज में आतंक फैलाकर, डर की भावना को जगाकर समाज को अपंग बनाना ही इसका लक्ष्य है। धार्मिक आतंकवाद समाज में अपना वर्चस्व चाहता है। हिंसा इसका आधार है। यह देश विशेष की सीमाओं में रहकर धार्मिक मान्यताओं के आधार पर आम जनता को नियंत्रित करने और अन्य धर्मों को मननेवालों को उत्पीड़ित करने का काम करता है। 'घास का पुल' उपन्यास में धार्मिक आतंकवाद का चित्रण किया गया है। उपन्यास में नन्दलाल उर्फ नन्दु की बेटी प्रिया अपने साथ मॉल में काम करनेवाले असलम से प्यार करती है। नन्दु हिन्दू-मुसलमान में कोई भेदभाव नहीं देखता है। इसलिए शादी के लिए मज़ूरी दे देता है। असलम और प्रिया की शादी अदालत में मुकदमे की तरह संपन्न हो जाती है। एक रोज़ असलम को मॉल में विस्फोटक प्राप्त होने के जुर्म में पकडा जाता है। जब कि असलम का इस पूरी घटना से कोई संबन्ध नहीं है। जब असलम और प्रिया एक साथ मॉल के बाहर पहुँचते हैं तो उन्होंने देखा कि सड़क पर एक जीप और वैन खड़ी है-"असलम तुम लोग यहाँ आओ...

उनका सहकर्मी माथुर उन्हें हाथ के इशारे से बुला रहा था। वे भीड़ की तरफ चले। आगे बढ़कर उन्होंने देखा कि मॉल के सारे कर्मचारी एक पंक्ति में खड़े हैं - वह पंक्ति दीवार तक पीछे चली गयी थी। उस पंक्ति के सामने एक छोटी-सी पंक्ति थी जिसमें दसेक लोग थे। जब वे पंक्तियों के क़रीब पहुँचे तो एक अफसर-से लगते आदमी ने उनका नाम पूछा। प्रिया को लंबी कतार में खड़े होने को कहा गया और असलम को छोटी कतार में। छोटी कतार में गफ़ूर और गफ्फार नज़र आये। उसे बताया गया कि छोटी कतार में ग्यारह लोग मुसलमान थे। जब उसने पूछा कि माजरा क्या है, तो गफ़ूर ने कहा कि सुबह यहाँ एक साइकिल से कुछ विस्फोटक बरामद हुए थे।"[1] यहाँ धर्म के नाम पर इन्सान के भीतर का कलुष देखा जा सकता है। मुसलमान होने की वजह से कोई आतंकवादी नहीं हो जाता है। समाज में मुसलमानों के प्रति घृणा पैदा की जाने की प्रवृत्ति आज लक्षित है। कुछ लोगों की धार्मिक कट्टरता के कारण बाकि सभी को आतंकवादी घोषित किया जा रहा है। असलम इसी का शिकार हो जाता है। जो बिना कुछ किए ही सांप्रदायिक कूटनीति का शिकार बन जाता है।

आतंकी माहौल का एक मुख्य कारण धर्मान्धता है। धर्म के नाम पर जब गलत सीख दिया जाता है तब आदमी अपने धर्म के प्रति इतना धर्मान्ध बन जाता है कि समाज को छोड़कर उसकी आँखों में धर्म की पट्टी पड जाती है। धर्म एवं उसके अनुयायियों में अंधापन आ जाता है। 'कितने पाकिस्तान' में उपन्यासकार ने इस ओर इशारा किया है- "वहाँ तो मुसलमान

---

1. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 167

ही मुसलमान से लड़ रहा है, तो शिबली मेमानी साहब ! यह लड़ाई धर्म की नहीं, धर्म और धर्मान्धता की है। इस्लाम जैसा धर्म ही खुद अपनी धर्मान्धता से लड़ रहा है ! और शायद दुनिया के हर धर्म को अपनी धर्मान्धता से लड़ना और उसे जीतना पड़ेगा !... आप अपने धर्मान्धतावादी तर्कों से पाकिस्तानों में से और पाकिस्तान बनाएँगे, पर धर्मवादी दुनिया अपने धार्मिक विश्वासों को जीवित रखते हुए एक मनुष्यवादी धर्म के संविधान की परिकल्पना करेगी.. यह किसी एक धर्म की दुनिया नहीं होगी, यह बहुधर्मी लोगों की एक धार्मिक दुनिया होगी ! अपने-अपने धर्म की धर्मान्धता से लड़ते रहनेवाले धर्म-परसत लोगों की दुनिया !"[1] इस प्रकार की सोच की आज ज़रूरत है। सभी धर्मों को एक समान देखने की नज़रिये को बढावा देना होगा। तभी देश दुनिया में आतंकी माहौल के बदले शान्ति का माहौल कायम होगा। आज देश के प्रत्येक क्षेत्र में धार्मिक आतंकवाद की राजनीति करने वाले संगठन मिल जाएँगे। इसका आधार हिंसा है। हिन्दूवादी चाहते हैं कि यह देश केवल हिन्दुओं का ही रह जाए। मुसलमान सोचते है कि यह देश सिर्फ और सिर्फ उनका है। इस भावना को मिटाकर मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा जाना चाहिए। मानव द्वारा बनाए गए धर्म आज उसके खिलाफ ही लड़ रहा है। इस संकटमय स्थिति से उभरने से ही मानवता की रक्षा संभव है नहीं तो धर्म के नाम पर एक दूसरे को मारकर, काटकर मानव की संस्कृति नष्ट हो जाएगी।

5.5 भेदभाव का संकट

सभी मानव एक समान है। समानता का अधिकार प्रत्येक मानव का

1. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 200

मौलिक हक है। आज तक किसी भी देश में, किसी भी सरकार ने अथवा किसी भी शासन ने संपूर्ण रूप से समानता क अधिकार दिला पाने में सफलता प्राप्त नहीं की है। इक्कीसवीं सदी में पहुँचने पर भी हमारा समाज अनगिनत वर्गों में बँटा हुआ है। जातिवाद की समस्या आज भी उतनी ही सशक्त बनकर विद्यमान है जितना वह पहले थी। जातिवाद को बढावा देने में धार्मिक संगठनों एवं संस्थाओं का हाथ बहुत बड़ा है। प्रत्येक अपनी जाति को ऊँचा दिखाने की कोशिश कर रहा है। पंडित, मुल्ला, पादरी लोग इनसानों में जात रूपी विष को फैलाकर समाज में तनाव एवं अस्थिरता उत्पन्न कर रहे हैं। अपने आप को आधुनिक कही जा रही, नयी पीढी भी इनके जाल में आसानी से फँस रही है। 'काला पहाड़' उपन्यास में देखिए किस प्रकार इस्लाम धर्म को मज़हबी रंग दिया जा रहा है। "चौधरी साहब, हम चाहते हैं कि मेवात के मुसलमानों को इस्लाम की तालीम दी जाए... हमने पूरे इलाके में घूम कर देखा है और यह गौर किया है कि यहाँ के मुसलमानों में मज़हब में कोई खास दिलचस्पी नहीं है...। जमात के प्रमुख ने विशुद्ध उर्दू में बोलना शुरु किया।"[1] इससे जाहिर होता है कि किस प्रकार जात आदमी को अंधा बना देता है और वह कैसे दूसरों को शत्रू बना देता है। सांप्रदायिक शक्तियाँ जात-मज़हब को केन्द्र में लाकर आदमी पर अपना हुकुम चलाती हैं। मज़हब की सीख को, उसकी कट्टर प्रकृति को प्रत्येक के दिल में उतारकर ये लोग अपना अधिकार स्थापित करते हैं। बाद में इनको अपनी इच्छा के अनुसार मोड देंगे।

---

1. भगवानदास मोरवाल - काला पहाड़, पृ. 79

धर्म एवं जाति के इस होड़ में भला हिन्दू कैसे पीछे रह सकता है। 'जमीन' उपन्यास में जातीयता का उदाहरण देखिए, नारायण भाई कहता है - "शाखा में व्यायाम, खेलकूद और शारीरिक शिक्षा दी जाएगी। जब तक हिन्दुओं का स्वास्थ्य-अच्छा नहीं होगा, तब तक वे शत्रु को कैसे पराजित कर सकेंगे! शाखा में लाठी चालन भी सिखाया जाएगा। लाठी एक प्रभावशाली शस्त्र है। इससे आप आत्म-रक्षा कर सकता है और शत्रु पर प्रहार भी कर सकते हैं।"[1] इस प्रकार देश को धर्म, जाति, मज़हब के नाम पर बाँटकर लोगों में एक दूसरे के प्रति भेदभाव पैदा कर आपसी वैमनस्य की भावना जगाकर लड़ने के लिए छोड़ देना आज आम बात हो गयी है। इसका साथ देने वाले लोग भी बहुत मिलेंगे। किन्तु इस स्थिति से बचने के लिए, उसका राह दिखाने वाले बहुत ही कम मिलेंगे। गाँधी जी ने बहुत पहले ही चेतावनी दी थी कि इस धर्म के ढकोसले से बचके रहो। इसलिए गाँधी जी ने धर्म को मानवता से जोडकर देखा। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास का यह सन्दर्भ धर्म और धर्मान्धता का अन्तर समझाता है - "यह लड़ाई धर्म की नहीं, धर्म और धर्मान्धता की है। इस्लाम जैसा धर्म ही खुद अपना धर्मान्धता से लड़ रहा है! और शायद दुनिया के हर धर्म को अपनी धर्मान्धता से लड़ना और उसे जीतना पड़ेगा...।"[2] तभी मानव धर्म का निर्माण होगा। मनुष्यवादी धर्म ही सबसे बडा धर्म है। जाति केवल उस संकीर्ण सोच की उत्पत्ति है जो मनुष्य को तबकों में बाँटती है।

---

1. भीमसेन त्यागी - ज़मीन, पृ. 81
2. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 200

मानव को मानव बनकर मिल जुलकर रहने के लिए धर्म का सही ज्ञान ज़रूरी है। जाति से परे, मानव का होना ही महत्व रखता है। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में सभी धर्मों के लोगों का आत्मीयता का दर्शन होता है। गाँधी जी द्वारा निर्मित टॉलस्टोय फार्म का दृश्य देखिए- "शुरु में तो सबने अपनी-अपनी जगह छोड़कर वहाँ आने में आनाकानी की। बाद में जब उन्हें फार्म का उद्देश्य बताया गया तो लोगों ने धीरे-धीरे आना शुरु किया। वहाँ की ज़िन्दगी के मुकाबले यहाँ की ज़िन्दगी कठिन थी पर खुली और आत्मीय थी। धीरे-धीरे उन्हें अच्छा लगने लगा था... गुजरात, मद्रास, आन्ध्र, बिहार आदि प्रदेशों के हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सभी वर्गों की वह पनाहगाह बन गयी थी.... सब मिलकर खाना बनाते, एक-दूसरे को खिलाते। सबके अपने सुख-दुःख थे, उन्हें आपस में बाँटते। कभी कभी झगड़ते भी। फिर भी एक हो जाते।"[1] गाँधी जी की संस्कृति समानता की संस्कृति है।

भेदभाव को नष्ट करने हेतु समानता की लड़ाई की आवश्यकता है। जाति को लेकर ही भेदभाव किया नहीं जाता। लिंग, वर्ण, रंग, भाषा आदि के आधार पर भी मनुष्यों को वर्गों में बाँटने की निन्दनीय प्रवृत्ति दुनिया भर में मौजूद है। यह समाज मनुष्य का है और संसार में सभी मनुष्य है ये सारी उक्तियाँ केवल पुस्तकीय बातें ही हैं। पृथ्वी को मनुष्य ने ही अनेक तबकों में बाँट रखा है। जितने वर्ण हैं उतने ही समाज है। काले, गोरे, साँवलों का समाज, विभिन्न जातियों का समाज, विविध भाषाई लोगों का समाज इस प्रकार अनेकों में बाँटा गया है। अपना वर्चस्व कायम रखने हेतु एक वर्ग

---

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 766

दूसरे वर्गों के प्रति घृणा एवं नफरत की भावना रखता है। इस समस्या को कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में दिखाया है - "सर! ये 39 लोग दक्षिण आफ्रीका के बोईपोतोंग इलाके से अभी अभी मर कर आपकी अदालत में हाज़िर हुए हैं! ये काले आफ्रीकी हैं जिन्हें गोरी चमड़ीवाली साउथ अफ्रीकी सरकार ने ही मरवाया है!"[1] सरकार जनता की होती है। लेकिन जब सरकार ही काले और गोरों में फर्क देखती है तो समानता कौन लाएगा।

'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में खुद गाँधी बनता मोहनदास इस भेदभाव से चिन्तित एवं परेशान दिखाई देते हैं। जब बचपन में वह 'उका' नामक छोटी जात के लड़के के साथ खेलता था तो उनकी बा उनको मना करती थी और कहती थी "उका अच्छा लड़का है, उससे मुझे कोई शिकायत नहीं, मैं अधर्म से डरती हूँ।"[2] किन्तु गाँधी जी उका के साथ खेलते थे, बाद में उनकी माँ बालटी भरकर उन पर पानी उँडेल देती थी। दक्षिण आफ्रीका में जाकर उनको भी इसी भेदभाव का शिकार होना पडता है। तब वे सोचते हैं - "यहाँ तो सब उका हैं, दादा अब्दुल्ला, वह खुद... वे सब जो भारत से आये हैं। ब्राह्मण है तो सिर्फ गौरे, उसका मन उद्विग्न हो उठा। भारत किस तरह यहाँ तक चला आया?"[3] मानव को मानव और धर्म को मानव धर्म के रूप में देखा जाना होगा। तभी समानता का अधिकार प्राप्त कर असमानताओं के घेरे को तोड़ा जा सकता है।

---

1. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 86-87
2. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 89
3. वही

5.6 अपसंस्कृतिकरण का दौर

संस्कृति का मतलब है मानव जाति को निम्न श्रेणी के पशुओं से भिन्न करने वाली संवेगात्मक शक्तियों, मानसिक प्रयासों तथा भौतिक व्यवहारों का विकास है। भारत जैसे धार्मिक विविधता और सहिष्णुता वाले देश में धर्म का संस्कृति के साथ एक अटूट संबन्ध है। धर्मनिरपेक्ष राज्य की संज्ञा से अभिहित भारत आज अपसंस्कृतिकरण के दौर से गुज़र रहा है। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में मोहनदास (गाँधी) कहते हैं - "यह स्वीकार करने में मुझे ज़रा भी गुरेज नहीं कि मैंने उस संस्कृति का विरोध किया जिसने इन्सानों को जानवरों में बदलने की कोशिश की है। जिसने इन्सान, इन्सान में भेद किया है। यह संस्कृति नेटाल के गोरों की देन है। उसका खामियाजा हम लोग भोग रहे हैं।"[1] आज स्थिति यही है कि इन्सान को इन्सान की पहचान नहीं है। जिस संस्कृति ने सभी धर्मों को एक समान देखा था, आज उसी भूमि पर धर्म के नाम पर एक दूसरे को खत्म किया जा रहा है।

संस्कृति वास्तव में एक नैतिक धारणा है, सही-गलत, अच्छा-बुरे के बीच पहचान करने की योग्यता है। इस पहचान की शक्ति आज किसी के पास भी नहीं है। सब कुछ मनुष्य ने खो दिया है। भारत का विभाजन भी इसी अपसंस्कृति की ओर हमारा पहला कदम था। कमलेश्वर जी लिखते हैं - "गाँधीजी ने गहरी साँस ली। अपना थका पैर खींच लिया। फिर सूखे गले में एक घूँट-सा लेकर वे धीमे से बोले-अच्छा होता... वे मेरे शरीर को बाँट

---

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 434

लेते....ईश्वर उन्हें सद्‌बुद्धि दे ! कहकर उन्होंने आकाश की तरफ देखा। जैसे बापू कह रहे हों-गलत फैसलों से हिंसा उपजती है और हिंसा से अपसंस्कृतियाँ और रक्तपात...।"[1] हिंसा ने देश को तबाह कर दिया है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख सभी लोग अपना अपना मुलक चाह रहे हैं। रोज़ कहीं न कहीं धार्मिक हिंसा से कई लोग मारे जा रहे हैं। यही दौर अपसंस्कृति का है जहाँ मानव की सूझबूझ मिट्‌टी में मिल गयी है।

धर्म और संस्कृति का रिश्ता अटूट है। 'कितने पाकिस्तान' में सलमा कहती है - "धर्म के आधार संस्कृतियाँ बनती हैं... पर कालांतर में वे धर्म से मुक्त होकर मानव संस्कृतियों में तब्दील हो जाती हैं... पर तुम और तुम्हारे लोग बार बार संस्कृति को धर्म की ओर खींचते रहे...।"[2] संस्कृति का सार नैतिक भावना है तो दूसरी ओर धर्म संस्कृति का स्रोत है। मानव की संस्कृति ही उसकी जीवन पद्धति को निर्धारित करने वाला प्रमुख तत्व होता है। इसके उजड़ जाने का अर्थ है मानव सभ्यता को क्षति पहुँचाना। आज धर्म के नाम पर धर्म के ठेकेदारों का भी काम समाज को अंधा बनाना हो गया है। भगवान पर भरोसा करना, ईश्वरीय आस्था भारत के लिए कोई नया कार्य नहीं है। लेकिन इस विश्वास को हाथ में लेकर आज धर्म के ठेकेदारों ने समाज को दूषित कर दिया है। 'पार' उपन्यास का कैलाश महाराज इसी प्रकार का एक नीच पात्र है। वह गाँव के कम पढे लिखे वर्ग का धर्म के नाम पर शोषण करता है। उपन्यास में अरविंद नामक एक सुधारवादी पात्र रामदुलारे के

1. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 61
2. वही - पृ. 103

समक्ष जाकर कैलाश महाराज की करतूतों के बारे में कहता है और अपनी पीड़ा को साझा करते हुए बोलता है कि यहाँ के लोग अपना भला-बुरा सोचे बिना कैलाश की बातों पर आँख मूँद कर विश्वास क्यों कर लेते हैं? आगे वे पूछते हैं कि मैं तो उनसे ज़्यादा पढ़ा लिखा ब्राह्मण हूँ, फिर मुझ पर विश्वास क्यों नहीं करते? इसका जवाब देते हुए रामदुलारे कहता है - "कैलाश महाराज पर विश्वास करना उन्हें संस्कारों में मिला है। और संस्कारों का विसर्जन इतनी जल्दी नहीं होता। फिर कैलाश महाराज इन पर मौका देखकर वार करते हैं।... तुम ब्राह्मण तो हो, लेकिन उस मुकाम पर, उस रथ पर आरुढ़ नहीं हो जहाँ से किया गया वार खाली नहीं जाता। तुम लोगों से मिलते हो उनके सुख-दुख में, राह-हाट में। जबकि पुजारी जी मिलते हैं मंदिर में। जहाँ अपने संकटों से मुक्ति या अपने पापों का प्रायश्चित पूछने पहुँचता है भक्त। या कोई वरदन माँगने पहुँचता है धर्मभीरु इंसान। पुजारी उसके कमज़ोर क्षण का लाभ उठाकर अपनी शर्तें रखता है। अपनी कहकर नहीं, भगवान की कहकर! नतीजा...."[1] लोगों का धर्म के नाम पर शोषण आज एक आम बात होगयी है। कैलाश महाराज जैसे व्यक्ति देश के कोने कोने में मिल जाएँगे। इसका अर्थ यह ठहरता है कि देश की संस्कृति, उसका धार्मिक महत्व लुप्त होता जा रहा है। आज धर्म का केवल नकारात्मक अर्थ का ही वर्चस्व है, उसका असली सकारात्मक अर्थ तो कहीं नेपथ्य में खो गया है। इसलिए कमलेश्वर जी ने कहा - "आदमी की आँसू ही नई संस्कृतियों को पैदा करके उसे सींचते हैं... जिस संस्कृति के आँसू सूख जाते हैं, वह उजड़ जाती है...।"[2]

---

1. वीरेन्द्र जैन - पार, पृ. 137-138
2. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 237

5.7 प्रतिरोधी धर्मनिरपेक्ष संस्कृति

धार्मिक वैमनस्य ने हिन्दू मुसलमानों को बाँट दिया । धर्म को आधार बनाकर देश की सांप्रदायिक शक्तियों ने हमेशा पीछे से वार किया है। जितना विकास देश के अन्य क्षेत्रों का हुआ है उतनी ही विकराल धार्मिक परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। देश के हर एक व्यक्ति को इस धार्मिक कट्टरता के खिलाफ आवाज़ उठानी होगी। 'निन्यानवे' उपन्यास के बल्लो ने भी यही प्रयास किया। अपने सभी सहकर्मचारी लोगों को बल्लो मुंह-तोड जवाब देता है। उनके हिन्दू राष्ट्र के रूप में भारत को तब्दील करने के प्रयास पर बल्लो घोर विरोध प्रकट करता है- "..... भारत एक ऐसा अनोखा राष्ट्र है जो हिन्दुओं का तो है ही, मुसलमानों का भी है... वे भी यहाँ सदियों से रहते हैं।"[1] देश के नागरिकों को एक समान देखने के लिए हमें बल्लो की नज़रिए की ज़रूरत है। समन्वय की संस्कृति भारत में सदियों पहले ही रूपायित हो गयी थी। केवल इस संस्कृति को बरकरार रखने की कोशिश बल्लो के माध्यम से हुई है।

धर्मनिरपेक्ष राज्य के लिए एक धर्मनिरपेक्ष समाज की आवश्यकता है। सूझ-बूझ रखने वाले लोगों की ज़रूरत है जो अपना प्रतिरोध व्यक्त करने की हिम्मत रखता हो। 'डूब' उपन्यास का माते इसी प्रकार के हिम्मती पुरुष हैं। उन्हें आज अपनी गलती का एहसास है। विभाजन के दौर में मुसलमानों को अपने देश के दुश्मन के रूप में देखा जाता था। किन्तु सालों बाद वे इस

---

1. रवीन्द्र वर्मा - निन्यानवे, पृ. 185

सच्च से रुबरु हो जाते हैं कि यह सिर्फ राजनीतिक खेल था, जिसमें निरीह, अनपढ़ जनता को गलत पाठ पढाया गया था। इन्दिरा जी को जब अपने ही लोगों ने मार दिया, तब यह खबर सुनकर माते चौंक जाते हैं। तब वे कहते हैं - "हम तो आज तक उन मुसलमानी पथरा को हेर नहीं पाते। तुम कैसे हेरोगे अब उन मरनेवालों के भाई-बंदों की ओर?... अरे हमसे तो वह भूल नादानी में, नासमझी में हुई थी, मगर तुम शहराती तो पढ़े-लिखे हो! तुम तो विद्वान हो, विवेकवान हो! यही है तुम्हारा विवेक? यही है ज्ञान? तो क्या तुम आज भी उस अवस्था में हो जिसमें हम चालीस बरस पहले थे?"[1] वे आज इस अन्याय को बखूबी से पहचानते हैं। इसलिए लोगों को इस प्रकार के अन्याय के शिकंजे से अपने आपको बचाने का प्रयास करना चाहिए। यह माते का प्रतिरोध है। किसी और के बेहकावे में आकर अपनी समझ को दूसरों के सामने गिरवी नहीं रखनी चाहिए। अपने प्रतिरोधी स्वर को इनके खिलाफ बुलन्द रखकर ही लुप्त होती जा रही धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों को पुनः प्राप्त किया जा सकता है। प्रतिरोध से ही कुछ पाना संभव होगा।

5.8 स्थानीयता की ओर उन्मुखता

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। संस्कृति वहीं है जो मनुष्य को दूसरे प्राणियों से अलग रखती है। प्रत्येक समाज की अपनी स्वतंत्र आकांक्षाओं और ज़रूरतों के अनुरूप विकसित अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। 'परिवर्तन' संस्कृति की एक सहज

1. वीरेन्द्र जैन - डूब, पृ. 246

प्रकृति है। वह उस नदी के समान है जो गतिशील है। वह अपने में समाहित पुरातन मूल्यों को नित नवीन मूल्यों से परिष्कार करती रहती है। यह संस्कृति मानव को अपने जन्म के साथ विरासत में मिली हुई धरोहर है। यह वह उदात्त भाव है जो मानव को अपनी प्राकृतिक प्रवृत्तियों से परिष्कार कर उसे सच्चे अर्थों में सुसंस्कृत मानव बना देता है।

'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में मोहनदास अपनी वास्तविक संस्कृति की ओर लौटने के लिए कहता है - "हमारी संस्कृति प्राचीनतम है, हम उसे भूल गये। अपने व्यवहार और करमों से उसे फिर से जीने की आदत डालनी है।"[1] यहीं गाँधी जी के लिए स्थानीयता है। अपनी संस्कृति में वह सारे तत्व समाया हुआ है जिसकी ज़रूरत मानव सभ्यता को है। किन्तु आज वक्त ऐसा आ गया है कि मनुष्य ने अपने पुरातन मूल्यों का बहिष्कार करके आधुनिक बन गया है। आधुनिक सोच वाले के लिए पुराना सब कुछ आऊटडेटड है चाहे वह अपनी संस्कृति ही क्यों न हो। 'निर्वासन' उपन्यास में एक प्रसंग देखिए जिसमें सूर्यकान्त का चाचा और उसके बीच में वार्तालाप हो रहा है - "चाचा तुम कहाँ कहाँ से तमाम ऐसी चीज़ें इस घर में रखे हो जो अब गायब हो चुकी हैं?

वे गायब नहीं हुई हैं। चाचा हंसे- वे अपनी अपनी जगह से धकेल दी गयी हैं। मैं समझ रहा हूँ तुम्हारी बात। ये देसी आम, ये बरतन, ढिबरी, लालटेन, ये सिकहर, ये सिल लोढ़ा, ये सब इसी भारत देश में है पर अपनी

1. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 833

अपनी जगह से धक्का दे दिये गये हैं। ये ऐसे अंधेरे में गिर गये हैं कि तुम लोगों को दिखायी नहीं देते। पर ये हैं।"[1] अपनी संस्कृति को भुलाने वाली नयी पीढ़ी के लिए चाचा एक सशक्त उदाहरण है। गाँधी जी ने ज़मीन से, अपनी संस्कृति से जुड़कर जीने का जो सन्देश दिया है उसको सूर्यकान्त का चाचा सही अर्थों में अपने यथार्थ जीवन के ज़रिए दिखाता है। वास्तव में इतना आधुनिक बनने के बाद वे इस चीज़ की व्यर्थता को समझ लेते हैं और वे पुनः अपनी पुरानी ज़मीन, अपनी पुरातन संस्कृति की ओर मुड जाते हैं। यही स्थानीयता की ओर लौटना है।

चाहे कितना भी परिवर्तन आ जाए अपनी संस्कृति को लोग भूल नहीं पाते। इसका एक सशक्त चित्रण 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में मौजूद है - "धर्म परिवर्तन के कारण ज़रूरत पड़ी तो मन्दिर की दीवार के सहारे ही हमने मस्जिद खड़ी कर ली है। आज भी मुसलमान बहन अपनी सन्तान की शादी के समय भइया को भात लाने के लिए बुलाने जाती है तो यही लोकगीत गाती हैं- "भैया रघुवीर भात हमारो लइयो... इस मुसलमान बहन के ओठों पर रघुवीर उसकी संस्कृति का शब्द है... विधर्म का नहीं।"[2] किसी को कितना भी बदल लो, उसकी अन्तरात्मा से जड़ जम गए उसकी संस्कृति को मिटाकर भी मिटाया नहीं जा सकता। किसी न किसी मोड पर आखिर वह उसकी अपनी संस्कृति की ओर लौट ही जाता है। इसलिए संस्कृति वह उदात्त भाव है जो मानव को अपने अस्तित्व से मिलाती है। वह मानव के

1. अखिलेश - निर्वासन, पृ. 215
2. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 182

हित में रहती है। इसी धारणा को पुख्ता करते हुए 'कितने पाकिस्तान' का पात्र अदीब कहता है - "संस्कृति अनुदार नहीं, उदार होती है... वह मरण का उत्सव नहीं मनाती, वह जीवन के उत्सव की अनवरत श्रृंखला है... इसी सामासिक संस्कृति की ज़रूरत हमें है क्योंकि वह जीवन का सम्मान करती है।"[1] वह एक जीवन्त तत्व है जिससे मानव पशु समान धरातल से ऊपर उठकर मानवीयता की धरातल पर पहुँचती है। वास्तव में एक पवित्र संस्कृति ही मानव को सुसंस्कृत बनाती है। आज हम ने अपनी संस्कृति को भुला दिया। 'घास का पुल' उपन्यास में कुवँर सिंह एक ऐसा पात्र है जिसे नयी संस्कृति में जीवन जीना घुटन सा लगता है। वह अपने पुराने मोहल्ले में जाना चाहता है, जहाँ आदमी-आदमी के बीच मानवीय व्यवहार अभी भी शेष है। वह अपने हींग की मंडी में गड़ी नाल के लिए परेशान है। इस परेशानी से वाकिफ उसका बेटा मन्नू कहता है - "हींग की मंडी में गड़ी नाल तो एक बहाना थी-उस दूसरी ज़िन्दगी के लिए जो हम सब ढूँढते हैं और हमें नहीं मिलती।"[2] अर्थात उस पुरानी संस्कृति की ओर लौटने की आकांक्षा है जहाँ कोई मानसिक रूप से कैद नहीं है। आज के चकाचौक वाली नयी संस्कृति से पुराने की ओर लौट जाना ही उनके हींग की मंडी में नाल से मतलब है। जब वह हींग की मंडी वाले पुश्तैनी घर का मुकदमा हार जाता है तो कुँवर जी टूट कर बिखर जाते हैं। क्योंकि आज वह पुरानी दुनिया ही कहाँ रह गई है जिसकी हमें तलाश है।

1. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 182
2. रवीन्द्र वर्मा - घास का पुल, पृ. 99

5.9 बहुलता की संस्कृति

हमारी सांस्कृतिक बहुलता, विविधता बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। हमारी परंपरा किसी को बहिष्कृत करने वाली नहीं है। धार्मिक रूप से समन्वयन की भावना हमारी सांस्कृतिक विरासत है। सभी धर्मों, धर्म प्रवर्तकों तथा धार्मिक स्थानों के प्रति आदर एवं पूजा का भाव भारतीय संस्कृति की विशेषता है। समाज में भीषण दंगे फंसाद होने के समय भी कुछ ऐसे लोग आज भी बचे हुए हैं जिन के लिए हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख, इसाई सभी एक जैसे ही हैं। 'कितने पाकिस्तान' में कमलेश्वर जी एक समन्वय की, सहिष्णु भारत की कल्पना करते हैं- "अदालते आलिया! मैंने यही चाहा था कि भारत में समझदारी और सहिष्णुता की एक नई संस्कृति जन्म ले... वह संस्कृति जिसे सूफी सन्तों ने मंजूर किया था।"[1] प्रेम के धरातल पर समन्वय को लेकर चलने वाली एक ऐसी संस्कृति का निर्माण करना होगा जिसमें इन्सानियत का सन्देश हो।

सहिष्णु एवं भाईचारे की भावना के साथ मिल-जुलकर रहने की संस्कृति का उदात्त उदाहरण 'काला पहाड़' उपन्यास में प्राप्त होता है। जब मुख्यमंत्री मेवात में आते हैं वहाँ के भाइचारे को देखकर कहते हैं कि - "....ये सही बात है कि इस इलाके जैसा भाइचारा न तो मैंने कहीं देखा है और न सुना है.... मुझे यह देखकर बड़ी खुशी होती है कि जब आज पूरे देस में दंगे-फसाद हो रहे हैं तो इस इलाके में पूरी शान्ति है... इसका मुख्य कारण मुझे यही लगता है कि आपमें अभी तक हिन्दुओं के संस्कार भरे पड़े हैं...

---

1. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ. 182

जैसाकि चौधरी करीम हुसैन ने बताया है कि उनके मरहूम पिता चौधरी आमीन खाँ ने बँटवारे के समय हिन्दुओं की रक्षा करते हुए कहा था कि पहले वे हिन्दू हैं, मेव बाद में-ये सबद उन्हीं संस्कारों की देन हैं...।"[1] भाइचारे की भावना के लिए मेव एक उदात्त उदाहरण है। यहाँ हिन्दू एवं मुसलमानों में भाई-भाई का रिश्ता है। इसी प्रकार के बहुलता की संस्कृति को लोगों के मन में बचाके रखने की आज हमें ज़रूरत है।

मनुष्य को धर्म रहित संबन्धों के प्रति अपने अन्तर्मन को समझाना है। मानव को मानवता की दृष्टि से देखा जाना है न कि उसकी हैसियत से, धर्म से। भाईचारा तभी संभव होगा। मोहनदास इस सन्दर्भ में स्वयं कहते हैं कि - "मैं भाइचारे को पैसे से ज़्यादा शक्तिशाली मानता हूँ। प्यार भरी नजरें और दो शब्द प्यार के पैसे से ज़्यादा स्थायी होते हैं।"[2] धरती पर प्रेम से बढकर कुछ भी नहीं है। यही तत्व लोगों में आपसी समन्वय कराता है। इसको अपनाने से ही देश-दुनिया में शान्ति स्थापित हो पाएगी। बहुलता की संस्कृति का आधार ही प्रेम एवं भाइचारा है। हमारे देश में अलग अलग विश्वास, धर्म, जाति और आस्था के लोग मिल जुलकर रहते हैं। भारतीय समाज कई प्रकार की लघु संस्कृतियों का समाज है। सांस्कृतिक बहुलता वाले इस देश में विभिन्न उप संस्कृतियाँ समान आधार पर और अपनी अलग पहचान बनाए रखते हुए साथ साथ रहती हैं। यहीं हमारी बहुलता की संस्कृति का द्योतक है।

---

1. भगवानदास मोरवाल - काला पहाड़, पृ. 89
2. गिरिराज किशोर - पहला गिरमिटिया, पृ. 730

5.10 निष्कर्ष

भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। भारत देश अपने विभिन्न संप्रदायों के लिए प्रसिद्ध है। इस देश ने हमेशा बाहर से यहाँ आयी सभी संस्कृतियों को अपने में समा लिया। वर्तमान सन्दर्भ में देश की स्थिति बहुत ही दर्दनाक होती जा रही है। धर्म को आधार बनाकर सांप्रदायिक ताकतें अपना परचम लहरा रही हैं। धर्म निरपेक्षता की संस्कृति को धर्म सापेक्ष बनाने की प्रवृत्ति बढती जा रही है। बहुलतावादी भारतीय संस्कृति में धर्मनिरपेक्षता के तत्व खतरे में पड गये हैं। धर्म को आधार बनाकर खेले जा रहे इस खेल में इन्सानों की बलि चढायी जा रही है। सत्ता हासिल करने की होड़ में धर्म को हथियार बनाकर बेचा जा रहा है। हिन्दुत्ववाद, मुसलमानों की अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता आदि की जकड़ से भारत की अपनी धर्मनिरपेक्ष संस्कृति नष्ट होती जा रही है। गाँधी जी ने मानवता के आधार पर राष्ट्र निर्माण का प्रयास किया। उनके अनुसार सभी धर्मों का आधार मानवता ही है। मानवतावादी धर्म को आधार बनाकर चलने से ही धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों को बरकरार रखा जा सकता है - यही प्रयास देश के विकास के लिए भी सही साबित होगा। वर्तमान में धर्मनिरपेक्ष नीति क्षीण पडती ज रही है। देश में धर्मनिरपेक्षता का भविष्य अंधकारमय होगया है। वर्तमान देश की जो स्थिति है शायद उसकी कल्पना गाँधी जी ने कभी नहीं की होगी। धर्म को अफीम के रूप में अपनाकर सांप्रदायिक सौहार्द को तोडने के भरपूर प्रयास किए जा रहे हैं। हिंसा की तीव्र भावना, धार्मिक राष्ट्रवाद, आतंकी माहौल ने वर्तमान समय

को पेचीदा कर दिया है। धर्मनिरपेक्ष संस्कृति को तोडने का निरन्तर प्रयास हो रहा है। इससे मुक्ति पानी होगी। तटस्थ सोच को अपनाते हुए ही इस भीषण स्थिति का मुकाबला किया जा सकता है। स्थानीयता और बहुलता की संस्कृति को मज़बूत कर धर्म सापेक्ष संस्कृति के विरुद्ध प्रतिरोध ही इसका उपचार है।

❖ ❖ ❖

उपसंहार

उपसंहार

समकालीन समय अति भौतिकतावादी धरातल की ओर अग्रसर है। ऐसे समय में मानव को मानव के साथ, मानवेतर प्राणियों के साथ तथा प्रकृति के साथ जोड़ने के लिए एक अत्यन्त व्यावहारिक तथा जीवन्त विचारधारा की आवश्यकता जान पडती है। वर्तमान दौर नव उपनिवेश का है। यह समय देश को सशक्त बनाने का है। मौजूदा समाज कई प्रकार की विद्रूपताओं से ग्रस्त है। सारे मानवीय मूल्य नष्ट हो गए है। राष्ट्र फासीवाद के चंगुल में फस गया है। इस प्रतिकूलता से मुक्त होने के लिए भारतीय जनता के सामने गाँधी के अलावा कोई दूसरा रास्ता दीख नहीं पडता। मानवतावादी दृष्टि से ओतप्रोत उनके चिंतन में आज भी उतनी ही शक्ति मौजूद है जितनी देश को स्वतंत्र बनाने के संग्राम के समय थी। गाँधी जी के विचारों से दूर हटकर आधुनिक मानव ने अपने को चकाचौंध की दुनिया में भुला दिया है। आज इसी चकाचौंध ने मानव को मानव से, समाज से, प्रकृति से दूर कर उसको अत्यन्त व्यक्तिवादी बना दिया है। आज मनुष्य यांत्रिक दुनिया में प्रवेश कर चुका है। इस दुनिया में मानवीयता के लिए कोई स्थान नहीं है। एक प्रकार की जड़ता पूरे समाज में व्याप्त हो गयी है। मानवता एक भीषण स्थिति का सामना कर रहा है। मनुष्य पशु से भी ज़्यादा बर्बर बन गया है। ऐसे सन्दर्भ में उपन्यासकारों ने पहचान लिया कि गाँधी और गाँधी चिंतन ही वह एकमात्र उपाय है जिससे मानवता की रक्षा संभव हो पाएगी। इसलिए समकालीन रचनाकारों ने खासकर उपन्यासकारों ने वर्तमान भ्रष्ट सामाजिक,

आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति से भारत को उबारने के लिए गाँधी को एक विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया है। इन्होंने देखा कि आज भारतीय समाज में दिखाई पड़ने वाली नकारात्मक स्थितियों का कारण भारतीय जनता और जन नेता का गाँधी एवं गाँधी मार्ग से हट जाने का है। इसलिए वे महसूस करते हैं कि इस त्रासद स्थिति से मुक्ति का आश्रय सिर्फ गाँधी है।

महात्मा गाँधी ने समस्त विश्व को सत्य और अहिंसा से प्रकाशित किया। इनकी तुलना बड़े-बड़े वैज्ञानिकों एवं आलोचकों ने ईसा एवं बुद्ध के साथ किया। गाँधी जी का जीवन ही उनका चिंतन है। उनके विचारों का अध्ययन देश की वर्तमान पीढ़ी तथा भावी पीढियों के लिए बहुत ही आवश्यक है। क्योंकि वह एक शाश्वत सत्य की खोज पर आधारित है। उन्होंने संपूर्ण मानव तथा मानवेतर प्राणियों के विकास के लिए सत्य और अहिंसा का मंत्र प्रस्तुत किया। उसको अपनाना मानव समाज के लिए सदैव श्रेयस्कर रहेगा। वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ ऐसी बन गई हैं कि मनुष्य विनाश के कगार की ओर बढ़ रहा है। ऐसे समय में गाँधी जी एक सार्थक इकाई के रूप में हमारे सामने पुनःप्रस्तुत हो रहे हैं। उन्होंने उपनिवेशी समय के सभी प्रकार की समस्याओं का सामना कर जन चेतना को अपने यथार्थवादी विचारों के माध्यम से जागृत किया था। तत्कालीन पाश्चात्य उपनिवेशवादी प्रवृत्ति के खिलाफ उनका संघर्ष आज भी इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात एक नये भारत को नवीन ढंग से रूपायित करने के प्रयास होने लगे। किन्तु तब तक

उपनिवेशी आधुनिकीकरण ने समाज में अपना वर्चस्व कायम कर लिया था। इस पाश्चात्यीकरण के खतरे के बारे में गाँधी जी ने पहले ही चेतावनी दी थी। लेकिन किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उनका दृढ विश्वास था कि पश्चिमी विकास नीति भारतीय संस्कृति के लिए उपयुक्त नहीं है। पर यूरोप तथा यूरोप की प्रभुता ने भारतीय जन जीवन को प्रभावित किया। उन्होंने जिस भारत का विकास भारतीय धरातल पर चाहा था, आत्मनिर्भर भारत का सपना देखा था वे सब ढह गए। परिणामतः उपनिवेश काल की समस्याओं ने वर्तमान नवउपनिवेशी दौर में विकराल रूप धारण कर लिया। आज हमारा समाज एक बार फिर से वही पर खड़ा हुआ है जहाँ हमने अपनी परंपरा, अपनी अस्मिता को छोड़ा था, गाँधी को छोड़ा था, उनको नगण्य समझकर उनके विचारों को त्याग दिया था। उपनिवेशी दौर एक नया मुखौटा लेकर नव उपनिवेशी भूमंडलीकृत दुनिया के रूप में हमारे सामने आज प्रस्तुत है। गाँधी को समय की माँग के रूप में दर्शाते हुए समकालीन उपन्यासकारों ने वर्तमान मौजूदा स्थिति के विरुद्ध अपना प्रतिरोध ज़ाहिर किया है।

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में गाँधी जी का आगमन स्वतंत्रता के पूर्व हुआ। राजनीति के क्षेत्र में गाँधी जी का और उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द के आगमन ने राष्ट्रीय आन्दोलन को जन सामान्य के आन्दोलन में तब्दील कर दिया। इसका प्रभाव संपूर्ण साहित्य विशेषकर उपन्यास साहित्य में भी मुखरित होने लगा। गाँधी जी ने समाज के हर तबके के लोगों को शामिल कर उपनिवेशी कैद के खिलाफ अपना आन्दोलन चलाया। राष्ट्र को मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से संपूर्ण देश में स्वराज्य की लहरें उठा दीं। इन हलचलों

से उपन्यासकार भी अनछुए नहीं रहे। हिन्दी उपन्यास का कलेवर भी राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित होकर सामाजिक बदलाव को अपना लिया। गाँधी जी ने किसानों, मज़दूरों, स्त्री एवं दलितों को समाज का महत्वपूर्ण अंग स्वीकार करके उन से संबन्धित समस्याओं का हल निकाला। गाँधी जी का स्पष्ट प्रभाव इस काल के उपन्यासों में परिलक्षित होने लगा। प्रेमचन्द के कर्मभूमि, रंगभूमि, प्रेमाश्रम आदि उपन्यास तत्कालीन समय का सच्चा दस्तावेज़ है। इनमें गाँधी जी के विचारों की सैद्धान्तिक उपस्थिति प्रत्यक्ष है। किसानों एवं मज़दूरों को संगठित करके अपने अधिकारों के प्रति उन्हें सचेत किए जाने की वृत्ति इस युग के उपन्यासों में देख सकते हैं। सामन्तवाद एवं पूँजीवाद के खिलाफ लड़कर सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति के माध्यम से राष्ट्र की उन्नति का लक्ष्य इन उपन्यासों में चित्रित है। स्वराज्य की स्थापना हेतु गाँधी जी के विचारों के साथ साथ उनको प्रतीक के रूप में भी इन उपन्यासों में दर्शाया गया। रंगभूमि का 'सूरदास', प्रेमाश्रम का 'प्रेमशंकर', कायाकल्प का 'चक्रधर', कर्मभूमि का 'अमरकान्त' जैसे पात्रों के माध्यम से प्रेमचन्द ने गाँधी जी के विचारों को साकार बनाने का प्रयत्न किया। इनके माध्यम से जन चेतना में गाँधी जी की वाणी को, उनके प्रयासों को प्रतिष्ठित करने में सफलता प्राप्त की। परतंत्रता से मुक्ति पाने हेतु गाँधी को आधार बनाकर उपन्यासकारों ने राष्ट्रीय अस्मिता को जगाने का सफल प्रयत्न किया। प्रेमाश्रम में किसानों को महत्वपूर्ण स्थान देकर ज़मीन्दारी प्रथा का उन्मूलन है तो रंगभूमि में बढती औद्योगीकरण के खिलाफ सूरदास की लड़ाई का चित्रण है। इनके माध्यम से गाँधी जी के लघु एवं कुटीर उद्योगों को विकल्प

के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किसान एवं मज़दूरों को आत्मनिर्भर बनाने के प्रति उपन्यासकार की सजग दृष्टि यहाँ स्पष्ट है। दलितों के उन्नयन, स्त्रियों का समान अधिकार आदि बातों को भी उपन्यासकारों ने स्थान दिया है। स्त्री एवं दलितों को मुख्यधारा में लाने हेतु गाँधी जी के प्रयासों को इन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से दिखाया। इस प्रकार गाँधी जी को आधार बनाकर उनके विचारों का सैद्धान्तिक प्रसार इस काल के उपन्यासों में किया गया है। यहाँ गाँधीजी के विचार सबल हैं उन आततायी परिस्थितियों से लडने के लिए।

आगे चलकर देश ने जिन आधुनिक विचारों को अपनाया वे पश्चिमी सभ्यता की देन थे। देश के सामने नए प्रकार की चुनौतियाँ उपस्थित होने लगीं। जिसके फलस्वरूप एक आधुनिक भारत का जन्म हुआ। उस के लिए पश्चिमी सोच और पश्चिम की विकास नीति ही बेहतर लगने लगा। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, परंपरा सब कुछ पिछड़ा या बर्बर लगने लगा। रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' में 'बावनदास' की मृत्यु गाँधी के विचारों तथा उनके व्यक्तित्व की ही हत्या का प्रतिरूप है। यह उदाहरण है तत्कालीन समय का जिसने गाँधी के मानवतावादी उसूलों का गला घोंट दिया। स्वतंत्रता के पश्चात के उपन्यासों में गाँधी जी को हथियार बनाया गया भ्रष्टाचार का। समाज के सामने गाँधी के आदर्शों का बखान कर एक तरफ लोगों की वाह-वाही लूटे जाने लगी तो दूसरी ओर अपने पद, अधिकार आदि का उपयोग कर स्वार्थ के अधीन वशीभूत होकर भ्रष्टाचारी बनते गए। राग दरबारी उपन्यास का पात्र 'वैद्य जी' इसी प्रकार का पात्र है जिसके लिए अपनी

स्वार्थपूर्ती ही परम लक्ष्य है। इस प्रकार बदले हुए सन्दर्भ में गाँधी को, उनके विचारों को कभी अपनाया गया तो कभी ठुकराया गया ।

आज हमारा देश संक्रमण काल से गुज़र रहा है जिनमें पुरानी मान्यताएँ समाप्त हो रही है और नयी मान्यताएँ सामने आ रही हैं। इन नयी मान्यताओं में भौतिकवादी मूल्यों तथा अर्थ की प्रधानता है। समाज में नैतिक मूल्यों का हनन दिखाई दे रहा है। आए दिन सामाजिक व्यवस्था में काफी बदलाव हो रहा है। स्वार्थ केन्द्रित जीवन, संवेदनहीन जन चेतना, जीवन मूल्यों का बिखराव, अमानवीय आपसी व्यवहार आदि से ग्रस्त नव परिवर्तित समाज में स्नेह संबन्ध समाप्त हो चुके हैं। राजनीति में त्याग, तपस्या तथा बलिदान के स्थान पर भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया है। समकालीन उपन्यास वर्तमान भ्रष्ट स्थिति पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए इन स्थितियों से मुक्ति के रूप में गाँधी जी की ओर ताक रहे हैं। विभिन्न प्रकार के मानव विरोधी समस्याओं से उलझे हुए वर्तमान समाज को नयी राह दिखाने की दृष्टि सिर्फ गाँधी में ही है, ऐसा बोध उपन्यासकारों में पनपने लगा है। इसी का चित्रण समकालीन उपन्यासों में प्राप्त है। विचारधारा रहित समाज के लिए किस प्रकार गाँधी रूपी विकल्प का इस्तेमाल कर समाज को नैतिकता से परिपूर्ण बनाकर आत्मनिर्भर किया जा सकता है, इसका संकेत इन उपन्यासों में चित्रित है।

वर्तमान भारतीय समाज अपनी परंपरागत सीमाओं को लाँघकर एक नवीनतम संस्कृति की ओर बढ़ रहा है। किन्तु पाश्चात्य संस्कृति के अंधे अनुकरण की प्रक्रिया भी जारी है। एक ओर भारत अपने मूल्यों को खोकर

जड़ता में विलीन हो रहा है तो दूसरी ओर इण्डिया शाइन कर रहा है। यह चमक वास्तव में बर्बादी की चमक है। 'कलि कथाः वाया बाइपास', 'पहला गिरमिटिया', 'डूब', 'बिस्रामपुर का संत', 'इदन्नमम', 'ज़मीन' जैसे उपन्यासों में इस त्रासदी पर विचार किया गया है। महानगरीय संस्कृति ने मानव को स्वार्थी बना दिया है। उसने मानव को जड़ बनाकर बौद्धिक रूप से अचेत बना दिया। गाँवों को छोड़कर महानगरों की ओर पलायन, किसानों की आत्महत्या, स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु समझने की रीति, दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहार, मज़दूरों का शोषण जैसी सामाजिक बुराईयों के खिलाफ उपन्यासकार अपना घोर आक्रोश व्यक्त करते हुए वर्तमान जनजीवन की त्रासदी को उजागर कर रहे हैं।

समकालीन उपन्यासों का संकेत समाज का समग्र विकास है। इसके लिए गाँधी ही सार्थक विकल्प है। देश के राजनीतिक क्षेत्र में बढ़ता भ्रष्टाचार, लोकतान्त्रिक ढाँचे का स्खलन आदि पर विचार करते हुए वर्तमान लोकतंत्र के खोखलेपन पर प्रकाश डाला गया है। समाज बौद्धिक रूप से अचेत हो गया है, राजनीतिक रूप से दास। यह एक प्रकार की सामाजिक मूर्च्छा की स्थिति है। यह शक्ति खोई गई जनता की त्रासद स्थिति है। लोकतंत्र मताधिकार में बदलता जा रहा है। भारतीय समाज स्वराज्य की कल्पना के जनतंत्र की सोच से कोसों दूर होता जा रहा है । यहाँ का लोकतंत्र जन सामान्य को अपने वास्तविक विकास की ओर अग्रसर कराने के बदले एक कोरी लिप्सावादी धनतंत्र की ओर ले जा रहा है। इस पहचान को लेकर

चलनेवाले समकालीन उपन्यासकारों ने गाँधी की विश्व दृष्टि को अपनाया। समाज का संतुलित विकास, राजनीति को राजतंत्र से बचाना, गाँवों के भरपूर विकास के माध्यम से किसानों का उन्नयन आदि उनको लक्ष्य रहा है। 'फाँस' उपन्यास में इसी सोच को यथार्थ में बदलते हुए दिखाई देते हैं। 'कलि कथाः वाया बाइपास' उपन्यास का पात्र किशोर बाबू अन्त में पहचान लेता है कि भारतीय सांस्कृतिक धरातल पर खड़े होकर किए जाने वाले विकास ही वास्तविक विकास बन जाएगा।

सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में मूल्यों की जो गिरावट हो रही है वही आर्थिक क्षेत्र में भी हो रही है। भारतीय अर्थतंत्र का वैश्विक अर्थतंत्र से मिल जाने का मतलब है कि भारत का पुनःआर्थिक गुलाम बन जाना। ताकतवर देश हमें परोक्ष रूप से कैदी बना रहे हैं। हमारा समाज, राजनीति, अर्थ, संस्कृति सभी इस भूमंडलीकृत दुनिया के दांव पेंच में विलीन हो गया है। उपन्यासों में बाज़ारीकरण, मुनाफावाद, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व, मॉल एवं ब्रान्ड संस्कृति आदि पर विचार करते हुए यह दर्शाया गया है कि भारत आर्थिक रूप से गुलाम बन गया है। प्रत्यक्ष रूप से स्वतंत्र दिखाई देते हुए भी भारत नव उपनिवेश की परतंत्रता की बेडियों में बुरी तरह फँसा हुआ है।

देश बाज़ार में तब्दील हो चुका है। जिस सकारात्मक सोच पर भूमण्डलीकरण की स्थापना हुई थी आज वह बिखर सा गया है। कुछ शीर्षस्थ तबकों के हितों की रक्षा मात्र इसका उद्देश्य बन गया है। आज भी

समाज में शोषण जारी है, फर्क बस इतना है कि अब वह आधुनिक मुखौटा धारण कर अप्रत्यक्ष रूप से अपने लक्ष्य को अंजाम दे रहे हैं। 'निर्वासन', 'कलि कथाः वाया बाइपास', 'घास का पुल', 'नाकोहस', 'अकाल में उत्सव' जैसे उपन्यासों में वर्तमान भूमंडलीकृत दुनिया के बदलते परिवेश के चित्र अंकित है। वे यह समझा देने का कार्य भी कर रहे हैं कि बाज़ारीकरण, उदारीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा सूचना एवं संचार माध्यमों की आड में शोषण फिर से बल पकड़ रहा है। इतना ही नहीं उपभोग की वस्तु के रूप में मानव जाति का बदलाव बहुत बड़े खतरे की निशानी है। नवीन बिकाऊ संस्कृति के कारण सारे पुराने मूल्य नष्ट हो चुके हैं। इस ओर सोचने के लिए उपन्यास हमें विवश कर रहे हैं।

तकनीकी विकास इस नवीन समाज की उपलब्धि है। किन्तु क्या यह विकास असल में उपयोगी है। हाई टेक बनती जा रही मानव सभ्यता अपने आसपास के पर्यावरणीय असंतुलन से वाकिफ तो ज़रूर है किन्तु इसके प्रति सचेत बिल्कुल नहीं। ऐसे सन्दर्भ में गाँधी जी की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए उपन्यासों के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि विकास तभी अच्छा है जब वह मानव को केन्द्र में रखकर किया जाए। किन्तु आज पर्यावरणीय संकट, प्राकृतिक संसाधनों का अति-दोहन जैसी समस्याओं से पीड़ित समाज का चित्रण 'डूब', 'पार' जैसे उपन्यासों में किया गया है। गाँधी जी ने भारत की आत्मा को पहचाना था। इसी पहचान की ज़रूरत हमें आज है। भारत का सच्चा विकास इसी पथ पर अग्रसर होकर ही प्राप्त किया जा सकता है।

'डूब' उपन्यास का 'माते', 'निर्वासन' उपन्यास में सूर्यकान्त का 'चाचा' आदि इसी भारतीय तत्व की महत्व को पहचाननेवाले पात्र है। इनके इसी पहचान को, इस अनुभव को आत्मसात करने की इच्छा का नयी पीढ़ी में होना अनिवार्य है।

बाज़ार केन्द्रित समाज में बाज़ारू मानसिकता पनपने लगा है। इस भूमण्डलीकृत दुनिया में मुनाफा कमाना ही एकमात्र लक्ष्य रह गया है। सब कुछ स्टाटेस एवं लाइफस्टाइल में तब्दील हो चुका है। अब हर गली-मोहल्ले तक बाज़ार घुस आया है। नव माध्यम भी इनका हथियार बनकर हमारे सामने खड़ा है। नव उपनिवेशी संस्कृति का प्रतिरोध करते हुए 'निर्वासन' उपन्यास का 'चाचा' हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। विदेशी नीति के फलस्वरूप पश्चिमी अंधानुकरण के चलते एक उपभोगी समाज का जन्म हो चुका है जिसके लिए बाहरी तड़क-भड़क की ज़िन्दगी ही सब कुछ है। 'कलि कथाः वाया बाइपास' उपन्यास में किशोर बाबू का परिवार, 'निन्यानवे' उपन्यास में 'रामदयाल' का परिवार आदि इसके लिए पर्याप्त उदाहरण हैं। ये अपने मूल्यों को खोकर पश्चिम की ओर अग्रसर होते दिखाई दे रहे हैं। इस परिवर्तन के खिलाफ 'निर्वासन' उपन्यास के सूर्यकान्त का 'चाचा' अपने आधुनिक विचारधारा रखने वाले परिवार से दूर होकर अपनी एक छोटी सी दुनिया बसा लेता है। यहाँ गाँधी और भारतीय संस्कृति की ओर वापस जाने की अनिवार्यता की ओर इशारा है।

भारतीय संस्कृति हमेशा से ही सभी संस्कृतियों को अपने में समाहित

कर रही है। वसुधैव कुटुंबकम, सर्वधर्म समभाव जैसी सोच से ओतप्रोत भारतीय संस्कृति के तत्वों को ही गाँधी जी ने भी अपनाया था। भारत को इसलिए धर्मप्राण देश कहा जाता है। किन्तु आज धर्म निरपेक्ष भारतीय समाज को धर्म सापेक्ष्य किए जा रहे हैं। मनुष्य को धर्म से बढकर देखने के बजाए धर्म को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया जा रहा है। बहुलतावादी भारतीय संस्कृति में धर्मनिरपेक्षता अब खतरे में हैं। धर्म को हथियार बनाकर इस्तेमाल करनेवाली नीति के खिलाफ उपन्यासकारों ने अपना आक्रोश व्यक्त किया है। हिन्दुओं का हिन्दुत्ववाद, मुसलमानों की अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता की समस्याओं से जकड़े भारतीय समाज अपनी धर्म निरपेक्ष संस्कृति से दूर होता गया है। 'काला पहाड़', 'ज़मीन', 'कितने पाकिस्तान', 'आवां' जैसे उपन्यास इन समस्याओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का स्वर अब गूंज रहा है। किसी धर्म के आधार पर मज़हब के आधार पर मनुष्य को देखे जाने लगे हैं। धर्म को अफीम के रूप में अपनाकर सांप्रदायिक सौहार्द को तोड़ने के भरपूर प्रयास के चलते हिंसा की तीव्र भावना, धार्मिक राष्ट्रवाद, आतंकी माहौल ने वर्तमान समय को पेचीदा कर दिया है। भेदभाव की दृष्टि को मिटाकर बहुलता एवं बहुस्वरता को अपनाकर स्थानीयता की ओर लौटने से ही हम अपनी परंपरागत संस्कृति को फिर से पा सकेंगे। भारतीयता को मज़बूत कर सर्वधर्म समभाव की भावना को अपनाकर ही मौजूदा धर्म सापेक्ष्य संस्कृति के प्रतिरोध में खड़े हो सकते हैं। 'घास का पुल' का नन्दू, 'कितने

पाकिस्तान' की 'सलमा', 'आवाँ की 'सुनंदा' ऐसे पात्र हैं जो समभाव की भावना लेकर चलते हैं।

समकालीन हिन्दी उपन्यास गाँधी की वापसी पर ज़ोर दे रहे हैं। यह ज़ोर कभी प्रत्यक्ष तो कभी परोक्ष रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। यह प्रमाणित सच है कि वर्तमान संकटग्रस्त समय का उपचार गाँधी जी के विचारों में ही संभव है। गाँधी वर्तमान समय की माँग बनकर इन उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत हो रहे हैं। जनतंत्र से अर्थतंत्र की ओर अग्रसर देश की सियासती व्यवस्था का, नैतिक मूल्यों के ह्रास से मुनाफे तक बढ़ रही भारतीय अर्थतंत्र का, सर्वधर्म समभाव की भावना से हटकर कोरी मज़हबी सोच में परिवर्तित हो रहे देश की सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण हमें इस सोच के लिए मज़बूर किया जा रहा है कि आज भारतीय समाज की स्थिति कुछ खास बेहतर नहीं है। भारत विकासशील देश से विकसित देश बनने की होड़ में तो ज़रूर है किन्तु इस अंधी दौड़ में वह अपने हाथों से ही अपने मूल्य, अपनी विरासत को भी नष्ट कर रहा है। इस अवसर पर गाँधी एक संबल बनकर खड़े हैं। उपन्यासकारों ने गाँधी को प्रतीकात्मक रूप में लेकर हमारे सामने इस प्रकार रखा है कि इससे व्यक्ति-व्यक्ति में बदलाव संभव हो पाएगा। उसकी पहचान निखर उठेगा। जड़ता से, मूर्च्छित अवस्था से जगकर, आत्मकेन्द्रित मानसिकता को तोड़कर आत्मसजगता की ओर प्रस्थान कर सकें। यह गाँधी जी के दर्शाए गए रास्ते पर चलकर ही संभव हो पाएगा। इसी पहचान से हमें सतर्क करने का सराहनीय कार्य इन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के ज़रिए

किया है। 'पहला गरिमिटिया' उपन्यास में जब गाँधी जी स्वयं मोहनदास बनकर अपना विचार व्यक्त करते हैं तो, 'डूब' में माते के द्वारा, 'निर्वासन' में चाचा के द्वारा, 'अंतिम सत्याग्रही' में नगारा के द्वारा, 'कलि कथाः वाया बाइपास' में किशोर बाबू के द्वारा, 'निन्यानवे' में रामदयाल के द्वारा, 'आवां' में शाहबेन एवं अन्ना साहब के द्वारा, 'इदन्नमम' में मन्दाकिनी के द्वारा, 'फाँस' में उन आदिवासी समूह के द्वारा गाँधी जी को प्रतीकात्मक ढंग से चित्रित किया गया है तो 'कितने पाकिस्तान', 'इन्हीं हथियारों से', शेष कादम्बरी', 'घास का पुल', 'परिशिष्ट, 'आखिरी छलांग', 'ज़मीन', 'अकाल में उत्सव', 'नाकोहस', 'पार', 'जय गाथा' आदि में विचारधारा के रूप में गाँधी उपस्थित है। कहने का मतलब यह हुआ कि औपनिवेशिक दौर की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ कमोबेश में नव उपनिवेशी दौर में भी हमारे सामने खडी हुई हैं। इनका समग्र समाधान गाँधी चिन्तन में मौजूद है। बदलते परिप्रेक्ष्य में जहाँ मनुष्य अपनी ज़रूरतों को नियंत्रित करने में नाकामयाब हो रहा है, राजनीति सिद्धान्त विहीन होकर भ्रष्टाचार और अपराधीकरण से लिप्त हो रहा है, औद्योगिकीकरण और मशीनीकरण प्रकृति को भस्म कर पर्यावरण की समस्याएं पैदा कर रहे हैं, अमानवीयता बढती जा रही है, तब आश्रयहीन इस दुनिया के लिए एकमात्र सहारा या विकल्प गाँधी ही है। गाँधी चिंतन ही विश्व को वर्तमान विनाश-चक्र से बचाने का एकमात्र रास्ता है।

❖ ❖ ❖

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

1. अकाल में उत्सव — पंकज सुबीर, शिवना प्रकाशन, मध्य प्रदेश, प्र. पेपरबैक. सं. 2017
2. आख़िरी छलाँग — शिवमूर्ति, नया ज्ञानोदय- सं. रवीन्द्र कालिया, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली - अंक-59, जनवरी 2009
3. आवां — चित्रा मुद्‌गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2015
4. अंतिम सत्याग्रही — डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर, अरु पब्लिकेशन्स प्रा. लि., नई दिल्ली, प्र.सं. 2008
5. इदन्नमम — मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994
6. इन्हीं हथियारों से — अमरकांत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2008

7.	कलि कथाः वाया बाइपास	अलका सरावगी आधार प्रकाशन पंचकूला (हरियाणा) प्र.सं. 1998
8.	काला पहाड़	भगवानदास मोरवाल राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्र.सं. 1999
9.	कितने पाकिस्तान	कमलेश्वर राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली, सं. 2015
10.	घास का पुल	रवीन्द्र वर्मा भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली प्र.सं. 2015
11.	जय गाथा	डॉ. मधुकर गंगाधर चेतना प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं. 2009
12.	ज़मीन	भीमसेन त्यागी भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, सं. 2004
13.	डूब	वीरेन्द्र जैन वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, तृ. सं. 1998
14.	नाकोहस	पुरुषोत्तम अग्रवाल राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक) नई दिल्ली, प्र.सं. 2016

15. निन्यानवे — रवीन्द्र वर्मा
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली, सं. 1998

16. निर्वासन — अखिलेश
राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक)
नई दिल्ली, प्र.सं. 2014

17. पहला गिरमिटिया — गिरिराज किशोर
राजपाल एण्ड सन्ज़
दिल्ली, प्र. सं. 2011

18. पार — वीरेन्द्र जैन
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र.सं. 1994

19. परिशिष्ट — गिरिराज किशोर
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र.सं. 1984

20. फाँस — संजीव
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली, प्र.सं. 2015

21. बा — गिरिराज किशोर
राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक)
नई दिल्ली, प्र.सं. 2016

22. बिस्रामपुर का संत — श्रीलाल शुक्ल
राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक)
नई दिल्ली, प्र. सं. 2008

23. शेष कादम्बरी — अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक), नई दिल्ली, प्र.सं. 2004

सहायक ग्रन्थ (उपन्यास)

24. अतीत के घूंट — भगवतीप्रसाद वाजपेयी, गौतम बुक डिपो, नयी सड़क, दिल्ली, सं. 1950

25. अमरबेल — वृन्दावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1994

26. आत्मदाह — चतुरसेन शास्त्री, साहित्य मण्डल प्रकाशन, सं. 1934

27. आहत — वृन्दावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1994

28. उदयास्त — चतुरसेन शास्त्री, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1958

29. कर्मभूमि — प्रेमचन्द, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1999

30. कायाकल्प — प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, सं. 1948

31	गबन	प्रेमचन्द लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, सं. 1963
32.	गीली यादें	आचार्य चतुरसेन शास्त्री प्रभात प्रकाशन दिल्ली, सं. 1960
33.	गोदान	प्रेमचन्द सुमित्र प्रकाशन इलाहाबाद, सं. 2007
34.	गोमती के तट पर	भगवतीप्रसाद वाजपेयी साहित्य सारनाथ, दिल्ली, सं. 1959
35.	चन्द्रकान्ता सन्तति	देवकीनन्दन खत्री राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 1987
36.	चलते - चलते	भगवतीप्रसाद वाजपेयी भारतीय साहित्य मंदिर दिल्ली, सं. 1951
37.	ठेठ हिन्दी का ठाट	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दी- साहित्य - कुटीर हाथीगली, वाराणासी सं. 1966
38.	दूधगाछ	देवेन्द्र सत्यार्थी राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 1958

39.	नूतन ब्रह्मचारी	बालकृष्ण भट्ट ज्ञानमण्डल लिमिटेड बनारस, सं. 1950
40.	प्रेमाश्रम	प्रेमचन्द लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, सं. 1972
41.	भगायवती	श्रद्धाराम फिल्लौरी नालंदा प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 1987
42.	भुवन विक्रम	वृन्दावनलाल वर्मा मयूर प्रकाशन प्र. लि झाँसी, सं. 1965
43.	ममता	गुरुदत्त हिन्दी साहित्य सदन नई दिल्ली, सं. 2003
44.	मनुष्यानन्द	पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' उग्र प्रकाशन मिर्ज़ापुर (यू. पी) सं. 1955
45.	माधवी-माधव व मदन-मोहिनी	किशोरीलाल गोस्वामी संपादक. मधुरेश साहित्य संस्थान, दिल्ली सं. 2013
46.	माधवजी सिंधिया	वृन्दावनलाल वर्मा मयूर प्रकाशन झाँसी, सं. 1968

47. मुक्तिपथ — इलाचन्द्र जोशी
लोकभारती प्रकाशन
नई दिल्ली, सं. 2007

48. मैला आँचल — फणीश्वरनाथ रेणु
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली, सं. 1954

49. राग दरबारी — श्रीलाल शुक्ल
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली, सं. 2015

50. रंगभूमि — प्रेमचन्द
गंगा पुस्तकमाला
लखनऊ, सं. 1999

51. शेखर एक जीवनी — अज्ञेय
सरस्वती प्रेस
इलाहाबाद, सं. 1970

52. सेवासदन — प्रेमचन्द
लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद, सं. 1992

53. सौ अजान और एक सुजान — पं. बालकृष्ण भट्ट
संपादक दुलारेलाल भार्गव
गंगा -पुस्तकमाला कर्यालय
लखनऊ, सं. 1945

आलोचनात्मक / सहायक ग्रंथ

1. अकाल पुरुष गाँधी — जैनेन्द्र कुमार
पूर्वोदय प्रकाशन
नई दिल्ली, सं. 1968

2.	अशोक के फूल	डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, सं. 1948
3.	आज की राजनीति और भ्रष्टाचार	नरेन्द्र मोहन राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली, सं. 1997
4.	आधुनिक भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक विचार की प्रमुख धारायें भाग 1 एवं 2	जे. पी. सूद नीलम व अतुल गुप्ता प्रकाशक, मेरठ
5.	आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ	डॉ. नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली, सं. 1966
6.	औपनिवेशिक भारत में सांस्कृतिक और विचारात्मक संघर्ष	के.एन पणिक्कर अनु. आदित्य नारायण सिंह ग्रन्थ शिल्पी दिल्ली, सं. 2003
7.	उपनिवेश में स्त्री	प्रभा खेतान राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 2009
8.	उन्मुक्त	सियारमशरण गुप्त साहित्य - सदन चिरगाँव (झाँसी) सं. 1970
9.	कुछ विचार	प्रेमचन्द श्याम प्रकाशन जयपुर, सं. 1997

10.	गाँधी और गाँधीवाद, भाग -1	डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमैय्या शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं. प्राईवेट लिमिटेड पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता, आगरा, सं. 1957
11.	गाँधी और गाँधीवाद, भाग -2	डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमैय्या शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं. प्राईवेट लिमिटेड पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता, आगरा, सं. 1959
12.	गाँधीय आर्थिक दर्शन	डॉ. धर्मेन्द्र सिंह रीगल पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, सं. 2012
13.	गाँधी विचार दोहन	किशोरलाल घ. मशरुवाला सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली, सं. 1951
14.	गाँधी दर्शन में नारी स्वतंत्रता	फौज़िया परवीन विश्वविद्यालय प्रकाशन सागर, प्र.सं. 2009
15.	गाँधी का जीवन दर्शन	काका कालेलकर नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद, सं. 1970
16.	गाँधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास	डॉ. अरुणा चतुर्वेदी कल्पकार प्रकाशन लखनऊ, प्र.सं. 1983

17. गाँधी के विचारों की 21 वीं सदी में प्रासंगिकता — माणक जैन, आदि पब्लिकेशन्स, जयपुर, प्र.सं. 2010
18. गाँधी और भावी विश्व व्यवस्था — संपादकः रामजी सिंह, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, सं. 2012
19. गाँधी, अम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ — रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2000
20. गाँधी जी की विश्व दृष्टि — रामेश्वर मिश्र 'पंकज', मानक पब्लिकेशन्स प्रा. लिमिटेड, दिल्ली, सं. 1994
21. गाँधीः एक खोज — श्री भगवान सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, सं. 2012
22. गाँधीः धर्म एवं लोकतंत्र — डॉ. के. एस सक्सेना, डॉ. गीता अग्रवाल, सबलाइम पब्लिकेशन्स, जयपुर, प्र.सं. 2005
23. गाँधी और हमारा समय — जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2001
24. गाँधी-समय, समाज और संस्कृति — विष्णु प्रभाकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2000

25.	गाँधीवाद की रुपरेखा	श्री रामनाथ सुमन साधना-सदन दिल्ली, सं. 1939
26.	गाँधीवाद की शव परीक्षा	यशपाल लोकभारती प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 2009
27.	गाँधीवादी चिंतन और औद्योगिक विकास	मोहनचन्द्र पाण्डेय सं. 1995
28.	गाँधी का निरपेक्ष धर्म	कनक तिवारी (संपादन एवं संयोजन) महात्मा गाँधी 125 वाँ जन्मवर्ष समारोह समिति मध्यप्रदेश सरकार का प्रकाशन, संस्कृति भवन बाणगंगा, भोपाल
29.	गाँधी महात्मा समग्र चिन्तन	डॉ. बी.एन पांडे गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति नई दिल्ली प्र.सं. 1994
30.	गाँधी, अम्बेडकर और दलित	डॉ. महेश्वरदत्त राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, प्र.सं. 2005
31.	गाँधी और हिन्दी राष्ट्रीय जागरण	श्री भगवान सिंह विनायक एण्ड संस दिल्ली, प्र.सं. 2012

32.	गाँधी चिंतन में राष्ट्रवाद	ब्रह्मदत्त शर्मा आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स जयपुर, प्र.सं. 2011
33.	गाँधी का राजनीतिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन	ब्रह्मदत्त शर्मा पोइन्टर पब्लिशर्स जयपुर, प्र. सं. 2011
34.	ग्राम स्वराज्य	महात्मा गाँधी नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, सं. 2011
35.	ग्रामीण विकास का आधार आत्मनिर्भर पंचायतें	प्रतापमल देवपुरा राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 2006
36.	दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह	महात्मा गाँधी नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, सं. 1968
37.	पंचायती राज	महात्मा गाँधी नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, सं. 2010
38.	प्रार्थना प्रवचन (भाग - 1)	महात्मा गाँधी सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली, सं. 1948
39.	प्रेमघन सर्वस्व	बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सं. 1994

40.	प्रेमचन्द - पूर्व के हिन्दी उपन्यास	ज्ञानचन्द जैन आर्य प्रकाशन मंडल दिल्ली, सं. 1998
41.	प्रेमचन्द और गाँधीवाद	रामदीन गुप्त हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली, सं. 1961
42.	पर्यावरण और संस्कृति का संकट	डॉ. गोविन्द चातक तक्षशिला प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं. 1992
43.	बौद्ध दर्शन	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शाक्य चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, सं. 2000
44.	बुनियादी शिक्षा	महात्मा गाँधी नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, सं. 2011
45.	बापू ने कहा था	शंभूदयाल सक्सेना नवयुग ग्रंथ कुटीर बिकानेर, सं. 1958
46.	भारत में ग्रामीण विकास	डी.सी. पंत कॉलेज बुक डिपो जयपुर, सं. 2009
47.	भारतीय अर्थ व्यवस्था	रुद्र दत्त एवं सुन्दरम एस.चन्द एण्ड कंपनी लि. नई दिल्ली, सं. 1998
48.	भारतीय संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर लोकभारती प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 2002

49. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास — सत्यकेतु विद्यालंकार, सरस्वती सदन, मसूरी (उ. प्र), सं. 1960

50. भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा — मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2013

51. भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद — बिपन चन्द्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्र. हिन्दी. सं. 1996

52. भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास — पुष्पाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2012

53. भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र — प्रभा खेतान, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 2010

54. भूमंडलीकरण के भँवर में भारत — कमल नयन काबरा, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2008

55. महात्मा गाँधी-व्यक्ति और विचार — विश्व प्रकाश गुप्त, मोहिनी गुप्त, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, सं. 2006

56.	महात्मा गाँधी विचार वीथिका	सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी नई दिल्ली, सं. 2001
57.	महात्मा गाँधी जीवन और दर्शन	रोमां रोलां लोकभारती प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 2008
58.	मेरे सपनों का भारत	महात्मा गाँधी नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद, सं. 2011
59.	मुकुल	सुभद्राकुमारी चौहान भारतीय साहित्य संग्रह दिल्ली, सं. 2011
60.	मुक्तियज्ञ	पंत लोकभारती प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 1981
61.	मानसरोवर, भाग - 3	प्रेमचन्द सरस्वती प्रेस, बनारस सं. 1947
62.	मुण्डकोपनिषद्	खण्ड-3, श्लोक - 6
63.	रचनात्मक कार्यक्रम	महात्मा गाँधी नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद, सं. 2011
64.	सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा	मोहनदास करमचन्द गाँधी नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, सं. 2012

65.	सर्वोदय तत्व दर्शन	डॉ. गोपीनाथ धावन सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली, सं. 1951
66.	स्त्रियों की समस्याएँ	महात्मा गाँधी (संपादकः श्री ज्ञानचन्द जैन एवं श्री रामनाथ सुमन) साधना सदन प्रकाशक इलाहाबाद, सं. 1945
67.	संपूर्ण गाँधी वाङ्मय - खण्ड 65	कापीराइट नवजीवन ट्रस्ट आहमदाबाद, सं. 1964
68.	समर यात्रा	प्रेमचन्द प्रकाशकः अमृतराय हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद, सं. 1951
69.	सांप्रदायिकता के बदलते चेहरे	रमणिका गुप्ता वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र.सं. 2004
70.	सर्वोदय	महात्मा गाँधी नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद, सं. 2011
71.	हिन्द स्वराज	महात्मा गाँधी सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली, सं. 2011

72.	हिन्दी उपन्यास राष्ट्र और हाशिया	शंभूनाथ वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र.सं. 2016
73.	हिन्दी उपन्यास का इतिहास	गोपाल राय राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 2002
74.	श्रीनिवास ग्रंथावली	संपादक. डॉ. श्रीकृष्णलाल नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 1953

अंग्रेज़ी सन्दर्भ ग्रंथ

1.	Collected works of Mahatma Gandhi	Government of India Part 87
2.	Freedom At Midnight	Dominique Lapierre and Larry Collins D.C. Books Kottayam, Kerala, 1984
3.	Moral Man and Immoral society	Reinhold Niebuhr, Charles Scribner's Son's 1932
4.	Novel and the People	Ralph Fox Eagle Publishers (Indian Edition) Calcutta, 1944
5.	Religion and Ethics	Dr. Radhakrishnan National Publishing House New Delhi 1970

6.	Rise And Fulfillment of British Rule In India	Edward Thompson & G.T.Garratt Macmillan & Co. Ltd London
7.	Selections from Gandhi	Nirmal Kumar Bose P.I X (First Edition 1948)
8.	Speeches & Writings of Mahatma Gandhi	Third Edition G.A. Natesan & Co., Madras, May 1922

मलयालम सन्दर्भ ग्रन्थ

1.	महात्माविन्टे मार्गम	सुकुमार अष़िकोड डी.सी बुक्स कोट्टयम, केरल प्र.सं. 2010
2.	केरला नवोत्थानवुम युक्तिचिन्तयुम	संपादकः ई.डी. डेविड केरल शास्त्र साहित्य परिषद् त्रिशूर, 2015

पत्र-पत्रिकाऐं

1.	अंतिम जन	जनवरी 2015
2.	गाँधी मार्ग (अहिंसा संस्कृति का मासिक)	गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान नई दिल्ली
3.	दस्तावेज़ - गाँधी अंक	जुलाई - सितंबर 2003
4.	दि मॉडर्न रिव्यू	1935
5.	सबलोग	अप्रैल 2009

समाचार पत्र

1. दि बाम्बे क्रानिकल (The Bombay Chronicle) 12-1-1945
2. मंगल प्रभात
3. यंग इंडिया
4. हरिजन
5. हरिजन सेवक
6. हिन्दी नवजीवन

शब्द कोश

1. वृहत् हिन्दी कोश — कालिदास प्रसाद, ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, सं. 1966
2. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1-2 — डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (सं) ज्ञानमंडल लिमिटेड बनारस सं. 2007

परिशिष्ट

परिशिष्ट

शोध छात्रा के प्रकाशित शोध लेख

1. अज्ञेय की कविता में नगरीय संस्कृति का प्रतिरोध, अनुशीलन, जुलाई - 2011, हिन्दी विभाग, कुसाट - आई.एस.एस.एन - 2249-2844
2. भारतीयता के सन्दर्भ में 'इला' का पुर्नपाठ, अनुशीलन, जनवरी - 2012, हिन्दी विभाग कुसाट -आई.एस.एस.एन - 2249-2844
3. भारतीयता के सन्दर्भ में 'भूमंडलीकरण और स्त्री', अनुशीलन, जुलाई-2012, हिन्दी विभाग, कुसाट -आई.एस.एस.एन - 2249-2844
4. मदन कश्यप की कविताओं में पारिस्थितिक चिंतन, अनुशीलन, जनवरी -2013, हिन्दी विभाग, कुसाट - आई.एस.एस.एन - 2249-2844
5. भवानी प्रसाद मिश्र जी के साहित्य में गाँधी, अनुशीलन, जुलाई-2013, हिन्दी विभाग, कुसाट -आई.एस.एस.एन - 2249-2844

राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रपत्र प्रस्तुति

1. समकालीन हिन्दी और मलयालम आलोचना में भारतीयता - जनवरी 2012, हिन्दी विभाग कुसाट।
2. समकालीन हिन्दी साहित्य और पारिस्थितिकी, मार्च 2012, हिन्दी विभाग, कुसाट।
3. 'प्रशासनिक अनुवाद' कार्यशाला, जून 2012, हिन्दी विभाग, श्री शंकराचार्य विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केन्द्र, त्रिचुर।